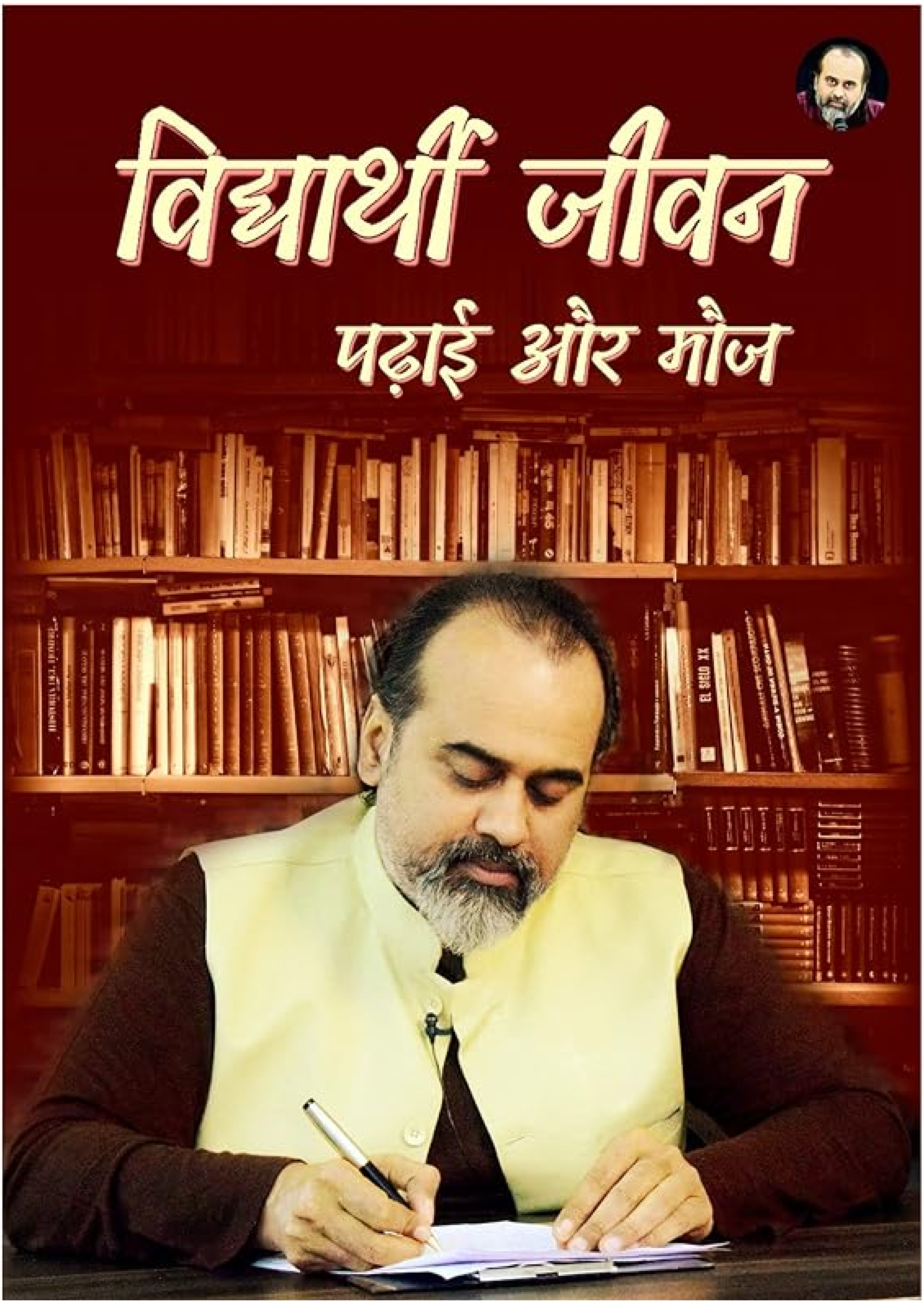

विद्यार्थी जीवन
पढ़ाई और मौज

विद्यार्थी जीवन, पढ़ाई, और मौज

आचार्य प्रशांत

अनुक्रमणिका

विचलित क्यों हो जाता हूँ?

आचार्य प्रशांत: विचलन कुछ नहीं होता है। तुम्हारा जैसा मन है ना, वो उधर को ही भाग लेता है।

(श्रोताओं से प्रश्न पूछते हुए) यहाँ ऐसे कितने लोग हैं जो विचलित हो जाते हैं, करना कुछ और चाहते हैं, और करने कुछ और लगते हैं?

(ज़्यादातर श्रोतागण हाथ उठाते हैं)

तुम जो कह रहे हो कि "हम विचलित हो जाते हैं, करना कुछ है, चल कहीं और देते हैं," तुम कहीं विचलित नहीं होते हो, तुम उधर को ही जाते हो जिधर जाने का तुमने अपने मन को प्रशिक्षण दे दिया है।

तुम्हारा कुत्ता है, वो तुम्हारे साथ-साथ चल रहा है। और साथ-साथ चलते-चलते उसको थोड़ी दूर पर कुछ माँस पड़ा हुआ मिल गया। अब तुम कितनी कोशिश करो कि वो तुम्हारे साथ चले, तुम उसकी ज़ंजीर खींच रहे हो, वो उधर को ही भाग रहा है। क्या तुम ये कहोगे कि वो विचलित हो रहा है? वो विचलित थोड़ी ही हो रहा है, उसकी पूरी शिक्षा ही यही है कि माँस खाओ। उसका पूरा मन ही ऐसा है। दिन-रात, जन्म से ही, आनुवंशिक रूप में उसने यही कन्डिशनिंग पाई है कि माँस की ओर आकर्षित हो जाओ।

तुम भी वही करते हो।

तुम्हारा मन उधर को ही जाता है जिधर जाने की तुम दिन-रात अपने मन को शिक्षा दे रहे हो।

उदाहरण लेता हूँ: तुमने कहा कि लक्ष्य बनते हैं, पर लक्ष्य के लिए जब कोशिश करते हैं तो मन विचलित हो जाता है। तुम कोई भी लक्ष्य क्यों बनाते हो? मान लो तुमने लक्ष्य बनाया कि इस सेमेस्टर में इतने नम्बर लाने हैं। बनाते हो ना इस तरह के लक्ष्य? सेमेस्टर में तुम नम्बर क्यों लाना चाहते हो?

(श्रोतागण को देखते हुए) क्यों?

ताकि अंततः तुम बी.टेक. पास कर सको, और वो भी एक अच्छे प्रतिशत के साथ, है न? बी.टेक. तुम्हें क्यों पास करनी है अच्छे प्रतिशत से? ताकि अच्छी नौकरी लग सके। ‘अच्छी नौकरी’ का क्या अर्थ हुआ? क्या मिल सके? पैसा मिल सके। उस अच्छे पैसे से तुम क्या करोगे? मज़े करोगे, अय्याशी करोगे। ठीक है? तो किताब क्यों खुली है? ताकि अंतत: तुम मज़े कर सको।

अब तुम क़िताब लेकर पढ़ने बैठे, और एक तुम्हारा दोस्त आया बाहर से कि, “आजा चल मज़े करते हैं,” तो तुम्हारा मन कहेगा, “इतना लम्बा रास्ता क्यों ले रहा है?” मन का जो पूरा प्रशिक्षण है, वो तुमने दे रखा है कि—“मज़ा ही सर्वोच्च है, मज़ा ही पाना है; पढ़ भी इसलिए रहे हो ताकि कभी और मज़ा कर सको,” तो मन कहेगा कि, “पढ़ो, फिर नम्बर लाओ, फिर नौकरी लगाओ, फिर पैसा कमाओ, फिर मज़े करो। जब पढ़ना इसलिए है कि मज़े करो आगे कभी, तो अभी ही मज़ा कर लेते हैं। बंद कर क़िताब, चल।”

मन बिल्कुल ठीक कर रहा है। इसलिए जो भी कोई लक्ष्य बनाकर काम करेगा, वो पाएगा कि काम हो ही नहीं रहा है, क्योंकि लक्ष्य हमेशा आगे कुछ पाने के लिए होता है। जो आगे पाना है, जब वो अभी उपलब्ध है, तो अभी पाओ ना। पर तुम चाहते ये हो कि “मेरा मन वैसा ही रहे जैसा मैंने उसको बना दिया है, और साथ-ही-साथ मैं एकाग्रता भी पा जाऊँ,” ये हो नहीं पाएगा कभी, ये असंभव बात है।

पहले भी कह चुका हूँ, फिर से कह रहा हूँ, तुम्हारी एकाग्रता इसी बात पर निर्भर करती है कि तुम क्या हो।

(बाईं ओर इंगित करते हुए) ये यहाँ पर बोर्ड है, मैं यहाँ पर कोलाज (चित्रों का समूह) लगा दूँ, और उसमें दुनिया भर की तमाम तस्वीरें रहें। उसी के बीच में किसी आकर्षक लड़की का चित्र लगा हुआ है। तुम तुरन्त एकाग्र हो जाओगे। जितने यहाँ बैठे हैं, सबकी आँख एक बिन्दु पर ठहर जाएगी।

तुमने जो मन को प्रशिक्षण दिया है, मन वैसा ही एकाग्र हो लेता है। एकाग्रता की तो कोई समस्या है ही नहीं।

तो ये कभी कहा मत करो कि, "हम एकाग्र नहीं हो पाते"। तुम एकाग्र होते हो, पर कहाँ? वहाँ, जहाँ तुमने अपने मन को प्रशिक्षण दे रखा है। तो एकाग्रता की समस्या कहाँ है? तुम तो गहराई से एकाग्र हो जाते हो, बिल्कुल साधना में उतर जाते हो।

जैसा जिसका प्रशिक्षण, वैसी उसकी एकाग्रता। तो यदि अपनी एकाग्रता का विषय बदलना है, तो जीवन को ही बदलना पड़ेगा।

अब ये बड़ी बात हो गई। तुम बोलोगे, "हम इसके लिए तैयार नहीं हैं। हम चाहते हैं कि जीवन हमारा वैसे ही चले जैसा हम चाहते हैं, लेकिन साथ-ही-साथ हम पढ़ाई पर भी एकाग्र कर लें।" ऐसा तो कभी होगा नहीं। अगर जीवन बदलने को तैयार हो, पूरा कायाकल्प, तो बताओ।

जीवन यदि बदलना है, तो फिर देखना पड़ेगा दिन-रात कि—मैं किन चीज़ों पर लगातार अटका रहता हूँ? मेरे दोस्त कैसे हैं? मैं अपना समय कहाँ गुज़ारता हूँ? मैं कौन-सी क़िताबें पढ़ रहा हूँ? मैं किन विचारों में उलझा रहता हूँ? मैं यदि टी.वी. देखता हूँ, तो कौन-से प्रोग्राम देख रहा हूँ? यदि इंटरनेट पर जाता हूँ, तो वहाँ करता क्या हूँ? फेसबुक पर जाता हूँ, तो वहाँ क्या कर रहा हूँ? जब ये सब बदलेगा, तो इसके साथ-साथ तुम्हारी एकाग्रता भी बदल जाएगी।

पर अगर तुम नकली तरीक़े आज़माओगे कि ये कर लो और वो कर लो, और सोचो कि इससे तुम्हें एकाग्रता मिल जाएगी, तो ये बिल्कुल नहीं हो पाएगा। बिल्कुल भी नहीं हो पाएगा।

ये बात स्पष्ट है ना?

मन अपने प्रशिक्षण के अनुसार एकाग्र हो जाता है।

चींटी गुड़ पर एकाग्र हो जाएगी, उड़ती हुई चील, नीचे मरे हुए चूहे पर एकाग्र हो लेगी। पर उसी चील को तुम बोलो कि, "तू घास पर एकाग्र हो पाएगी क्या?" इतना ऊँचा उड़ रही होगी, और इतना-सा पिद्दी भर का चूहा मरा पड़ा होगा, उस पर एकाग्र हो लेगी, बिल्कुल विचलित नहीं होगा उसका ध्यान, पर घास पर नहीं कर पाएगी। तुम देखो तुमने अपने मन को चील जैसा बना रखा है, या चींटी जैसा बना रखा है। क्या बना रखा है? क्योंकि तुम ही तो बनाते हो ना अपना मन।

अपने मन का निर्माण तो तुम ही करते हो। अपनी रोज़मर्रा की गतिविधियों से अपने मन का निर्माण तुम ही करते हो। तो देखो कि तुम्हारी रोज़ की गतिविधियाँ कैसी हैं। जब वो बदलेंगी तो मन बदल जाएगा। एकाग्रता अपने आप बदल जाएगी।

....

(उत्तर प्रदेश, 2014)

ध्यान क्यों टूट जाता है?

प्रश्नकर्ता: सर, हम जब भी कुछ रुचि के साथ करते हैं, तो वहाँ पर ध्यान लगता है, पता रहता है कि कुछ करना है, ये भी रहता है कि करना ज़रूरी है, लेकिन हम ऐसा लंबे समय तक नहीं कर पाते। ऐसा क्यों होता है कि कुछ समय बाद ध्यान टूट जाता है?

आचार्य प्रशांत: पहली बात तो यह है कि किसी भी विषय में तुम्हारी रूचि है, सिर्फ़ इतनी-सी बात से ध्यान नहीं आ जायेगा। ध्यान के लिए दो शर्तें हैं: पहली, रुचि ही नहीं, बहुत गहरी रुचि होनी चाहिए, और दूसरी, मुझमें ये ईमानदारी कि जब तक पूरी बात जान नहीं लूँगा, तब तक रुकूँगा नहीं। अक्सर जिन विषयों में रुचि होती है, हम

जानबूझ कर उनको पूरी तरह से जानना नहीं चाहते। पूरी तरह से क्यों नहीं जानना चाहते? क्योंकि यदि पूरी तरह से जान लिया तो रुचि ख़त्म भी हो सकती है। यदि पूरी तरह से जान लिया तो हो सकता है जो रुचि थी, वो रुचि ही चली जाए। ये क़रीब-क़रीब वैसा ही है कि तुम रेस्तरां में खाना खा रहे हो और तुम्हें अच्छा लग रहा है कि तुम उसके डाइनिंग हॉल में बैठे हो। ऐसा बहुत कम होगा कि तुम इस बात में रुचि लो कि ये जो खाना लाया गया है, ये कैसी रसोई में बनाया गया है। क्योंकि अगर देख लिया तो हो सकता है उस रेस्तरां से सारा आकर्षण ही ख़त्म हो जाए।

इस बात पर ध्यान देना कि हम ये तो कह देते हैं कि मुझे रूचि है, लेकिन हमारे लिए ये बहुत ज़रूरी होता है कि हमारा ये जो आकर्षण है, जो रुचि है, वो एक सीमा तक ही रहे, उसके आगे न जाए। क्योंकि उसके आगे चली गयी तो मामला गड़बड़ हो जायेगा, रुचि को ख़त्म ही होना पड़ जाएगा, इसीलिए हम सीमित ध्यान देते हैं। पूरा ध्यान हम कभी देंगे ही नहीं, पूरा देंगे तो गड़बड़ हो जाएगी क्योंकि हो सकता है कि रुचि ही ख़त्म हो जाए।

तुम्हारा कोई दोस्त है, तुम देख रहे हो कि उसका मूड़ ख़राब है, उदास-सा दिख रहा है। तुम यहाँ तक तो उससे पूछोगे कि कैसे हो, क्या हुआ, पर तुम कभी-भी बात की पूरी जड़ तक नहीं जाना चाहोगे। ऊपर-ऊपर क्या चल रहा है, ये तुम जान लोगे और उसका समाधान भी करना चाहोगे, लेकिन ये सारी समस्या उठ ही कहाँ से रही है, तुम वहाँ तक जाना नहीं चाहोगे। वो जड़, तहख़ाना है उसके दिमाग का, और वहाँ पर पता नहीं क्या-क्या भरा हुआ है। तुम उसको नहीं देखना चाहोगे। देख लिया तो हो सकता है कि या तो दोस्ती ही टूट जाए या तुम्हें ज़िम्मेदारी लेनी पड़े उसके दिमाग़ की गंदगी साफ़ करने की।

तो हम कहते तो हैं कि हमारी रुचि है किसी चीज़ में, लेकिन क्या हम कभी-भी पूरी तरह से रूचि लेते हैं? नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। हम बहुत गहरे जाकर पूरी सच्चाई जानना चाहेंगे ही नहीं क्योंकि यदि पूरा सच जान लिया तो रुचि ही ख़त्म हो जाएगी।

दूसरी बात तुमने कही कि पता होता भी है कि कुछ महत्वपूर्ण करना है, पर उसके बाद भी हमारा ध्यान लगता ही नहीं है। वो लग सकता भी नहीं है। ये एक समस्या है एकाग्रता की। अक्सर लोग यही सवाल पूछते हैं, पर समझते नहीं हैं कि जैसे तुम हो, जैसा तुमने अपने मन को ढाल लिया है, वैसी ही जगहों पर तुम आकर्षित होगे।

मन दो ही जगहों पर एकाग्र होता है: पहला, जहाँ उसको बड़ा सुख मिल रहा हो, दूसरा, जहाँ से उसे बड़े दुःख की आशंका हो। यदि अभी तुम्हारे दांत में दर्द शुरु हो जाए तो तुम्हारे शरीर की सारी एकाग्रता उस दांत की छोटी-सी जगह पर जाकर बैठ जाएगी, तुम्हें कुछ और सुझाई नहीं देगा, वो जो दांत है वह अपनी उपस्थिति का एहसास कराएगा। अभी यहाँ पर जो लोग बैठे हुए हैं, उनमें से किसी को भी अपने पाँव का ध्यान नहीं होगा, लेकिन अगर उसी पाँव में दर्द होना शुरू हो जाए तो सिर्फ़ पाँव-ही-पाँव नज़र आएँगे, और सारा ध्यान पाँव पर ही जाएगा।

मन दो ही विषयों पर एकाग्र होता है: पहला, जो उसे बड़ा अच्छा लगता है, दूसरा, जो उसे बड़ा ख़राब लगता है। मन को जैसा बनाया है, वो ठीक वैसी ही जगह पर एकाग्र होता है। एक घोड़ा है और एक शेर है, एक जगह पर घास रखी है और दूसरी जगह पर मांस रखा है, बात स्पष्ट है कि किसका ध्यान कहाँ केन्द्रित होगा। तो तुम यदि एकाग्र नहीं हो पाते हो तो इसका कारण ये है की तुमने अपना मन एक प्रकार से संस्कारित कर रखा है और ऐसा करने में तुम्हारा एक प्रकार का स्वार्थ है, तुम उससे मुक्त भी नहीं होना चाहते। तुम एकग्रता की बात कर रहे हो, यदि मैं यहाँ पर एक बड़ा-सा चित्रों का संग्रह लगा दूँ, जिसमें चालीस-पचास अलग-अलग तरह के चित्र हों, तो तुम देखना कि तुम ऐसे किसी चित्र पर एकाग्र होना शुरू कर दोगे जो तुम्हें भाता है, जो तुम्हें सुख दे रहा है, बाकी सब तुम्हें दिखाई ही नहीं देंगे। जैसी तुमने अपने मन की संरचना कर रखी है, उसी प्रकार से तुम यहाँ पर आकर्षित हो जाओगे। जैसे तुम, तुम्हारी एकाग्रता भी वैसी ही बनेगी।

ये हॉल है, बड़ा साफ़-सुथरा है, चमक रहा है। अभी यहाँ पर एक मक्खी आ जाये तो वो गन्दगी ढूंढ लेगी क्योंकि उसकी पूरी एकाग्रता ही इसी पर है कि कहाँ गन्दगी मिल जाए और वो जाकर वहीं बैठ जाए। चील को उड़ते देखा है कभी? इतना ऊपर उड़ रही होती है और वहीं से उसे नीचे एक छोटा-सा, मरा हुआ चूहा दिख जाता है। जो तुम्हारी गहरी से गहरी इच्छा है, तुम उसी बात पर एकाग्र होना शुरू कर देते हो। ये बात स्पष्ट हो रही है? अब जब सेमेस्टर भर तुम्हारी इच्छा नहीं रही है पढ़ाई करने की, तो तुम सेमेस्टर के अंत में कैसे खुद को एकाग्र कर लोगे? सेमेस्टर भर तुम्हें इस किताब से कोई प्रयोजन नहीं रहा, पर परीक्षा आई है तो तुम चाहते हो कि इस किताब पर एकाग्र हो जाओ, ये हो कैसे सकता है? हाँ, तुम कोशिश कर लोगे और कोशिश कर करके तुम अपनी ऊर्जा व्यर्थ कर लोगे, पर तुम ऐसा करके तुम सिर्फ़ अपने आप से ही लड़ोगे।

जब भी एकाग्रता का सवाल आए तो पहले अपने आप से पूछो कि मैंने अपने मन को कैसा बना रखा है, और फिर तुम पाओगे कि मन ठीक वहीं जा रहा है जहाँ उसे जाना चाहिए, तुम्हें कोशिश करने की ज़रुरत ही नहीं पड़ेगी। बहुत बड़ा भंडार रख दिया जाए चीज़ों का, तो भी मन ठीक वहीं जाएगा जहाँ उसे जाना चाहिए, तुम्हें एकाग्र होने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

इंटरनेट पर कई वेबसाइट होती हैं, और तुम्हें जो चाहिए तुम ढूँढ़ निकालते हो, क्योंकि जैसी तुम्हारी कंडीशनिंग, वैसी तुम्हारी एकाग्रता। तो अपनी कंडीशनिंग पर ध्यान दो कि वो कैसी है और वो लगातार क्या मांगती रहती है, और ये एक लंबी प्रक्रिया है। तुम्हें अपने आप को देखना पड़ेगा कि सुबह से लेकर शाम तक तुम क्या करते हो, क्योंकि अंततः वही तुम्हारी एकाग्रता बन जाती है क्योंकि वही तुम्हारा मन बन जाता है। तुम सुबह से शाम तक किन दोस्तों के साथ हो? वो कर क्या रहे हैं तुम्हारे मन के साथ? कैसी बातें तुम्हारे कान में पड़ रही है? तुम्हारा भोजन किस तरह का है? तुम अपने मन को लगातार पोषित कैसे कर रहे हो? मन को जैसा बना दोगे, वो उधर को ही भागना शुरू कर देगा।

तुम मन को घोड़े जैसा बना दोगे वो घास की तरफ़ भागना शुरू कर देगा, तुम मन को शेर जैसा बना दोगे तो वो मांस की तरफ़ भागना शुरू कर देगा, तुम मन को बिल्कुल साफ़ करके शीशे जैसा बना दोगे तो उसमें सब कुछ साफ़-साफ़ दिखाई देगा, कोई धोखेबाज़ी नहीं रह जाएगी, सारे मामले सीधे हो जाएँगे। तुम मन को लगातार दबाए रहोगे तो वो हमेशा मनोरंजन की तरफ़ आकर्षित होगा, तुम्हारी एकाग्रता हमेशा इस पर रहेगी कि कहीं से मनोरंजन मिल जाए।

अब ये तुम्हारी बुद्धि पर है, ये एक प्रकार का स्व-प्रेम है कि मुझे अपने आप से कितना प्यार है, कि मेरा जीवन है, मुझे देखना है कि मैं इसके साथ क्या कर रहा हूँ। और फिर कोई सवाल ही नहीं उठेगा कि कैसे एकाग्र हों क्योंकि मन ठीक उधर को जाएगा, जिधर को उसे जाना चाहिए। उसको धक्का देने की ज़रुरत ही नहीं पड़ेगी कि तुम उसको खींच रहे हो की किताब कि तरफ़ चल और वो खिड़की से बाहर जाना चाहता है, फिर ये खींचातानी की नौबत नहीं रहेगी।

तो ये मत पूछो कि एकाग्र क्यों नहीं हो पाते हैं, क्योंकि यह एक प्रक्रिया है। उस प्रक्रिया को देखो और वो प्रक्रिया लगातार घटती रहती है। तुममें से यहाँ पर बहुत सारे ऐसे चहरे हैं जो ध्यान से सुन रहे हैं। क्या उन्हें मुझ पर एकाग्र होना पड़ रहा है? (एक श्रोता से पूछते हुए) क्या तुम्हें मुझे सुनने के लिए एकाग्र होना पड़ रहा है?

प्र: नहीं सर, बस सुन रही हूँ।

आचार्य: और यहाँ ऐसे भी हैं जो बिलकुल हिले-डुले हुए हैं। उन्हें एकाग्र होना पड़ेगा क्योंकि उनका मन भाग रहा है इधर-उधर, बेचैन घोड़े की तरह, उनको उसे खींचना पड़ेगा कि वापस आ, वापस आ। पर उससे कोई फ़ायदा नहीं होगा क्योंकि खींचने वाले भी तो तुम हीं हो न। खींचने वाला भी तो वही बेचैन मन है जो भागना चाहता है।

मन ऐसा कर लो कि फ़िर उसको एकाग्रता की ज़रूरत ही ना पड़े, वह सहज रूप से ध्यान में ही रहे, जहाँ भी रहे डूबा हुआ मज़े ले। कोई कोशिश नहीं, बैठे हैं, सहजता से सुन रहे हैं। कोशिश क्या करनी है इसमें? जो सुन रहे हैं, वो जानते हैं कि उन्हें कोई कोशिश नहीं करनी पड़ रही है।

क्या कोशिश कर के सुन रहे हो?

प्र (एक स्वर में): नहीं, सर।

आचार्य: बस ऐसे ही हो जाओ, लेकिन उसके लिए जैसा मैंने कहा कि दिनभर जो करते हो वो ज़रा होश में करो, देखते रहो कि मन में चल क्या रहा है क्योंकि जो कुछ भी चल रहा है वो मन पर छाप छोड़ रहा है, वही ज़िंदगी बनेगा, उसको हल्के में मत ले लेना। तुम्हारा एक-एक कदम, तुम्हारा एक-एक वचन, तुम क्या खा रहे हो, तुम्हारी बातें, तुम्हारे सारे निर्णय, तुम कहाँ आते-जाते हो, क्या पहनते हो, किसके प्रभाव में रहते हो, यही सब है जो अंततः जीवन बन जाने हैं, इनके अलावा जीवन और कुछ नहीं है।

तो एकाग्र होने के लिए देखो कि तुम अपने मन को क्या पोषण दे रहे हो। क्योंकि जैसा मन होगा, वैसा ही उसकी एकाग्रता का विषय होगा।

....

(हरियाणा, 2014)

मैं किसी भी नियम पर चल क्यों नहीं पाता?

प्रश्नकर्ता: मैं नियम तो बनाता हूँ पर उन पर चल नहीं पाता, ऐसा क्यों?

आचार्य प्रशांत: जिनको तुम कह रहे हो कि ‘अपने’ नियम बनाता हूँ, वो भी वास्तव में तुम्हारे नियम नहीं हैं, वो बाहर से आए हुए नियम हैं, संस्कारित नियम हैं। तो उनपर तुम चलोगे तो सही, पर तभी तक चलोगे जब तक कोई और आ कर तुम्हें कुछ और नहीं दे देता। तुमने अभी कुछ देखा, कहीं गये और बहुत प्रभावित हो गये और तुमने अपने लिए एक नियम बना लिया, जो देखा सुना उससे। और दो दिन बाद कोई दूसरा प्रभाव तुम पर आ गया, तो क्या होगा पहले प्रभाव का और क्या होगा उन नियमों का? वो सब तिरोहित हो जाएँगे, कुछ बचेगा नहीं उनमें से।

(बिजली चली जाती है और हॉल में शोर होता है)

अब ये स्पष्ट उदाहरण है कि क्या होता है नियमों का। जब तक रोशनी रही, तब तक तो नियम कायम रहे, पर ज्यों ही एक बाहरी अवस्था बदली, तो जितने साँप, छछूंदर छुपे हुए थे बिलों में, वो सब बाहर आ गए। कुछ कीड़े होते हैं जो मात्र अँधेरे में ही निकलते हैं और वो सब निकल पड़े थे।

(सब श्रोतागण झेंप जाते हैं)

तो इसलिए नियम कभी प्रभावकारी हो नहीं सकता, क्योंकि दूसरा कुछ है जो निकलने का इंतज़ार कर ही रहा है। स्थितियाँ बदलेंगी और वो निकल पड़ेगा। एक बाहरी स्थिति है रोशनी की, तुम उस पर चल पड़े। दिन है तो तुम दिन के मुताबिक कर रहे थे, पर दिन सदा नहीं रहेगा। रात आएगी और फिर तुम कहते हो कि मैं वैसे क्यों नहीं चल पा

रहा? क्योंकि वो चाल तुम्हारी थी ही नहीं, वो चाल दिन की थी, वो चाल रोशनी की थी। रोशनी गयी, तो चाल भी गयी।

कोई एक व्यक्ति तुम्हारे सामने बैठा है तो तुम एक प्रकार का व्यवहार कर रहे हो, वो व्यक्ति जाएगा तो साथ में वो व्यवहार भी जाएगा। फिर तुम आश्चर्य करोगे कि मेरा व्यवहार बदल क्यों गया? क्योंकि वो व्यवहार तुम्हारा था ही नहीं। वो व्यवहार उस परिस्थिति का था और परिस्थिति गयी, व्यवहार गया।

अभी नया साल शुरू हुआ है। और जब एक जनवरी लगती है तो बहुत सारे लोग अपने लिए नियम बनाते हैं कि इस बार ये करेंगे और वो करेंगे। और 99% जो नियम बनाते हैं वो हफ्ते से ज़्यादा नहीं चलते। पूछो क्यों, क्योंकि वो नियम बनाया गया था एक जनवरी को। तो एक जनवरी को वो नियम बड़ा अच्छा लगता है कि नया साल शुरू हुआ है तो मैं भी कुछ नया शुरू करूँगा, पर एक जनवरी तो गयी और आज है पांच जनवरी। अब आज क्या करूँगा उसका? वो एक जनवरी को शोभा देता था, आज क्या करेंगे? क्योंकि वो नियम तुम्हारा था ही नहीं, वो एक जनवरी का था। जिसे नियम बनाना होगा वो एक जनवरी का इंतज़ार करेगा क्या? पर तुम इंतज़ार करते हो कि नया साल लगे तो कोई नियम बनायें। ऐसा ही है एक प्रेम दिवस, 14 फरवरी, और बहुत होंगे जो जा-जा कर अपना दिल खोल कर रख देंगे कि तुम्हीं प्रेम हो, तुम्हीं जीवन हो, तुम ना हो तो हम हैं क्या, रेगिस्तान, उजाड़। पर वो बातें हैं सारी 14 फरवरी की, और 14 फरवरी बीतेगी, 16 की तारीख़ आएगी और फिर 17 आएगी। और वो आकर पूछेगी, "क्या हुआ?" तुम कहोगे, "जो हुआ 14 फरवरी को हुआ और आज थोड़ी ही 14 फरवरी है"।

(सभी श्रोता हँसते हैं)

"अपनी मर्ज़ी से कहाँ अपने सफ़र के हम हैं, रुख हवाओं का जिधर है, उधर के हम हैं"

अब हवाओं का रुख बदल गया तो हम भी बदल गए। तो ऐसी टूटे हुए पत्ते जैसी अगर हालत है तो तुम्हारा नियम कोई भी तुम्हारा अपना है कहाँ? पढ़ने बैठते हो और कोई दोस्त आता है और बोलता है कि बाहर चलते हैं तो तुम चल देते हो। अब बाहर घूम रहे हो तो पिता का फ़ोन आ गया और पिता ने कहा कि खेत बेच कर पढ़ने भेजा है और तुम वहाँ मटरगश्ती कर रहे हो, तो तुम वापस चले जाते हो। कुछ भी तुम्हारा कहाँ है? फिर वापस गए तो रास्ते में किसी ने पकड़ लिया कि देख मैंने लैपटॉप पर क्या खोल रखा है, तो तुम उधर को चल दिए। फुटबॉल जैसी तो हालत है कि जो जिधर को लात पड़ी उधर को चल देंगे और क्योंकि विपरीत दिशाओं से लातें पड़ रही हैं तो 60 मिनट, 80

मिनट लात खा-खा कर गोल में 1-2 बार ही पहुँचते हो। फुटबॉल की दशा देखी है? उसको हर तरफ से लात पड़ती है, घंटों लात खाती है तब भी गोल में 1-2 बार ही घुस पाती है। वो भी कब? जब गोलकीपर थोड़ा सा बेहोश हो। नहीं तो कभी ना घुस पाए वो गोल में।

ऐसे तुम्हें भी कभी गोल नहीं मिलते क्योंकि तुम हर दिशा से मारे जा रहे हो। तुम्हारा अपना कुछ नहीं है, जैसे फुटबॉल की अपनी कोई मर्ज़ी नहीं है। कोई फुटबॉल आज तक खड़ी नहीं हुई कि ख़बरदार लात मारी तो। जैसे फुटबॉल की अपनी कोई मर्ज़ी नहीं होती, वैसे हमारी कहाँ कोई मर्ज़ी होती है। कोई आकर डरा दे, हम डर जाएँगे। कोई आकर थोड़ा लालच दिखा दे, हमें लालच आ जाएगा। सड़क पर चल रहे होंगे और हमें कोई होर्डिंग दिख जाए, हमारा मन अस्थिर हो जाएगा। मोबाइल पर कोई संदेश आ जाए तो हमारे मन का पूरा मौसम बदल जाएगा, और ये बड़ी दुर्भाग्य की बात है। इसका अर्थ ये है कि हम ज़िन्दा ही नहीं हैं। ये तो एक मृत गेंद की हालत होती है। ये झड़े हुए पत्ते की हालत होती है। जीवन कहाँ है फिर? अगर वास्तव में कोई युवा होगा तो उसको बड़ा क्रोध आएगा, बड़ी आग उठेगी अपनी इस स्थिति पर। वो कहेगा कि मैंने ये क्या दुर्बलता पाल रखी है। वो शर्मसार हो जाएगा अपने ही ऊपर, उसे बड़ी ग्लानि उठेगी। पर हमारे तो शर्म भी नहीं उठती।

जब तक नियम बाहर से आएँगे तब तक उनमें कोई ताकत नहीं रहेगी, क्योंकि बाहरवाला अगर तुम्हें नियम दे सकता है, तो वही नियम तुड़वा भी सकता है। अपनी आन्तरिक व्यवस्था से अगर तुम्हारी अपनी चाल हो तो तुम्हें किसी नियम की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। खुद जानो, खुद समझो और फिर उससे एक सुंदर व्यवस्था निकलेगी। फ़िर उसी पर जियो।

....

(उत्तर प्रदेश, 2014)

जो जानता हूँ उस पर अमल क्यों नहीं कर पाता?

प्रश्नकर्ता: आपसे और जगह-जगह से ऐसी बातें सुनता हूँ पर जब अपनी ज़िन्दगी में उतारने की कोशिश करता हूँ तो बहुत सारी ऐसी चीज़ें आती हैं जो रोकती हैं, इसकी वजह क्या है?

आचार्य प्रशांत: देखो, हर आदमी के भीतर दो आदमी होते हैं, एक असली आदमी, और एक नकली आदमी। और ध्यान न दो तो पता नहीं चलता कि कौन-कौन है। ये दोनों एक ही जैसे दिखते हैं, इनका एक ही नाम होता है। इनमें अंतर इतना ही होता है जितना कि एक आदमी और उसकी तस्वीर में, मूर्ती में। तो हम सब लोग दो हैं, और कुछ कह नहीं सकते कि उसमें से असली कौन है, बस ये पक्का है कि दो हैं। असली वाले को भी होने का हक़ है, नकली वाले को भी होने का हक़ है। हक़ नहीं होता तो वो होता नहीं। उसको नकली कहने का मतलब ये नहीं कि उसको गाली दी जा रही है। नकली सिर्फ़ इस अर्थ में कहा जा रहा है कि उसके पास अपना कुछ नहीं होता। वो जो भी पाता है, कहीं और से पाता है।

अब जब किसी को ज्ञान देना हो तो क्या करना है? मुँह ही तो चलाना है, मुँह तो कठपुतली भी चला लेती है, मुँह तो रेडियो, टीवी भी चला लेते हैं। तो नकली वाले का काम वहाँ तक चल जाता हैं, जहाँ मुँह चलाना हो। जहाँ कुछ असली करने की बात आती है, जहाँ जिंदगी सामने आती है, तब नकली वाला पीछे हट जाता है। अब नकली वाले का काम है पीछे हटना, वो हटेगा, जब नकली वाला अपने ही होने से बहुत परेशान हो जाता है, तो असली वाले के लिए जगह बन जाती है। जब तुम अपने ही दोगलेपन से परेशान हो जाते हो, तो तुम कहते हो यार ये कायरता बहुत हुई, और तब तुम हिम्मत करके असली बदलाव लाते हो। नहीं तो नकलीपना चलता रहता है, जब तक आदमी उसे झेल सकता है झेलता है। ऐसे ही चल रही है दुनिया।

प्र: सर, कभी-कभी मैं असली में चाहता हूँ कुछ बदलाव लाना पर ज़िन्दगी की परिस्थितियाँ नहीं होने देतीं, ऐसा क्यों?

आचार्य: क्यों है का कोई सवाल नहीं पैदा होता। दुनिया ऐसी ही है।

प्र: सर, ऐसे तो मैं वो काम कभी पूरा कर ही नहीं पाउँगा?

आचार्य: मत करो। करे बिना अगर चैन मिल जाता हो, मत करो। दुनिया तुम्हें रोकती है, तुम्हें रुकना है, रुक जाओ। मैं तुम्हें कितना ही बता लूँ, कि दुनिया धुंए से तबाह हो रही है, तुम उसके बाद भी सड़क पर धुंआ छोड़ सकते हो जाकर। मेरा सारा समझाना बेकार जाएगा। जहाँ बदलाव आते हैं, वहाँ इसलिए आते हैं क्योंकि तुम्हारे भीतर कुछ होता है जो कहता है कि बस बहुत हुआ। और अगर तुम्हारा वो समय, वो बिंदु अभी नहीं आया है, तो कोई तुम्हें लाख प्रेरित कर ले, तुम बर्दाश्त करते रहोगे, तुम विद्रोह नहीं करोगे। अगर तुम्हारा अभी वो बिंदु नहीं आया है, जहाँ पर तुम्हारा दिल ही चिल्ला कर के बोले कि हाँ, तो तुम हिलोगे नहीं। और वो बिंदु किसी का, खींचतान के नहीं लाया जा सकता। किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता प्यार करने के लिए। किसी को मजबूर नहीं किया जा सकता विद्रोह करने के लिए। तुम खूब बोल सकते हो, जिसे समझ में आना है, केवल उसे ही आएगा, वरना तुम सालों की मेहनत लगा लो, वो व्यर्थ जानी है।

प्र: सर, मान लीजिए कि वो मौका आ गया, जो करना था कर लिया, पर अब उसके आगे जो होगा उसको कौन देखेगा?

आचार्य: देखो, जीवन में कभी ऐसा भी मौका आता है जब आदमी ये नहीं सोचता कि आगे क्या होगा। जो लोग समझौते कर लेते हैं, उनके पास यही तो बहाने होते हैं ना, कि देखो हमने भविष्य का ख़याल करा, इत्यादि, वो बड़े समझदार लोग होते हैं। फिर एक मौका आता है जब आप समझदारी छोड़ देते हो, आप कहते हो कि मैं सोचना ही नहीं चाहता कि नतीजा क्या निकलेगा, मुझे बर्दाश्त नहीं करना तो नहीं करना।

प्यार और विद्रोह दोनों बातें जवानी से सम्बंधित हैं: जवानी ही प्यार और विद्रोह कर सकती है।

न प्यार ज़बरदस्ती कराया जा सकता है, न विद्रोह। तुम्हारे साथ बड़े ज़ुल्म हो रहे हों, तुम पीते रहोगे, तुम झेलते रहोगे। कोई होता है, जो नहीं पीता, नहीं झेलता, वो खड़ा हो जाता है। उसमें और तुम में क्या फर्क है, अब क्या बताएं। तुम ही हो सकता है, एक दिन कह दो कि अब और नहीं बर्दाश्त करना। उस दिन क्या ख़ास हो जाएगा मैं कैसे बताऊँ? जब मैं ये कह रहा हूँ कि कुछ गलत है, तो ये मतलब नहीं कि दुनिया में कुछ गलत है। तुम्हारे अपने भीतर जो गलत है, तुम्हें उसके खिलाफ भी तो खड़ा होना होता है न। तुम अपनी ही कितनी नाकामियों को, मक्कारियों को, झेले जाते हो, पनाह दिए जाते हो।

कितने ही लोग हैं जो इस तरह की बातें करते हैं, कि मुझे पता है कि मैं गलत हूँ, लेकिन मैं क्या करूँ? एक दिन आता है जब तुम कहते हो, कि मुझे अगर पता है कि मैं गलत काम कर रहा हूँ, तो नहीं करूँगा। नासमझी में कर लिया तो कर लिया, पर अब अगर पता है कि कुछ गलत है तो नहीं करूँगा। वो दिन कब आएगा हम नहीं बता सकते।

अपने ही नकली चेहरे के प्रति विद्रोह कर पाना, ज़रूरी तो बहुत होता है, पर ज़बरदस्ती नहीं हो सकता।

अब ये बड़ी असहाय स्थिति है कि जो चीज़ सबसे ज़रूरी है, उसमें तुम कोई ज़बरदस्ती नहीं कर सकते। तुम किसी भी आदमी से मिलो जो दुर्गुणों में घुसा हुआ है, तुम अगर उसे जा कर के बताओ कि देखो तुम गलत निर्णय ले रहे हो, तुम बिलकुल गलत ज़िन्दगी जिए जा रहे हो २० साल से। वो कहेगा, हाँ मुझे पता है मैं गलत हूँ, पर मुझे ऐसे ही रहना है। या वो कहेगा, मुझे पता है मैं गलत हूँ, पर मैं करूँ क्या मेरा बस नहीं चलता। अब ऐसे में तुम क्या जवाब दोगे? तुम्हारा भी तो यही तर्क रहता है ना, कि हाँ मैं जानता हूँ कि गलत है पर फिर भी करना है। तो फिर इंतज़ार करो। अगर अभी ये तर्क तुम पर कारगर है, तो इसका मतलब है कि अभी तुम्हारा वक़्त नहीं आया है। पर आता है, एक वक़्त आता है, जब तुम कहते हो कि अगर मैं गलत हूँ तो मैं क्यों गलत रहूँ।

....

(उत्तर प्रदेश, 2015)

एकाग्रता का मुद्दा

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, एकाग्रता क्यों नहीं बनती?

आचार्य प्रशांत: कितने लोग यहाँ बैठे हो जो एकाग्र होना चाहते हो, पर पाते हो कि हो नहीं पाते? जिन मौकों पर एकाग्रता की ख़ासतौर पर ज़रूरत पड़ती है, उन्हीं मौक़ों पर वो आती नहीं, ऐसा कितने लोगों के साथ होता है?

(कुछ श्रोतागण हाथ उठाते हैं)

ठीक। मेरे लिए बड़ा आसान है कि मैं तुमको छोटी-सी दवाई थमा दूँ कि ऐसे कर लो तो हो जाएगा। और बाज़ार में ऐसी दवाईंयाँ बहुत हैं: 'कैसे पाएँ एकाग्रता को?', बहुत घूम रहा है ये सब कुछ। मैं ज़रा कहीं और से शुरू करता हूँ। मैं तुमसे पूछ रहा हूँ कि तुम कभी-भी, किस वस्तु पर एकाग्र हो पाओगे?

मन है न जो एकाग्र होता है? एकाग्र होने का अर्थ है कि मन कहीं पर जा कर के बैठ गया है, और वहाँ से हिल नहीं रहा है। यही है न एकाग्रता?

मन किस पर एकाग्र होना चाहेगा?

प्र: जो उसको अच्छा लगेगा।

आचार्य: बहुत बढ़िया। जो उसको अच्छा लगेगा, या फिर...? दो ही स्थितियाँ हैं जहाँ मन को बड़ी गहरी एकाग्रता मिलेगी। पहली, जहाँ पर मन...?

प्र: ख़ुश रहे।

आचार्य: जहाँ मन ख़ुशी पाएगा। और दूसरी, जहाँ पर मन गहरा दुःख पाएगा। जहाँ गहरी ख़ुशी है, वहाँ भी तुम एकाग्र हो जाओगे। और जहाँ गहरा दर्द है, वहाँ भी तुम एकाग्र हो जाओगे। तुम्हारे दाँत में दर्द हो रहा हो, ज़बरदस्त दर्द, तुम्हारी पूरी चेतना कहाँ केन्द्रित हो जाएगी शरीर में?

प्र: दाँत में।

आचार्य: तुम्हारे पूरे शरीर में कुछ बचेगा ही नहीं दाँत के अलावा। लगातार बस उस दाँत का अहसास रहेगा। यहाँ शीशे से बाहर यदि कोई बहुत ख़ूबसूरत चीज़ निकल जाए, तो तुम एकाग्रता से उसे देखोगे। या अगर कोई गहरा, हिंसक, डरावना पशु निकल जाए, तो भी उतने ही ध्यान से देखोगे।

ख़ुशी या दर्द, मात्र इन्हीं दोनों पर मन आकर्षित होता है, और उसी गहरे आकर्षण का नाम है—एकाग्रता।

मैं किधर को आकर्षित हो रहा हूँ, ये इसी पर तो निर्भर करता है कि मैं हूँ कौन। घास रखी है और माँस रखा है, और घोड़ा है और शेर है। कौन किधर को कॉन्सेंट्रेट करेगा? घोड़ा कॉन्सेंट्रेट करेगा घास पर, और शेर कॉन्सेंट्रेट करेगा माँस पर। बात समझ रहे हो न?

जिसका जैसा मन, उसकी वैसी एकाग्रता।

समझ में आ रही है बात?

तुम बाज़ार के लिए निकलते हो, और तुम भूखे हो, तो तुम्हें और कुछ दिखाई नहीं देगा, पर खाने-पीने की दुकान ज़रूर दिखाई दे जाएगी। तुम ध्यान देना कि तुम कार ख़रीदने जा रहे हो या मोटरसाइकिल ख़रीदने जा रहे हो, तुम्हें कार का सिर्फ़ वही मॉडल चारों ओर दिखाई देता है। वो जहाँ भी होता है, तुम्हें दिखाई दे जाता है, क्योंकि तुम्हारे मन पर वही छाया हुआ है। इस कमरे में मक्खी आ जाए, तो उसको इस कमरे में सिर्फ़ वही जगह दिखाई देंगी, जो गन्दी हैं। मक्खी वहीं एकाग्र हो जाएगी।

जैसा तुम्हारा मन है, जैसी तुम्हारी कन्डिशनिंग है, तुम उधर ही कॉन्सेंट्रेट करने लग जाओगे। तुम कामुक प्रवृत्ति के हो, मैं यहाँ पर एक बहुत बड़ा चित्र लगा दूँ जिसमें दुनिया भर की चीज़ें हों, और बड़े-बड़े महाज्ञान की बातें लिखी हों, और वहाँ कहीं बीच में एक छोटा-सा हिस्सा किसी नग्न शरीर का भी हो, तुम एकाग्र होकर मात्र उस अंश की तरफ़ देखोगे।

देखोगे या नहीं?

जैसी वृत्ति, वैसी एकाग्रता। तुम्हारा जैसा मन है, तुम्हारी एकाग्रता ठीक वैसी होगी।

मानते हो या नहीं? स्पष्ट हो गई बात? तो तुम पूछ रहे हो, “एकाग्र कैसे हों?” मैं कह रहा हूँ, हुआ ही नहीं जा सकता। जो तुम हो, ऐसा रहते हुए तुम्हारी एकाग्रता का केन्द्र, तुम्हारी एकाग्रता का विषय, उसकी वस्तु बदल नहीं सकती।

ये वैसा ही है कि जैसे घोड़ा पूछे कि, “मैं माँस पर कैसे एकाग्र हो जाऊँ?”, हो ही नहीं सकता। जब तक तुम घोड़े हो, तब तक तुम्हारी नज़र घास पर ही रहेगी। तो तुम्हारे लिए असम्भव है, बात ख़त्म हो गई।

तुम जो हो, वो रहते हुए तुम्हारी इच्छा ही यही है कि, “हम जैसे हैं हम तो यही रहें, लेकिन उसके बाद भी कॉन्सेंट्रेट कर लें।” यही चाहते हो ना? तुम कहते हो कि, “हमें बदलना न पड़े, पर हमारे जीवन में एकाग्रता की ताक़त आ जाए, हम एकाग्र कर लें, ताकि हमारे हितों की पूर्ति हो सके”। तुम कहते हो कि, “मैं वैसा ही रहूँ जैसा हूँ, पर जब परीक्षा का समय आए, तो मैं क़िताब पर एकाग्र हो जाऊँ”। और मैं कह रहा हूँ कि तुम असम्भव की माँग कर रहे हो, ऐसा हो नहीं सकता।

तुमने जैसा जीवन बिताया है, तुम्हारी एकाग्रता ठीक वैसी होगी। तुम्हें एकाग्रता चाहिए, तुम अपनी एकाग्रता की वस्तु बदलना चाहते हो, तो तुम्हें जीवन बदलना पड़ेगा। लम्बी बात है।

यही कारण है कि हज़ारों-लाखों ने कोशिश कर ली एकाग्र होने की, और हज़ारों-लाखों ने मंत्र दे दिए एकाग्रता के,

पर वो कभी काम नहीं आए, कभी किसी के काम नहीं आए, क्योंकि मन पर किसी का ज़ोर चलता नहीं। मन के आगे हर मंत्र हारा हुआ है। जीवन बदलना पड़ेगा।

तुम्हें क़िताब पर एकाग्र होना है, तुम्हें सीखना पड़ेगा कि क़िताब से प्रेम कैसे करते हैं। तुम्हें जानना पड़ेगा कि क़िताब से प्रेम का भी सम्बन्ध हो सकता है, मात्र शोषण का ही नहीं कि जब परीक्षा आई तो क़िताब खोल ली, और अब चाह रहे हैं कि एकाग्र हो जाएँ। नहीं हो पाएगा! तुम कर लो लाख कोशिश, हारोगे।

तुम्हें उस क़िताब के प्रति प्रेमपूर्ण होना पड़ेगा, तुम्हें उससे एक रिश्ता बनाना पड़ेगा, और फिर तुम पाओगे कि तुम्हें एकाग्रता की ज़रूरत ही नहीं है। और जब तक ज़रूरत है एकाग्रता की, वो मिलेगी नहीं। तुम चला लो हाथ-पाँव, कर लो लाख कोशिशें।

अपनी वृत्तियों को देखो, उनको समझो। उनको समझने में ही उनसे मुक्त हो जाओगे। तुम पाओगे कि जो बातें आकर्षक लगती थीं, जिन पर बड़े एकाग्र होकर घुस जाते थे, वो आकर्षक ही नहीं लगतीं। कुछ नया है जो अब जीवन में आ रहा है, और उसकी ओर जाने का मन करता है। एकाग्रता आ रही है, पर उस एकाग्रता का विषय बदल रहा है।

पहले एक प्रकार की किताबें थीं जिन पर बड़े एकाग्र हो जाया करते थे, एक प्रकार के टी.वी. शोज़ थे जिनको बड़ा एकचित्त होकर देखते थे, और अब वही टी.वी. है, पर उस टी.वी. में ही अब कुछ और है जिसको मैं बड़े ध्यान से देखता हूँ। जो पुराना था, सड़ा-गला था, जो पहले बड़ा आकर्षक लगता था, अब उसकी ओर मन जाता ही नहीं।

कबीर साहिब ने कहा है –

पहले ये मन काग था, करता आतम घात। अब तो मन हंसा भया, मोती चुन चुन खात।।

पहले मन कौए जैसा था। और कौए की सारी एकाग्रता किसमें रहती है? विष्ठा में, मल में, गन्दगी में। जब तक तुम कौए हो, तो तुम्हारी एकाग्रता का विषय वही रहेगा। कबीर साहिब कह रहे हैं कि पहले मन कागा था, कौआ था, और आत्मघात करता था। वो जो करता था, वो आत्मघात जैसा था, आत्महत्या जैसा था। अपना ही नुकसान करता था। "अब तो मन हंसा भया" — अब मन हंसा जैसा हो गया है, लाख चारों तरफ़ विष्ठा पड़ी रहे, गंदगी पड़ी रहे, वो गन्दगी उसको आकर्षित ही नहीं करती। वो तो मोती खाता है बस अब। तुम उसके सामने लाख गन्दगी रख दो, वो छूएगा ही नहीं।

ऐसे हो जाओ, मन को ऐसा कर लो, मन की वृत्तियों का ऐसा शोधन कर लो कि वो गन्दगी की तरफ़ आकर्षित ही ना हों। तुम्हारे आसपास चलता रहे ये सारा प्रपंच, पर तुम्हें वो गन्दा ही ना कर पाए, छू ही ना पाए। जैसे कि तुम कोयले की खान में हो, पर फिर भी काले नहीं हो रहे; जैसे तुम कीचड़ में हो, और तब भी तुम्हें कीचड़ छू नहीं जा रहा। ऐसे हो जाओ।

फिर नहीं पूछोगे कि, "एकाग्र कैसे होएँ?"

पर उसके लिए पूरा जीवन बदलना पड़ेगा। शॉर्टकट नहीं है, सस्ते उपाय नहीं मिल पाएँगे। तुम उसके तरीक़े पूछोगे कि, "ऐसा कैसे हो जाएँ?" तरीक़े मैं तुम्हें कई बार कह चुका हूँ, फिर से कह देता हूँ। तुम देखो कि तुम क्या पढ़ते हो। अभी इंटरनेट की हमने बात की, तुम देखो कि इंटरनेट पर भी क्या देखते हो। इंटरनेट तो विशाल भण्डार है, उस पर तुम्हें ऐसा भी कुछ मिल जाएगा जो तुम्हें मात्र पूरी तरह सुलझा दे, और ऐसा भी बहुत कुछ मिल जाएगा जो मन को और गन्दगी में डुबो दे।

तुम कर क्या रहे हो? ईमानदारी से अपने आप से सवाल करो कि, "ये मैं क्या अपना ही नाश नहीं कर रहा, आत्मघात?" तुम देखो कि तुम किन लोगों की संगति में हो? वो विष्ठा जैसे हैं, या मोती जैसे? वो तुम्हारे मन को साफ़ करने में मदद करते हैं, या मन को और कचरा कर जाते हैं?

अर्जुन और कृष्ण भी दोस्त ही थे आपस में, पर वो ऐसा दोस्त था जिसने गीता का पाठ दे दिया। और तुम्हारे दोस्त कैसे हैं कि गीता पढ़ भी रहे हो, तो कहेंगे, "पागल, चल दारु पीकर आते हैं।" तो तुम देखो तुमने जीवन में क्या भर रखा है, और उसकी सफ़ाई करो। जो उसमें मोती जैसा है, उसको गले से लगा लो; और जो उसमें कचरे समान है,

उसको तुरन्त बाहर कर दो।

(शान्ति)

बदल जाएगा जीवन। ये अड़चन ही नहीं आया करेगी कि अब ध्यान लगाना है, और ध्यान लग नहीं रहा। एकाग्रता वगैरह सब अपने आप हो जाएगी। समझ रहे हो? और आसान है! तुम्हें किसी और से पूछना नहीं है, अपनी ही ज़िन्दगी को देखना है कि मैं सुबह से शाम तक करता क्या हूँ। बिल्कुल ईमानदारी से देखना है, और निडर होकर देखना है।

(गहरी शान्ति)

बस और कुछ ख़ास नहीं करना है।

....

(उत्तर प्रदेश, 2014)

एकाग्रता और आदतों का प्रभाव

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, किसी काम में पूरी तरह डूब नहीं पाता और मन यहाँ-वहाँ भागता है, एकाग्र नहीं हो पाता। मन को एकाग्र कैसे करूँ?

आचार्य प्रशांत: छोटी बीमारी हटाना चाहते हो, या बड़ी बीमारी?

प्र: बड़ी बीमारी।

आचार्य: बड़ी बीमारी हट गई छोटी अपने आप हट जाएगी।

अक्सर जो काम तुम कर रहे होते हो, वो इस लायक ही नहीं होता कि मन आकर उसमें ठहर जाए। हम मन के साथ ज़बरदस्ती करते हैं। हम मन से कहते हैं, "तू वो काम कर जिसमें तुझे कोई चैन नहीं दिख रहा"। अब तुम ज़्यादा ज़बरदस्ती करोगे तो हो सकता है मन कुछ समय के लिए मान भी जाए। इस ज़्यादा ज़बरदस्ती को कहते हैं 'एकाग्रता'। एकाग्रता हिंसा है मन के साथ। लेकिन हम चाहते वही हैं कि किसी तरीके से मन को कहीं ले जाकर रख दें।

मन ख़ुद जानता है कि उसे कहाँ नहीं रुकना। कहाँ रुकना है, इसका उसे पता नहीं होता। लेकिन वो ये जानता है कि वो चैन के लिए आतुर है; परेशानी कोई नहीं झेलना चाहता न। तो यही मन का स्वभाव है, मन को चैन चाहिए। जो काम तुम मन को दे रहे हो, मन को उसमें कोई चैन दिखाई नहीं दे रहा, तो मन इसीलिए उस काम में लगता नहीं है। ये है बड़ी बीमारी।

छोटी बीमारी ये है कि मन नहीं लग रहा है और बड़ी बीमारी ये है कि तुम जिस काम में मन लगाना चाह रहे हो, वो काम इस लायक ही नहीं है कि उसमें मन लगे।

कोई काम ऐसा ढूँढो जो इतना सच्चा हो कि मन उससे इंकार कर ही न सके। फिर सवाल पूछने की ज़रुरत ही नहीं रहेगी कि–"मन कैसे लगाऊँ?" मन दौड़-दौड़ कर लगेगा, मन ख़ुद लगेगा।

अभी-भी तुम्हारा मन जिन दिशाओं में भागता है, वो दिशाएँ चैन का ही तो वादा कर रही हैं न। भले ही वो मूर्खतापूर्ण दिशाएँ हों, पर वो वादा यही करती हैं कि यहाँ चैन मिल जाएगा। मन फिर इसीलिए उधर को भागता है। चाहिए है चैन, परेशानी से मुक्ति, झंझट से मुक्ति, ये जो दिमाग़ में खचपच चलती रहती है, इससे आज़ादी। मन यही माँगता है।

या तो तुम मन को साबित कर दो कि जो तुम मन से कराना चाहते हो, वो करके तुम्हें इस खटपट से आज़ादी मिल जाएगी। अगर ये साबित कर दोगे, तो मन तुम्हारी बात मान जाएगा। पर तुम ये साबित भी नहीं कर पाते। ज़्यादातर तो ये होता है कि तुम्हारी बात अगर मन मानेगा, तो उसकी खटपट और बढ़ जाएगी। तो मन कहता है, "मैं तुम्हारी बात मानूँ क्यों? जितना मैं तुम्हारी बात मानता हूँ, उतना मेरी झंझट और बढ़ती जाती है।"

तो फिर वो क्या करता है? फिर वो तुम्हारी बात अनसुनी करता है। तुम कहते हो, "चल क़िताब में लग जा," वो कहता है, "क़िताब में लगकर आज तक क्या मिला?" तुम कहते हो, "सुन ले जो बोल रहे हैं," वो कहता है, "बहुतों को सुन रहे हैं, आज तक क्या मिला?" या तो तुम उसे साबित कर दो कि अब मिलेगा जो तू चाहता है, और वही मिलेगा जो तू वास्तव में चाहता है।

सूत्र ये है कि काम ऐसा चुनो जिसमें तुम्हें एकाग्रता की ज़रुरत ही न पड़े, प्रेम काफ़ी हो: "मुझे अपने काम से प्यार है। बड़ी मौज में होता है मेरा काम। अब एकाग्रता क्यों चाहिए? अपने आप होता है मेरा काम, अब एकाग्रता क्यों चाहिए? बल्कि हालत ये है कि काम न करूँ तो बेचैन हो जाऊँगा।" अब देखो, कोई कोशिश ही नहीं करनी पड़ेगी मन लगाने की; मन अपने आप ही लग जाएगा।

काम ध्यान से चुनो, और ये हिम्मत रखो कि जो काम चुनने लायक नहीं है, उसे ठुकरा दो।

"ये काम चुनने लायक नहीं है। भले ही नुक़सान होता दिखता हो, उस काम को तो मैं ठुकरा देता हूँ।" और जो काम चुनने लायक हो, उसमें फ़ायदा होता नहीं भी दिख रहा हो, तो भी उसे करूँगा। उस काम को करना ही फ़ायदा है, मैं और कोई फ़ायदा क्यों चाहूँगा? मैं उस काम को कर पा रहा हूँ, ये ही बड़े हर्ष की बात है। मुझे और कोई फ़ायदा क्यों चाहिए उस काम से?"

प्र: आचार्य जी, अपने किसी निकट व्यक्ति की किसी लत के कारण हमें काफ़ी परेशानी से गुज़रना पड़ रहा हो, तो उससे हम कैसे बच सकते हैं?

आचार्य: सबसे पहले तुम पर जो असर पड़ रहा है, तुम उस असर से बाज़ आ जाओ।

तुम जिसको बदलना चाहते हो, उसकी स्थिति जब तक तुम्हें ख़राब कर देती है, परेशान कर देती है, उद्वेलित कर देती है, तब तक तुम उसे बदल नहीं पाओगे।

ऐसे समझो, तुम्हें मान लो कोई विषाणु लग गया, कोई वायरस। मैं चिकित्सक हूँ। तुम्हारी चिकित्सा करने के लिए सबसे पहले ये ज़रूरी है न कि कहीं मुझे भी वही बीमारी न लग जाए? मैं तुम्हारी जिस स्थिति को बदलना चाहता हूँ, सबसे पहले तो ये ज़रूरी है न कि कहीं ख़ुद मेरी भी वैसी ही स्थिति न हो? तो किसी के बर्ताव से अगर तुम परेशान हो जाती हो, तो परेशान हालत में तो तुम किसी का उपचार नहीं कर पाओगी।

दूसरों की समस्या हल करने के लिए सबसे पहले तो ये ज़रूरी है कि उसकी समस्या कहीं तुम्हारी समस्या न बन जाए। किसी की बीमारी हटाने के लिए सबसे पहले ये ज़रूरी है कि उसकी बीमारी तुम्हारी बीमारी न बन जाए। तुम स्वस्थ रहो। वो बीमार है, और तुम उसको तब तक स्वास्थ्य तक ला सकते हो, जब तक तुम स्वस्थ हो। पर तुम भी बीमार, वो भी बीमार, तो अँधा-अँधे को सहारा नहीं दे पाएगा।

हमारा खेल उल्टा चलता है। हम कहते हैं, “अच्छा आदमी वो है जो दूसरे के दुःख में दुःखी हो”। ऐसा ही होता है न? किसी को दुःखी देखो, वो रोए जा रहा है और तुम एक आँसूँ न बहाओ, तो वो कहेगा, “ये बड़ा पत्थर दिल आदमी है, ये दोस्त नहीं है मेरा”। ये बड़ी उल्टी बात है। ऐसा चलना आत्मघाती है।

दूसरे के दुःख का इलाज करना है, तो सबसे पहले तुम स्वयं दुःख से अस्पर्शित रहो। जब तुम स्वयं दुःख से अस्पर्शित हो, तुमने सिद्ध कर दिया कि दुःख से मुक्ति संभव है। देखो, मैं हूँ न दुःख से मुक्त। मेरे पास भी दुःखी होने का कारण

था। तू दुःखी था, तेरे कारण मैं भी दुःखी हो सकता था। कारण के होते हुए भी मैं दुःखी हुआ नहीं। अगर कारण के होते हुए भी मैं दुःखी हुआ नहीं, तो कारण के होते हुए भी आवश्यक नहीं है कि तू दुःखी हो। तेरे पास भी तेरे दुःख का कोई तो कारण होगा। मेरे पास भी दुःख का कारण था। क्या मैंने उस कारण को महत्त्व दिया? अगर कारण के होते हुए भी मैं दुःख से अस्पर्शित रह सकता हूँ, तो तू भी अस्पर्शित रह सकता है दुःख से, कारण होते हुए भी।

प्र: क्या इसको हम ऐसे समझ सकते हैं कि अगर किसी को शराब की लत है, और वो बहुत पीता है, तो उससे हमें विचलित नहीं होना है?

आचार्य: दो ही बातें होंगी अगर कोई पी रहा है। या तो उसके प्रभाव में आकर तुम्हें भी आदत लग जाएगी। अब पियक्कड़-पियक्कड़ को क्या सहारा देगा? या फिर तुम इस तरह से प्रभावित हो जाओगी कि ये बुरा आदमी है। अब अगर वो बुरा आदमी है, तो तुम जो उसको मदद दोगे, उसकी सीमा बँध जाएगी, क्योंकि वो बुरा है तुम्हारी नज़रों में। तुम्हारी नज़र में जो बुरा है, वो कितनी मदद का हक़दार हुआ? बहुत ज़्यादा नहीं न? एक हद तक तुम मदद करोगे, फिर कहोगे, “ये तो बुरा आदमी है ही, इसकी और मदद क्यों करूँ मैं?”

तो इस रूप में प्रभावित मत हो जाना कि तुम उसके आचरण के कारण अपने मन में उसकी छवि बना लो। दूसरे की छवि बनाना माने दूसरे से प्रभावित हो जाना। तुम गौर से बस देखो कि क्या हो रहा है, बिल्कुल अछूते रहकर के। अब तुम्हारा जो भी कर्म होगा, वो सामने वाले के लिए मदद जैसा होगा। अब तुम जान जाओगे कि ये जो कर रहा है, अपने ही दुःख का कारण बन रहा है। ज़रुरत नहीं है, फिर भी दुःख पा रहा है। ये जानना बहुत ज़रूरी है: ज़रुरत नहीं फिर भी दुःख पा रहा है । जब तुम ये देख लेते हो कि ज़रुरत नहीं है फिर भी दुःख पा रहा है, तभी तो उसे ये कह पाओगे कि दुःख को छोड़ दे। अगर दुःख ज़रूरी ही है, तो फिर दुःख को कैसे छोड़ोगे? तुम्हें ये दिखना चाहिए कि उसका दुःख गैर ज़रूरी है। अगर दुःख गैर ज़रूरी है, तो उसका दुःख तुम्हारा दुःख नहीं बनेगा, क्योंकि दुःख गैर ज़रूरी है। दूसरी बात, अगर उसका दुःख गैर ज़रूरी है, तभी तुम उसके पास जाकर कह पाओगे, “देख, छोड़ दे, दुःख गैर ज़रूरी है”।

प्र: एक विद्यार्थी के लिए पढ़ने का सही समय क्या है?

आचार्य: ये तो तुम्हारे माहौल पर है कि तुम कब पढ़ सकते हो और कब नहीं, एक उत्तर नहीं हो सकता इसका।

सिद्धान्त मैं बता सकता हूँ।

सिद्धान्त ये है कि पढ़ने के लिए हर समय सर्वोत्तम है। हर समय ही सर्वोत्तम है। हाँ, जिन समयों पर तुम पाओ कि परिस्थितियाँ ठीक नहीं हैं, बिल्कुल प्रतिकूल हैं, तो तब कह दो कि इन-इन समयों में नहीं पढ़ सकता। जो समय फिर बचे, उसको कहो कि ये सब उपलब्ध है पढ़ने के लिए। चौबीस घंटे में से ये न कहो कि कब-कब पढ़ा जा सकता है। चौबीस घंटे में से बस ये कह दो कि इस समय और इस समय पढ़ा नहीं जा सकता। बाकी जितना समय है, उसमें तो पढ़ा ही जा सकता है। क्या बाधा है?

प्र: आचार्य जी, मुझे क्रोध बहुत जल्दी आता है। और अगर कोई काम समय पर पूरा न हो तो मैं तनाव भी बहुत लेता हूँ। इसको कैसे ठीक करूँ?

आचार्य: जब तनाव नहीं रहता है, तब तनाव लो, क्योंकि वो अब आने ही वाला है। अच्छा है कि पहले से ही पता चल जाए कि आ गया है। जब तनाव नहीं रहता, तो उन क्षणों में तुम असावधान हो जाते हो। जब असावधान हो जाते हो, दरवाज़े खुले छोड़कर सो जाते हो, तो कौन घुस आता है?

प्र: चोर।

आचार्य: चोर का नाम है तनाव।

जैसे अभी तुम्हें तनाव अपेक्षतया कम है, अभी सावधान रहो, आने ही वाला है। अभी थोड़ा-सा तनाव पैदा कर लो, अभी थोड़ी-सी चिंता कर लो। किस बात की? कि चिंता आने वाली है। आकर तुम्हें अकस्मात झटका दे दे, इससे अच्छा है कि थोड़ा सतर्क ही रह लो। जब गुस्सा न हो, तब याद कर लो कि बहुत देर से ग़ुस्सा नहीं हो। इसका मतलब विस्फोट होने ही वाला है, “छः घंटे हो गए किसी पर चिल्लाया नहीं। अब पक्का है कि थोड़ी ही देर में किसी पर विस्फोट होगा। छः घंटे हो गए!”

प्र: आचार्य जी, बहुत बार ऐसा होता है कि हमारी गलती नहीं होती है, फिर भी हमें भुगतना पड़ता है। परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती हैं कि मन तनावग्रस्त हो जाता है और उसकी वजह से हमसे ग़लती भी हो जाती है।

आचार्य: तुम्हारा ये सवाल ही बड़ा एकपक्षीय है।

तुम्हें ये तो याद है कि कभी-कभी जब तुम्हारी ग़लती नहीं भी होती तब भी तुम्हें भुगतना पड़ता है, पर तुम्हें ये याद नहीं है कि तुम्हें बहुत कुछ ऐसा मुफ़्त में मिल गया है, बिना उसके लिए योग्यता या पात्रता रखे। बिना ग़लती के सज़ा मिल गई, तुम्हें बुरा लगता है; बिना पात्रता के फल मिल गया, उसकी तुम बात नहीं करते। अगर दोनों की बात कर लो, तो ये सवाल अपने आप हट जाएगा।

कभी गिनती की है कि बिना पात्रता के क्या-क्या मिला है?

अभी सत्र चल रहा है, तुमने यहाँ होने की पात्रता थोड़े ही दर्शायी थी। बातचीत तो ख़त्म हो चुकी थी। यूँ ही मन में उठा कि थोड़ी देर के लिए और बात कर लेते हैं। मिलता नहीं है क्या मुफ़्त में बहुत कुछ? कभी वो याद आता है? और दो-चार चीज़ें जो छिन जाती हैं, उनकी कितनी शिकायत करते हो। हमारी हालत तो ऐसी है कि कोई हमें मुफ़्त की थाली दे दे, और उसमें एक कटोरी कम हो, तो हम शिकायत कर देंगे। पूरी थाली मिल गई है, वो मुफ़्त की थी, उसमें एक कटोरी कम है तो हम शिकायत कर रहे हैं कि कटोरी क्यों कम है! और इतनी बड़ी जो थाली मिली है मुफ़्त की, उसकी बात हम क्यों नहीं कर रहे? पूरी थाली भी छिन जाए, तो भी तुम्हें शिकायत करने का क्या हक़ है? मुफ़्त की थी।

ये ज़िंदगी तुमने पात्रता से अर्जित की? अगर ज़िंदगी भी छिन जाए, तो शिकायत करने का क्या हक़ है?

जब मन में शिकायत का भाव नहीं रहेगा, तो वो सब कर्म भी नहीं बचेंगे जिनके कारण तुम्हें बाद में अफ़सोस करना पड़ता है। शिकायत बहुत बुरी बला है। जिसके मन में शिकायत ने डेरा जमा लिया, वो सारे ऊटपटाँग काम करेगा। और शिकायत मन में डेरा तभी जमा सकती है, जब तुम्हें थाली न दिखे, और तुम कटोरियाँ गिनो। थाली सब को

मिली है, प्रमाण ये है कि जन्म सब को मिला है। और जन्म के लिए न तुमने कोई दस्तावेज़ दिए थे, न अर्ज़ी दी थी, न कोई पात्रता दिखाई थी।

साँस चल रही है न, कैसे? और अटकने लगेगी तो शिकायत करोगे। चल रही है, इसको लेकर तुम में धन्यवाद कभी नहीं उठेगा। कभी इस बात का शुक्रिया अदा किया है किसी को भी—ऊपर वाले को, नीचे वाले को, दाएँ-बाएँ वाले को—कि साँस चल रही है? किया है? पर साँस अगर अटकने लग जाएगी तो शिकायत ज़रूर करोगे: "ये ग़लत हो रहा है मेरे साथ"।

....

(उत्तर प्रदेश, 2017)

एकाग्रता क्यों नहीं बनती?

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, मेरा प्रश्न बच्चों के बारे में है। बच्चे ऐसा नहीं है कि सुनते नहीं हैं, पर उनका सुनना बड़ा चयनात्मक होता है। मुझे अपने बच्चे के साथ भी यही परेशानी होती है। जितना फ़ोकस मेरा बच्चा खेलकूद में देता है, उतना ये पढ़ाई में नहीं देता है। इसका मतलब इसमें फ़ोकस की प्रतिभा तो है, पर फिर वो सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों पर फ़ोकस करता है जो उसको अच्छी लगती हैं।

कई बार हमें ऐसी चीज़ों पर भी फ़ोकस करना पड़ता है जो हमें तत्काल आकर्षक नहीं भी लग रही हैं, तो 'डिलेड ग्रैटिफिकेशन' (विलम्बित परितोषण) आना चाहिए। लेकिन मुझे समझ में नहीं आता कि मैं अपने बच्चे को कैसे समझाऊँ।

ऐसे में मैं क्या करूँ?

आचार्य प्रशांत: 'डिलेड ग्रैटिफिकेशन' (विलम्बित परितोषण) किस क्षेत्र का? आप कोई हार्दिक ध्येय पकड़ें, और उसमें आपको तुरन्त परिणाम ना मिले तो अच्छी बात है कि आप कह रहे हैं कि मुझे बहुत जल्दी ग्रैटिफिकेशन नहीं चाहिए, मैं प्रतीक्षा करने को तैयार हूँ क्योंकि मुझ में धैर्य है। लेकिन सबसे पहले तो जो आप कर रहे हैं वो 'हार्दिक' होना चाहिए ना? आप जो काम ही कर रहे हो, उसमें दिल नहीं हो, तो वो हार्दिक नहीं है।

प्र१: लेकिन आचार्य जी, अगर बच्चे स्कूल जाते हैं, तो उनको पास होने के लिए हर विषय में कुछ न्यूनतम अंक तो लाने ही होंगे। और अगर बच्चे के मन में ये बात है कि जो चीज़ अच्छी नहीं लगती है, उसे बिलकुल भी नहीं छूएँगे तो वो पढ़ाई कैसे करेगा?

आचार्य: तो वो पास तब भी हो जाएगा। न्यूनतम अंक बहुत ज़्यादा नहीं होते।

ये फ़ोकस की बात नहीं है। फ़ोकस तो ज़बरदस्ती कराया जा सकता है। आप उसके साथ ऐसे तरीक़े आज़मा सकती हैं जिसके बाद वो फ़ोकस करने लग जाएगा। लेकिन उसका मन संकुचित हो जाएगा। बहुत बच्चे हैं जो बहुत कंसन्ट्रेट करना जानते हैं और दसवीं-बाहरवीं तक आपको उनको देखकर लगेगा कि "वाह, वाह!", और ज़िंदगी में वो बिलकुल फ़िसड्डी निकलते हैं। फ़ोकस या कंसन्ट्रेशन, ध्यान रखिए, कि कोई बहुत उम्दा गुण नहीं है। 'फ़ोकस' कोई बहुत अच्छा गुण नहीं है, कंसन्ट्रेशन कोई बहुत अच्छी क्वालिटी (विशेषता) नहीं है।

प्र१: अगर बच्चा ऐसा है कि खेलकूद में तो उसकी एकाग्रता बहुत अच्छी है लेकिन पढ़ाई के समय वो भटक जाता है, मन नहीं लगा पाता है, तो ऐसे में क्या करें?

आचार्य: हर आदमी का जो व्यक्तित्व होता है, उसके अनुरूप हर चीज़ नहीं होती है। उसका जो सदियों का कार्मिक ढाँचा है वो आप थोड़े ही बदल पाओगे। वो बहुत सारा कर्मफल लेकर पैदा हुआ है न!

प्र१: तो क्या हमें उसको, एक अभिभावक के तौर पर, एक दिशा नहीं देनी चाहिए?

आचार्य: आपको बस ये देखना चाहिए कि वो बस इधर-उधर की दिशाओं में ना चला जाए। दिशा तो देखिए सबकी एक ही होती है। इस बात को समझिएगा। दिशा सबकी एक ही होती है, अगर ऊपर से देखा जाए। क्या होती है?

प्र१: शांति।

आचार्य: शांति की ओर आना। जिसे कहते हैं केन्द्र की ओर आना, सत्य की ओर आना। हाँ, लेकिन ये है कि व्यक्तित्व सबके अलग-अलग होते हैं।

अब जैसे ये बीच में एक कैमरा रखा हुआ है। ये कैमरा मान लीजिए केन्द्र है। अनमोल (एक श्रोता) को अगर इसकी ओर आना है तो कैसे आएगा और सागर (दूसरे श्रोता) को अगर इसकी ओर आना है तो कैसे आएगा?

प्र१: दोनों अपनी-अपनी जगह के अनुसार दिशा लेंगे।

आचार्य: तो अगर आप नासमझी में देखेंगे तो आपको लगेगा कि दोनों अलग-अलग काम कर रहे हैं। दोनों अलग-अलग काम नहीं कर रहे हैं, दोनों एक ही काम कर रहे हैं। लेकिन क्योंकि दोनों की स्थितियाँ अलग-अलग हैं—स्थिति को ही 'व्यक्तित्व' कहते हैं। हमारा व्यक्तित्व, हमारे मन के समूचे विस्तार में, हमारी स्थिति का ही नाम होता है।

'मन' का मतलब होता है अनंत सम्भावनाएँ। और उसमें आपका एक तरह का व्यक्तित्व होता है, या कह लीजिए कि व्यक्तित्वों का एक दायरा होता है, एक गेंद जैसा, कि जैसे एक बहुत बड़ा क्षेत्र है, और उसमें एक बड़ी गेंद पड़ी हुई है। वो जो गेंद है, वो आपका व्यक्तित्व है। उस व्यक्तित्व के भीतर भी थोड़े-बहुत परिवर्तन हैं।

तो सबको अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुसार ही आना होता है केन्द्र की ओर। एक रास्ता जो एक के लिए ठीक है, वो दूसरे के लिए नहीं ठीक हो सकता।

एक चित्रकार है, एक क्रिकेटर है, दोनों कोशिश एक ही कर रहे हैं। क्या कोशिश कर रहे हैं?

प्र१: जो चाहिए वो मिल जाए।

आचार्य: लेकिन क्योंकि अब उसको क्रिकेट के रास्ते से आना है, तो उसका तरीक़ा बड़ा अलग दिखाई देगा। वास्तव में दोनों एक ही काम कर रहे हैं। तो अब आपका बच्चा जिस भी तरह के जैविक सामग्री के साथ पैदा हुआ है, उसको उसी के अनुसार आगे बढ़ना है। आप ये मत देखिए कि उसकी दिशा दूसरों की तुलना में कैसी है, आपको ये देखना होगा कि उसकी दिशा उसे, उसके केन्द्र की ओर ले जा रही है या नहीं ले जा रही है। आप एक चित्रकार की एक क्रिकेटर के साथ थोड़े ही तुलना कर सकते हो। उसको उससे तोलिए न, उसको उसके प्रति तोलिए।

और आप जो चाह रहे हो, वो बहुत आसान है। आप उसको ज़रा-सा लालच दे दो, डरा दो, वो एकाग्र होना शुरू कर देगा। लेकिन एक बात याद रखिएगा, जिसने एक बार डरकर काम करना शुरू कर दिया, वो अब हर काम डरकर ही करेगा। आप उसको डराओगे नहीं तो वो काम भी नहीं करेगा। जिसने एक बार लालच में आकर काम करना शुरू कर दिया, अब वो हर काम में लालच माँगेगा।

एक साहब थे, वो अपने कुत्ते को गेंद उठाना सिखा रहे थे। अब कुत्ते को गेंद से कोई बहुत आकर्षण नहीं, और है भी तो उसका गेंद उठाकर भागने का कोई इरादा नहीं कि गेंद उठाकर मालिक के पास ले जाए। ये तो मालिक का शौक़ है। अब कुत्ते को गेंद से क्या! उसे गेंद के पास जाना भी है तो थोड़ा इधर-उधर लात मारनी है, मुँह हिलाना है, बात ख़त्म।

तो मालिक ने क्या किया? उन्होंने गेंद के पास हड्डी रखनी शुरू कर दी। एक हड्डी वो रखें गेंद के पास, और दूसरी हड्डी वो रखें अपने पैरों के पास। तो कुत्ता जाए जब पहली हड्डी के पास, तो वहाँ गेंद पाए। वो हड्डी को चूसे। फिर

उसको प्रेरित किया जाए कि “गेंद उठाओ, गेंद उठाओ”। फिर वो गेंद उठाए, और दूसरी हड्डी मालिक के पास देखे तो वहाँ तक जाए। तो इस तरह वो सीख गया कि गेंद उठानी है और मालिक के पास लेकर जानी है। मालिक एक दिन हड्डी रखना भूल गए। अब वो हड्डी खोज रहा है, उसे गेंद से क्या लेना-देना।

तो जिसको आपने एक बार हड्डी के लालच में काम करना सिखा दिया, वो अब हर बार क्या माँगेगा?

प्र१: हड्डी।

आचार्य: हड्डी माँगेगा। तो बेहतर है कि थोड़ा-सा लम्बा रास्ता लिया जाए। उसे देखने दीजिए कि क्या करना है।

प्र२: आचार्य जी, आपने जैसे अभी उल्लेख किया था ‘पिछले कर्म’ का, ऐसा कुछ होता है क्या?

आचार्य: तुम्हारी नाक वैसी क्यों है जैसी है? तुम्हारी आवाज़ वैसी क्यों है जैसी है? तुम दो ही आँख लेकर क्यों पैदा हुए हो? ये सब कहाँ से निर्धारित हो रहा है? इसी को कहा जाता है...

प्र२: ये तो पेरेंट्स (अभिभावक) से आया है।

आचार्य: ‘पेरेंट्स’ माने? पीछे। चले गए न पीछे।

इसी को कहा जाता है अतीत का कर्मफल, कि तुम जो हो उसके पीछे-पीछे-पीछे अनंत कारणों की श्रृंखला है। और वो सब तुम लेकर अपने साथ पैदा हुए हो। कोई भी बच्चा खाली नहीं पैदा होता। ये बहुत बड़ा भ्रम है कि बच्चा खाली स्लेट की तरह पैदा होता है और फिर पैदा होने के बाद उसमें संस्कार पड़ते हैं। हर बच्चा अपने साथ संस्कारों का पूरा एक पोटला लेकर पैदा होता है।

पहला संस्कार तो यही होता है कि पैदा होए और रोए। दूसरा संस्कार ये होता है कि पैदा हो, हाथ-पाँव पटको कि दूध चाहिए। तीसरा होता है कि मल-मूत्र त्याग कर दिया है तो लोगों का ध्यान खींचो, फिर शोर मचाओ और रोने लगो। छोटे बच्चे को कभी ध्यान से देखो तो तुम्हें पता चल जाएगा कि पैदा होने का अर्थ क्या होता है। वो पूरे दस लाख पंक्तियों के एक कोड के साथ पैदा हो रहा है। उसे सब पता है, सारा हिसाब पता है उसे। तुम बच्चे के पास जाओ, और उसके सामने ज़रा मुँह बनाओ, देखो कि वो या तो तुरन्त हाथ मार देगा या रोएगा। उसे कैसे पता कि तुमने जो मुँह बनाया उसमें कुछ ख़राब है? अगर बिलकुल अज्ञानी है तो उसे ये ज्ञान कहाँ से आया कि अभी जो आपने मुँह बनाया है वो मुँह टेढ़ा है या भद्दा है? ये सब ज्ञान वो लेकर पैदा हुआ है।

छोटा बच्चा पैदा होते ही एचीवमेंट ओरिएन्टेड (उपलब्धि अभिविन्यस्त) है। उदाहरण देता हूँ। उसे कोई चीज़ पसन्द है, वो आप उसके एक हाथ की ओर ले जाओ। वो जब हाथ बढ़ाए, आप उसे दो मत। अब आप उस चीज़ को उसके दूसरे हाथ की ओर ले जाओ, और वो हाथ बढ़ाए तो आप उसे दो मत। फिर उसके पहले हाथ की ओर ले जाओ। वो हाथ बढ़ाए तो उसे दो मत। तीन-चार बार ऐसा करोगे तो वो रोना शुरू कर देगा। ये जानते हो क्या हो रहा है? उसे उपलब्धि चाहिए थी, उसे नहीं मिली। सक्सेस (सफलता) और फेलियर (असफलता) वो लेकर पैदा हुआ है।

तो समाज आपकी कंडिशनिंग करता है, बेशक़, लेकिन वो वैसा ही है कि जैसे हार्डवेयर के ऊपर सॉफ्टवेयर चढ़ा दिया जाए। हार्डवेयर न हो तो सॉफ्टवेयर किसपर चढ़ाओगे? तो हार्डवेयर ही कंडिशन्ड (संस्कारित) पैदा हुआ है। समाज तो उसपर सिर्फ़ सॉफ्टवेयर चढ़ाता है। विण्डोज़ ऑपरेटिंग सिस्टम डाल दिया समाज ने। इतना बड़ा जो हार्डवेयर निकला है, उसका क्या बोलोगे? उसका डिज़ाइन किसने बनाया?

इसीलिए पूरी मुक्ति बहुत मुश्किल काम है। पूरी मुक्ति का मतलब ये होता है कि सॉफ्टवेयर तो हटाया ही, नया सॉफ्टवेयर चढ़ने भी नहीं दिया और जो पुराने हार्डवेयर का खेल है, उससे भी बाहर आ गए। वो अति दुष्कर काम है: तुम्हें अपने दाँत के ख़िलाफ़ जाना है, तुम्हें अपनी नाक के ख़िलाफ़ जाना है, तुम्हें अपनी मूँछ के ख़िलाफ़ जाना है, तुम्हें अपने हाथ के ख़िलाफ़ जाना है, तुम्हें अपने दिल के ख़िलाफ़ जाना है, इतना मुश्किल काम है। ये जो हैं सब–हाथ, पाँव, नाखून, नाक, शरीर के सारे अंग-प्रत्यंग–ये यूँ ही नहीं हैं। ये सब फ्रोज़न कंडिशनिंग (जमे हुए संस्कार) हैं। ये उंगली क्या है? कंडिशनिंग जम गई है। हाँ इसको देखने के तुम इतने अभ्यस्त हो गए हो, तो तुम कहते हो–“ये उंगली है”।

प्र३: आचार्य जी, आप कई बार ये कहते हैं कि “मुक्त हो ही,” और अब आप कह रहे हैं कि “मुक्ति दुष्कर काम है, इसमें समय और प्रक्रिया निहित है,” ये दोनों बातें विरोधी लग रही हैं।

आचार्य: ये इसके ऊपर है कि सुन कौन रहा है।

जब मैं कहता हूँ, “मुक्त हो ही,” तो ‘मुक्त’ से तो मैं बात करता ही नहीं। उसे बातचीत से कोई काम नहीं। ये तो जो अमुक्त है, उसको ज़रा प्रेरणा दी जाती है, कुछ याद दिलाया जाता है। जो पैदा हुआ है, वो क्या अपनेआप को ‘मुक्त’ मानता है? और तुम वही हो जो तुम अपनेआप को मानते हो। तुमने कब अपनेआप को ‘मुक्त’ माना?

प्र३: आचार्य जी, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि गुरुजन, जैसे आप भी बोलते हैं कि, “ये प्रक्रिया सम्भव है, ऐसा हो सकता है,” लेकिन हमारा मन कहता है कि, “ये झूठ है, ऐसा सम्भव नहीं हो सकता,” तो इस से श्रद्धा कमज़ोर होती है। श्रद्धा को मज़बूत कैसे किया जाए?

आचार्य: जो मन पगला है, और श्रद्धा को क़ीमत नहीं देता, वो अपने पागल होने के कारण ही, बेवकूफ़ होने के कारण ही, अपने से बड़ी किसी ताक़त के झाँसे में भी आ जाता है, फिर फँस जाता है। जब फँस जाता है तो फिर चाहते, न चाहते, केन्द्र की ओर जाना ही पड़ता है।

सत्य मन को फँसाता ही तो है। और मन क्यों फँस जाता है? क्योंकि सत्य की चालाकियाँ समझ नहीं पाता। होशियारी किसके पास है—मन के पास या आत्मा के पास?

प्र३: मन के पास।

आचार्य: असली होशियारी?

प्र३: आत्मा के पास।

आचार्य: तो फिर आत्मा जब चाहती है, मन को फँसा लेती है। मन तो बुद्धू है। मन बुद्धू न होता तो आत्मा का विरोध क्यों करता? सच्चाई का विरोध क्यों करता? दोनों बातें एक साथ इसीलिए तो होती हैं: मन बुद्धू है इसीलिए आत्मा का विरोध करता है, और मन बुद्धू है इसीलिए आत्मा उसे फिर फँसा भी लेती है।

प्र३: आत्मा है क्या?

आचार्य: मन बुद्धू है, उसे थोड़े ही समझ में आएगा। कौन पूछ रहा है? मन होशियार ही हो जाएगा तो फिर थोड़े ही पूछेगा कि आत्मा क्या है।

जिसे 'शांति' कह रहे थे, वही है आत्मा। शांत मन को ही 'आत्मा' कहते हैं।

(एक श्रोता, जो एक आठ वर्षीय बच्ची है, उसकी ओर इंगित करते हुए) अब जैसे अक्षरा है, उसके मन को नहीं कुछ समझ में आ रहा है, लेकिन फिर भी उसे सब समझ में आ रहा है। अभी उससे पूछो कि मैं क्या बता रहा हूँ तो वो कुछ बता थोड़े ही पाएगी, लेकिन फिर भी सब समझ रही है।

कोई होता है भीतर जो समझदार होता है, मन के सहयोग बिना, मन के ज्ञान बिना, उसको 'आत्मा' कहते हैं। कोई होता है भीतर जिसे सब पता होता है बिना कभी पता किए, उसको 'आत्मा' कहते हैं।

और 'पता होता है' का ये मतलब नहीं होता है कि तुम उससे पूछो कि यहाँ से होशंगाबाद जाना है तो वो तुम्हें रास्ता बता देगा तुरन्त। 'पता होता है' का मतलब है कि जो असली बात है वो पता होती है। असली बात क्या है? असली बात है कि जब कुछ पता चल जाता है तो कैसे हो जाते हो? जब तक पता नहीं होता है, तब तक कैसे रहते हो?

प्र३: बैचैन।

आचार्य: और जब पता होता है तो कैसे हो जाते हो?

प्र३: शांत।

आचार्य: भीतर कोई है जो सदा शांत ही रहना चाहता है। इसी कारण कह रहा हूँ कि उसे सब कुछ पता है। पता न होता तो बैचैन होता? भीतर कोई है जो कहता है, "ज्ञान हो न हो, शांति चाहिए"।

(सामने बहती हुई झील की ओर देखते हुए) ये सामने झील है, मैं तुमसे इसकी हालत बयान करने को कहूँ तो तुम इसकी हालत कैसे बयान कर रहे हो, इससे तुम्हारे बारे में पता चलता है। तुम अगर सतही आदमी हो तो तुम इसकी सतह को देखोगे और कहोगे, "अशांत है। हवाएँ आ रही हैं और लहरें पैदा कर रही हैं"। तुम्हारी अगर आदत ही है सतह को देखने की तो जब मैं पूछूँगा कि, "झील कैसी है?" तो तुम कहोगे, "झील अशांत है"। क्योंकि तुमने क्या देखा?

प्र३: सतह।

आचार्य: और सतह पर तो बाहरी प्रभाव पड़ ही रहे हैं। हवा का प्रभाव पड़ रहा है तो सतह पर क्या है? लहरें। पर तुम अगर ज़रा गहरे आदमी हो तो तुम गहराई में देखोगे, और गहराई में कोई लहर नहीं है।

मन को ऊपर-ऊपर से देखो तो अशांत होता है, और गहराई में देखो तो शांत है। मन ऊपर-ऊपर से देखो तो 'मन' है, और गहराई में देखो तो 'आत्मा' है। अब दोनों एक साथ हैं या नहीं? लहरें भी हैं और स्थिरता भी है। और सागर जितना गहरा होता है, नीचे उसमें उतनी शांति होती है। और उसी में ज़रा ऊपर आ जाओ तो लहरें भी चल रही हैं, और ये भी हो रहा है, और वो भी हो रहा है।

ऊपर-ऊपर से जिस भी चीज़ को देखोगे, उसमें इसी तरीक़े से कुछ-न-कुछ उतार-चढ़ाव दिखाई देंगे। और तुम्हारे लिए बहुत आसान होगा ये कह देना कि यहाँ शांति नहीं है। और तुम्हें ऊपर-ऊपर से देखकर ही अगर चीज़ों को ठुकराना है, तो तुम हर चीज़ को ठुकरा सकते हो। शांति तो हमेशा ज़रा गहराई में मिलती है। और गहराई में जाओगे तो सब कुछ शांत है।

गहराई में कभी हवाएँ पहुँचती हैं बाहर से? गहराई में कोई बाहर वाला प्रवेश कर सकता है? किसी की हिम्मत है कि जाकर गहराईयों में भूचाल ला दे?

तुम जितने उथले होओगे, उतनी आसानी से बाहर वाले तुम में कम्पन ला देंगे। और तुम जितने गहरे होओगे, बाहर वालों के लिए उतना मुश्किल होगा तुम्हारी गहराइयों को विचलित कर देना।

हाँ, ऊपर-ऊपर से तुम्हें विचलित कर सकता है कोई भी। ऊपर-ऊपर से विचलित होना तो ठीक है। महासागर भी हो, उसपर भी तुम अगर ज़रा-सी फूँक मार दो तो क्या होगा? महासागर है, और तुम सतह के पास जाकर उसपर अगर ज़रा-सी फूँक मार दो तो क्या होगा?

प्र३: प्रभाव पड़ेगा।

आचार्य: ज़रा-सा प्रभाव तो पड़ ही जाएगा। लेकिन गहराई की तो बात ही दूसरी है।

....

(उत्तराखंड, 2017)

मन को कैसे एकाग्र करें?

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, मैं उपनिषद् पढ़ रहा था, तो उसमें मन को एकाग्र करने की बात स्पष्ट नहीं हुई। हमें मन को कहाँ एकाग्र करना चाहिए?

आचार्य प्रशांत: मन जब भी एकाग्र होना चाहता है तो वो किसी वस्तु की तलाश करता है, किसी छवि की तलाश करता है। जब आप पा जाते हैं किसी वस्तु को विषय रूप में, सिर्फ़ तभी आप विषयेता बने रह सकते हैं। जब विषय मिल गया, ऑब्जेक्ट मिल गया, सिर्फ़ तभी आप उस विषय को सोचने वाले बने रह सकते हैं। और जो विषय आपको चाहिए, उसका कुछ रूप होना चाहिए, वो मूर्त होना चाहिए, उसका कुछ आकार-प्रकार होना चाहिए, उसके कुछ गुणधर्म होने चाहिए, उसकी कुछ प्रकृति होनी चाहिए, उसके कुछ लक्षण, कुछ चिन्ह होने चाहिए। अन्यथा आप सोच नहीं पाएँगे।

आप सोचकर दिखाइए किसी ऐसे के बारे में जिसका कोई लक्षण, कोई चिन्ह, कोई रूप, कोई रंग, कोई इतिहास, कोई आकार, कोई प्रकार हो ही न। तो उपनिषद् हमसे कह रहे हैं कि उसपर एकाग्र हो जाओ जिसका न नाम है, न घर है, न पता है, न ठिकाना है, न इतिहास है, न जिसकी सीमा है, न जिसकी कल्पना है। तो चलो उसपर एकाग्र हो जाओ। एकाग्र होने के लिए आपको चाहिए थे कुछ लक्षण, वो आपको दिए नहीं गए।

जब सामने आपको कोई वस्तु मिलती है, तब आप भी अपना वस्तु-रूप स्थापित रख पाते हैं। आप सोचने वाले तभी तो बन पाएँगे न जब सोचने के लिए कोई सामग्री मिले। उपनिषद् आपसे कह रहे हैं, "उसके बारे में सोचो जो सामग्री है ही नहीं"। अब आपकी हालत ख़राब। क्योंकि उसके बारे में अगर सोचना है, उसपर एकाग्र होना है, तो आपको मिटना पड़ेगा। 'कुछ' को सोचने के लिए आपको 'कुछ' होना पड़ेगा, और 'न-कुछ' को सोचने के लिए आपको 'न-कुछ' होना पड़ेगा। उपनिषद् कह रहे हैं कि बहुत तुमको एकाग्रता की लत लगी हुई है न, सोचने का तुम्हें बहुत चस्का है, तो चलो उसको सोचो जिसके बारे में सोचा नहीं जा सकता।

प्र: आचार्य जी, क्या सगुण साकार और निर्गुण निराकार कहेंगे?

आचार्य: नहीं! इसको एक विधि मानिए। ये क़रीब-क़रीब एक ज़ेन कोआन जैसा है, "जाओ उसको सोचकर आओ जिसे सोचा नहीं जा सकता"। अब उसको तुम सोच तो नहीं पाओगे, लेकिन उसको सोचने की कोशिश में सोचने वाला ज़रूर मिट जाएगा। क्योंकि सोचने वाले के क़ायम रहने के लिए, मैं दोहरा रहा हूँ, जिसको सोच रहे हो, उसमें कुछ रूप-रंग, द्रव्य होना चाहिए। तो तुम सोचने निकले हो किसको? जिसके सामने सोच गिर जानी है, जिसके सामने सोच मिट जानी है। और सोच मिटी तो साथ में कौन मिट जाएगा?

प्र: सोचने वाला।

आचार्य: तुम मिट जाओगे, सोचने वाला मिट जाएगा। तो ये समाधि की समझ लो विधि हो गई कि सोचें 'उसको'। ज़ेन तुमसे इसी तरह से कहता है, "जाओ, अपना वो चेहरा ढूँढ के लाओ जो जन्म से पहले था"। अब तुम ढूँढ रहे हो उस चेहरे को। वो चेहरा नहीं मिलेगा, तुम ज़रूर खो जाओगे। ये सब परोक्ष विधियाँ हैं, क्योंकि तुमसे सीधे-सीधे कहा जाए, "तुम खो जाओ," तुम मानोगे नहीं।

तुम्हारी आदत मेहनत करने की लगी है। तो फिर तुमसे किसी ऐसे विषय पर मेहनत कराई जाती है, ऐसी दिशा में मेहनत कराई जाती है, जो दिशा बिल्कुल आकाश की ओर जाती है, कि, "जाओ उस दिशा में, फिर कभी लौटकर ही नहीं आओगे। वहीं घुल जाओगे, वहीं मिट जाओगे।"

कर सकते हो आप भी: चलो, अरूप का रूप चित्रित करें। हम सब बैठकर आज अरूप का रूप चित्रित करते हैं। चलो, अज्ञेय के बारे में कहानी लिखें। और लिखनी ज़रूरी है, वैसे ही जैसे एक हाथ से ताली बजानी ज़रूरी है। वापिस मत आ जाना बिना बजाए। अज्ञेय के बारे में आओ चलो सब बैठकर कहानी लिखते हैं।

तड़प जाओगे, निचुड़ जाओगे। दिमाग पगला जाएगा। और अंततः जब कुछ नहीं कर पाएगा, तो तड़प-तड़प के जान दे देगा—शांत, मौन!

प्र: आचार्य जी, क्या इसी को द्वैत कहते हैं कि ‘मैं’ पैदा होता है, जब ऑब्जेक्ट (विषय) होता है?

आचार्य: हाँ।

प्र: और उससे जो ख़ुद ऑब्जेक्ट होता है, वो खिंचता है उस तरफ़।

आचार्य: हाँ।

प्र: तो हम अपनेआप को बुरा मानें, या भला मानें, कुछ भी मानें, हमारा पॉइंट ऑफ़ सेण्टर वही होना चाहिए।

आचार्य: हाँ, बढ़िया ।

जब भी कभी तुम्हें होने के लिए किसी विषय का अनिवार्य आसरा लेना ही पड़े, इसको ‘द्वैत’ जानना। “मैं तभी हूँ जब कुछ और है”, इसका अर्थ, “मैं हूँ ही दूसरे से सन्दर्भ में। मैं हूँ ही दूसरे से रिश्ते में। दूसरा हटा तो मैं भी गिर जाऊँगा।” ये द्वैत है। “मेरी अपनी कोई मौलिक, निजी, मुक्त परिभाषा नहीं है। मेरा अपना कोई आज़ाद अस्तित्व नहीं है। कोई दूसरा है तो उससे सम्बन्ध में मैं हूँ।”

तो ‘मैं’ कौन? मैं किसी का पिता।

‘मैं’ कौन? मैं कहीं का नागरिक।

‘मैं’ कौन? मैं किसी शरीर का स्वामी।

‘मैं’ कौन? मैं किसी घर का निवासी।

अब ये सारे विषय थे। इनको हटा दो तो फिर आफ़त हो जाती है। इसीलिए तो इतना रोते हो। तुम हो ही तब तक जब तक ये मकान है। क्योंकि तुमने अपनेआप को क्या कहा है? “मैं उस मकान का मालिक हूँ”। इसीलिए जब तुम्हारा मकान गिरता है, तो तुम्हारे भीतर भी कुछ गिर जाता है। इसीलिए इतना रोते हो।

प्र: आचार्य जी, ऐसा तो होगा ही कि कुछ गिरेगा। तो जब कुछ गिर रहा हो, उस समय जब लगता है कि मालकियत गई, तो उससे बचा जा सकता है या उसको सहन ही करना होगा?

आचार्य: उसको सहन करोगे तो कष्ट पाओगे। और अगर बेशर्म हो, तो जाकर किसी और मकान से जुड़ जाओगे।

अगर सद्बुद्धि है, तो कहोगे, “सारे मकान एक जैसे होते हैं। बार-बार कई मकानों में जाना और कष्ट पाना कहाँ की बुद्धिमानी है? इस मकान से जुड़ा था, ये मकान गिरा, ये मकान टूटा, मुझे ऐसा लगा मैं टूट गया। उस व्यक्ति से जुड़ा था, वो मर गया, मुझे लगा मैं भी मर गया। ये तो बड़ी ग़ुलामी की बात है। जब भी अपनेआप को किसी से जोड़कर परिभाषित करता हूँ, बड़ा ग़ुलाम हो जाता हूँ। दो बार, चार बार कष्ट पा लिया, अब और नहीं पाना। अब और किसी मकान से नाता नहीं जोड़ना।”

तभी तो कबीर साहिब कहते हैं, “मैं घर अपना जालिया,” अपना घर क्यों जला रहे हैं? क्योंकि जिस भी घर से नाता जोड़ेंगे, घर की तो नियति है गिर जाना। घर गिरेगा, तुम्हें भी ऐसा लगेगा कि तुम गिर गए। कष्ट यही है।

मुक्त अस्तित्व का न होना ही कष्ट है।

तुम आश्रित हो किसी और पर कि वो आए और तुम्हारी ज़रा तारीफ़ कर दे। क्योंकि तुम कौन हो? वो जो समाज में सम्माननीय है। जिस दिन तुम्हें समाज में सम्मान मिलना बंद हो गया, उस दिन तुम्हें लगेगा कि तुम भी बंद हो गए। तुम्हारी तारीफ़ रुक गई, तुम्हें लगेगा तुम्हारी धड़कन भी रुक गई। अब ये ग़ुलामी है, क्योंकि तारीफ़ किसी और से चाहिए। वो दे, न दे। तुमने अपनी जान किसी और की मुट्ठी में दे दी, वो जब चाहे तुम्हारी गर्दन मरोड़ दे।

प्र: आचार्य जी, डिज़ायर (इच्छा) का क्या अर्थ होता है?

आचार्य: इच्छा का रूप, इच्छा ही होता है। इच्छा नहीं जानते क्या होती है? कुछ पाना है। क्यों पाना है? क्योंकि नहीं है। यही है—नहीं है, कमी है।

'कमी है' के भाव को जितना पोषण दोगे, उतना ज़्यादा मन मलिन होता जाएगा, धूमिल होता जाएगा।

प्र: आचार्य जी, क्या इसीलिए कहा जाता है कि ध्यान प्रतिपल है?

आचार्य: ध्यान प्रतिपल है। पूर्णता भी प्रतिपल है। कल ही पढ़ रहे थे न कबीर साहिब को, "माँगन से मरना भला।"

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2018)

एकाग्रता नहीं, एकनिष्ठा चाहिए

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, मन भटकता बहुत है, कहीं भी एकाग्र करने का प्रयास करूँ तो भी एकाग्र नहीं होता। इस स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए?

आचार्य प्रशांत: मैं तुम्हें बता दूँ कि मन को कैसे एकाग्र करते हैं, ताकि तुम इसको बिल्कुल बढ़िया वाली जगह पर एकाग्र कर दो, है न? क्या इरादे हैं भई? जैसे कोई कसाई मुझसे आकर के पूछे कि, "ये मेरे बकरे भागते बहुत हैं इधर-उधर," और मैं उसको बता दूँ कि कैसे वो न भागें ताकि वो उन्हें...

प्र: काट सके।

आचार्य: भली बात है कि मन भाग जाता है। नहीं भागेगा तो तुम करोगे क्या उसका? कहाँ एकाग्र करने वाले हो, ये तो बाताओ। तुम्हें 'एकाग्रता' तो चाहिए, और बहुत दुकानों पर एकाग्रता बिक रही है, बताया जा रहा है कि एकाग्र कैसे करना है, पर कहाँ एकाग्र करना है, पहले मुझे ये बताओ।

अपने सड़े हुए दफ़्तर में बैठे हो, जहाँ सड़ा हुआ काम है, वहाँ से मन भाग रहा है। ये तो भली बात है कि मन भाग रहा है। मन भागकर तो तुमको यही बता रहा है कि जहाँ बैठ गए हो, वहाँ तुमको नहीं बैठना चाहिए। और ज़िंदगी में जो कुछ भी कर रहे हो, अगर वो इस लायक नहीं है कि तुम्हें शांति दे सके तो मन वहाँ से भागता है।

मन को एक बार वो तो देकर देखो न जो मन को चाहिए, फिर मुझे बताना कि मन भागा क्या। जिनका मन एकाग्र नहीं हो पाता, वो भले हैं उनसे जिनका मन एकाग्र हो पाता है। अपने बच्चों को एकाग्रता सिखा मत देना।

देखना कि लोग अपने मन को कहाँ-कहाँ एकाग्र कर लेते हैं: दुनिया के बड़े-से-बड़े पाप हो रहे हैं एकाग्रता से। सब बड़े अपराधियों को देखना, उन्होंने बहुत एकाग्र होकर अपराध किए। और दुर्भाग्य की बात ये है कि देखोगे तो अपराधी ज़्यादा पाओगे।

सत्कार्य करने के लिए एकाग्रता नहीं, एकनिष्ठा चाहिए, और इन दोनों में बहुत अंतर है। सही जीवन एकाग्रता से नहीं, एकनिष्ठा से आता है।

एकाग्रता और एकनिष्ठा में अंतर क्या होता है? एकाग्रता में विषय तुम चुनते हो। तुम चुनते हो कि, “अब ज़रा मुझे एकाग्र हो जाना है”। अपने बच्चों को बताते हो न, “बेटा, अब एकाग्र होकर ज़रा इतिहास पढ़ो”? और एकनिष्ठा में तुम चुनने का अधिकार त्याग देते हो। वो एकनिष्ठा है। मन तुम्हारा इधर-उधर भागता ही इसीलिए है क्योंकि तुम उसे सही जगह नहीं दे रहे। और मन बहुत ज़िद्दी है। उसे सही जगह नहीं दोगे तो वो तो भागेगा। तुम बहुत ज़बरदस्ती करोगे उसके साथ तो वो कहेगा, “ठीक है, अभी कर लो ज़बरदस्ती। हम मौका देखकर भागेंगे। अभी नहीं भागेंगे, तो सपनों में भागेंगे।” तो जो लोग अपने जीवन को बड़ा संयमित कर लेते हैं, बड़ा अनुशासित कर लेते हैं, उनका मन मौका देखकर के फिर सपनों में और ढील के क्षणों में, बंधन तोड़-तोड़कर भागता है।

तुम्हें किसी को बंधक बनाकर रखना है, हिंसा करनी है, या उसे प्रेमपूर्वक शांति दे देनी है? बोलो क्या करना चाहते हो? बच्चा है तुम्हारा, वो भागता है, अरे भई, तो तुम देखो कि कैसे अभिभावक हो तुम। उसे वो दो न जो उसे तृप्त कर देगा।

प्र: आचार्य जी, बच्चों के प्रति सख्ती ना रखी जाए तो समाज उन्हें भला-बुरा कहता है, और हमारी परवरिश पर सवाल उठता है। ऐसे में क्या करना चाहिए?

आचार्य: बच्चा थोड़े ही है, सार्वजनिक संपत्ति है। दुनिया के लिए पैदा किया था, पैदा करते ही न्यौछावर कर दिया था दुनिया को, “ये बालक मैंने विश्व कल्याण हेतु अभी-अभी ताज़ा पैदा किया है। अब ये विश्व को समर्पित है।” सीधे क्यों नहीं बोलते कि डरते हो? डर का इलाज करो न, अपने बच्चे की क्यों जान ले रहे हो? दुनिया से इतना ख़ौफ़ खाते हो, और वही ख़ौफ़ बच्चे में डाल रहे हो। वो भाग रहा है इधर-उधर, लोगों को कह रहे हो, “अरे, माफ़ कीजिए”।

एकाग्रता के पीछे लालच होता है, एकाग्रता के पीछे डर होता है; एकनिष्ठा में प्रेम होता है।

जब कॉलेज के युवाओं से संवाद में बात करता था तो मैं पूछता था, “ये बंदूक अगर मैं तुम्हें दिखाऊँ, तो तुरंत एकाग्र हो जाओगे या नहीं?” तो वो बोलते थे, “हाँ, हो जाएँगे”। अभी अगर यहाँ पर बंदूक दिखा दी जाए तो बिल्कुल चित्त स्थिर हो जाएगा। सब विचार आने बंद हो जाएँगे। समाधि लग गई अभी! योगस्थ हो गए हैं।

(हँसी)

तुम्हें तो बंदूक वाला योग चाहिए।

और ये भय वाला योग है–एकाग्र-योग। वैसे ही एक दूसरा होता है। मैंने पूछा लड़कों से, “अभी मैं यहाँ एक कोलाज लगा दूँ तस्वीरों का, और वो सारी तसवीरें देवी-देवताओं, महात्माओं, संतों की हों, और बीच में उसमें नग्न स्त्री की एक छोटी-सी तस्वीर हो, एकाग्र हो जाओगे या नहीं?” तो वो बोले, “टेलिस्कोप लेकर हो जाएँगे”। और एकाग्र हो ज़रूर जाएँगे।

(हँसी)

ये लोभ वाला चित्त है–एकाग्र। या तो तुम बंदूक से, भयभीत करने वाली वस्तु से एकाग्र हो सकते हो, या तुम्हें कोई लोभित करने वाली कोई वस्तु चाहिए, तो उससे एकाग्र हो सकते हो। ऐसी होती है एकाग्रता। और किसी तीसरी प्रकार की होती हो तो बताओ।

एकाग्रता सदा अहम को बल देती है, क्योंकि एकाग्र करने वाली वस्तु या तो तुम्हें प्रिय होती है, या अप्रिय होती है। प्रिय होती है, तो उसके प्रति एकाग्र होते हो। अप्रिय होती है, तो उसके विरुद्ध एकाग्र होते हो। एकाग्रता का अहम से लेनादेना है, अध्यात्म से नहीं। अध्यात्म तुम्हें नहीं सिखाता एकाग्रता। एकाग्रता का तो मतलब होता है कि–अहम अब और ठोस पिंड हो गया। बिखरा हुआ, जो अमोर्फोस पिंड था, वो अब और ज़्यादा एक पिंड हो गया। और अध्यात्म है उस पिंड का घुल जाना।

अभी तुम मुझे सुन रहे हो, तो क्या एकाग्र हो? नहीं। अभी तुम जो हो, वो 'एकनिष्ठा' कहलाती है।

विचार और विचलन एकाग्रता में भी नहीं पता चलते, एकनिष्ठा में भी नहीं। पर दोनों में आयामगत अंतर है। अभी-भी तुम में से बहुत होंगे जिनके विचार इधर-उधर नहीं भाग रहे होंगे। विचारों के विचलित न होने का कारण एकाग्रता नहीं, ध्यान है – यूँही बैठे हो, भय या लोभ से सम्बंधित कोई कारण नहीं है। अकारण बैठे हो।

जीवन में कुछ ऐसा लेकर आओ, जहाँ एकाग्रता की ज़रूरत ही न पड़े।

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2018)

मन को संयमित कैसे करें?

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, मन को कैसे संयमित करें?

आचार्य प्रशांत: हम आमतौर पर 'संयम' का अर्थ समझते हैं धैर्य से, या नियंत्रण से। अच्छा शब्द आपने प्रयोग किया है–'संयम'। पतंजलि योग-सूत्र में आप जाएँगे तो पाएँगे कि 'संयम' का अर्थ है, मन को किसी विषय में दृढ़ता से स्थापित कर देना।

आप पूछ रहे हैं, "संयम कैसे करें?" प्रश्न ये होना चाहिए, "संयम किसपर करें? मन को ले जाकर कहाँ बैठा दें? संयम किसपर करें?"

मन, शरीर और आत्मा के बारे में आपने पूछा न? मन ही है। मन ही है! मन बिल्कुल शांत हो जाए, मिट जाए, उसको बोल देते हैं ‘आत्मा’। और मन विस्तार ले ले, पाँच इन्द्रियों का सहारा ले ले, एकदम फैल जाए, प्रकृति और संसार बन जाए, तो उसको कह देते हैं ‘शरीर’। इन्द्रियों के विषयों को कहते हैं ‘संसार’, और इन्द्रियों के भोक्ता को कहते हैं ‘मन’। इन्द्रियाँ सब सामग्री जिसको ले जाकर देती हैं, उसको कहते हैं ‘मन’। तो है मन ही। मन का स्थूल और विस्तृत सिरा कहलाता है ‘संसार’। ‘संसार’ माने जहाँ आपको सब पदार्थ, स्थूल पता चलते हैं। देह भी वही है, स्थूल।

मन ने विस्तार ले लिया, तो देह है, संसार है। वही मन शांत हो गया, बिन्दुवत हो गया, तो ‘आत्मा’ कहलाता है।

मन ही है। ऐसा समझ लीजिए, बिंदु है आत्मा, फिर मन है, और फिर पूरा विस्तार है, संसार है।

मन बैचैन और चंचल रहता है, जैसा कि आपने अभी कहा। लेकिन मन की आँखें ऊपर की ओर हैं, संसार की ओर। तो फिर वो चैन कहाँ खोजता है? संसार में। जबकि चैन उसको मिलता है अपने पीछे, अपने नीचे, मिटकर के, बिंदु होकर के। बिंदु हो जाना माने, मिट ही जाना।

तो इसी से बताइए कि मन को किसपर संयम करना चाहिए? हम एक-एक चरण बढ़ा रहे हैं। तो मन को किसपर संयम करना चाहिए? मन कहाँ जाकर बैठ जाए कि उसे शांति मिलेगी? आत्मा पर। अब आत्मा का तो कोई नाम नहीं, पता नहीं, ठिकाना नहीं, नाम नहीं, रूप नहीं, रंग नहीं। तो मन आत्मा पर जाकर कैसे बैठेगा? नहीं बैठ सकता न। तो फिर जानने वालों ने कहा, “तुम संयम करो इसी संसार में उस विषय पर, जो तुम्हें आत्मा तक ले जा सके।” तो लोगों ने पूछा, “कैसे पता चलेगा वो विषय?” तो बताने वालों ने कहा, “अच्छा तुम्हें ये तो पता चल सकता है कि संसार में ऐसे कौन-से विषय हैं जो तुम्हें संसार में और उलझाते हैं?” लोगों ने कहा, “हाँ,” तो वो बोले, “पहले उनको हटाओ। उनके नाम के आगे कट लगाते चलो कि ये तो नहीं है, क्योंकि ये संसार का विषय है, इसकी तरफ़ जाओ अगर तो ये संसार में और उलझाता है।”

संसार में ही ख़ास तरह के विषय होते हैं, जिनके पास जाओ अगर, तो वो संसार से आगे, संसार से पलटकर, तुमको

आत्मा की ओर ले जाते हैं। आत्मा पर संयम करने का अर्थ हुआ, मन के सन्दर्भ में, संसार के उस विषय पर संयम करना, जो तुम्हें आत्मा तक ले जा सके।

वो विषय आपके व्यक्तित्व पर निर्भर करते हुए अलग-अलग होता है।

ऐसा सकता है कि आप नर्तक हैं, तो आपके लिए नृत्य ही माध्यम बन जाए आत्मा तक पहुँचने का, कि आप नृत्य करते हुए इतना खो गए कि मन मिट गया। 'आप खो गए' माने मन मिट गया। मन मिट गया, तो फिर बची क्या? आत्मा मात्र। हो सकता है।

आप चित्रकार हो सकते हो, वैज्ञानिक हो सकते हो, आप धावक हो सकते हो। और बिल्कुल हो सकता है कि आप किसी ऐसी गतिविधि, किसी ऐसी क्रिया में संलग्न हो, जिसमें आप पूरी तरह डूब जाते हैं, डूब के मिट जाते हैं। या फिर ऐसा हो सकता कि आप उनपर संयम कर रहे हैं जिन्होंने आत्मा की ख़ूब बात की है। ये अध्यात्म का क्षेत्र है–ऋषियों को पढ़ो, संतों के भजन गाओ। वो इसी संसार के लोग थे, पर वो संसार से आत्मा की तरफ़ का द्वार थे। रहते वो इसी दुनिया में थे, पर जो उनके पास पहुँचा, उसको वो दुनिया से आगे पहुँचा देते थे।

(प्रश्नकर्ता को सम्बोधित करते हुए) आपकी जैसी यात्रा रही है, मुझे लगता है कि आपके लिए ग्रन्थों और सन्तों पर संयम करना पहला चरण होना चाहिए। जाएँ और वहीं पर टिक जाएँ, ठहर जाएँ। उसके बाद जब मन मज़बूत हो जाए, अपनी जगह खड़ा होने के लायक हो जाए, तो फिर आप जगत से सहारा लेना छोड़ देंगे, उसकी ज़रुरत नहीं पड़ेगी। फिर आप जगत को सहारा देना शुरू कर देंगे।

आरम्भिक चरण में तो आप जगत के पास जाते हैं और कहते हैं, "सहारा दो"। मैंने आपसे कहा कि वो सहारा आपको मिलेगा ऋषियों और ग्रन्थों के रूप में। और एक बार आपने उनपर अनुशासन के साथ संयम कर लिया, उसके बाद आप दुनिया में सहारा माँगने नहीं जाएँगे, उसके बाद आप दुनिया को सहारा देने जाएँगे, जैसे कि सन्तों ने दुनिया को सहारा दिया। वो भी दुनिया के ही थे, लेकिन उन्होंने दुनिया को सहारा दिया। आपकी भी फिर वही दशा हो जाएगी। फिर आप बहुत तरीक़ों से दुनिया के उपयोग के हो जाएँगे – वास्तविक उपयोग के।

अभी तो यही करिए – शास्त्रों के पास जाइए, सन्तों के पास जाइए, उनकी बातें सुन लीजिए। बहुत कुछ है उनके पास बताने के लिए जो आपके लिए आवश्यक है। कौन-से ग्रन्थ विशेषकर आपके लिए उपयुक्त हैं, उसकी एक सूची मैं आपको दे दूँगा। वहाँ से शुरू करिए।

फिर कुछ महीनों बाद आगे की बात करेंगे।

....

(पंजाब, 2019)

व्यर्थ है मन को बाँधना

प्रश्नकर्ता: सर, एकाग्रता की कमी क्या है?

आचार्य प्रशांत: जहाँ भी एकाग्रता है ना, वहाँ अन्यमनस्कता पहले ही मौजूद है। तुम किस कोअन्यमनस्कता बोलती हो? जब एक वस्तु की ओर मन को केन्द्रित करना चाहती हो और मन दूसरी और दिशाओं में भाग रहा है, तो तुम बोल देते हो कि ये अन्यमनस्कता है। हो कुछ नहीं रहा है, हो इतना ही रहा है कि तुम उसको एक जगह पर लगाना चाहते हो, मन का एक हिस्सा है जो चाहता है कि किसी एक जगह पर केन्द्रित हो जाए और दूसरे और कई हिस्से हैं, जिनकी अपनी दूसरी माँगें हैं, वो इधर-उधर जा रहे हैं।

एक तरफ जाने को तुमने नाम दे दिया एकाग्रता का। किताब की ओर जाओ तो तुमने नाम दे दिया एकाग्रता। और, वही मन अगर खिड़की के बाहर जाना चाहता है, सड़क पर जाना चाहता है, बाज़ार में जाना चाहता है, तो तुमने उसको नाम दे दिया है अन्यमनस्कता। एक को तुमने बहुत अच्छा घोषित कर दिया है कि एकाग्रता बड़ी अच्छी चीज़

होती है। तुम कहते हो कि फलाना बड़ा अच्छा विद्यार्थी है क्योंकि उसकी एकाग्रता क्षमता बहुत अच्छी है; दूसरे को तुमने गड़बड़ चीज़ घोषित कर दिया है। तुम कहते हो, "मन अगर इधर को गया तो ये अन्यमनस्कता है", है ना? बात इसमें एकाग्रता और अन्यमनस्कता की है या बात तुम्हारे लेबल की है–तुमनें किसी को क्या नाम दिया है? पढ़ते समय अगर तुम्हें फिल्म का ख़याल आता है तो तुम उसे क्या बोलते हो?

प्र: अन्यमनस्कता।

आचार्य: और अगर फिल्म देखते समय पढ़ने का ख़याल आ जाए तो वो क्या है? तो वो क्या है? वो भी तो अन्यमनस्कता ही है। तो एकाग्रता और अन्यमनस्कता इन दो शब्दों को एक जानो। जो अभी एकाग्रता है थोड़ी देर में अन्यमनस्कता बन सकती है, वो पढ़ाई जो अभी एकाग्रता है, जब मूवी हॉल में पहुँचोगी, तो वही पढ़ाई अन्यमनस्कता कहलाएगी। एक को अच्छा और दूसरे को बुरा मानना बंद करो।

मूल मुद्दे पर आते हैं, जो असली बात है उसकी चर्चा करते हैं। असली बात ये है कि मन बंटा हुआ क्यों है? असली बात ये है कि अलग-अलग दिशाओं में मन भाग क्यों रहा है?

तुमने एक दिशा को अच्छा बोल दिया है, वो दिशा पढ़ाई की होती है आमतौर पर, और बाकी सारी दिशाओं को तुमने अवैध घोषित कर दिया है, वो यही सब होती हैं: दोस्त यारों से बात कर लिया, इधर-उधर मन कहीं जा रहा है—तुमने उसको कह दिया कि ये सब अन्यमनस्कता है। मूल सवाल ये है कि मन दस दिशाओं में भाग क्यों रहा है? समझो, मन दस दिशाओं में क्यों भाग रहा है? छोड़ो एकाग्रता, छोड़ो अन्यमनस्कता, मूल मुद्दे पर आओ।

मन को लग रहा है कि कुछ खो गया है, उसको वो दस तरफ खोज रहा है। मन को कुछ चाहिए, और उसको पक्का नहीं है वो कहाँ मिलेगा इसीलिए वो जगह-जगह ढूंढता फिर रहा है। जैसे एक अँधा आदमी हो और उसकी कोई कीमती चीज़ खो गयी हो तो कभी इधर तलाशता हो और कभी उधर तलाशता हो, और जहाँ भी तलाशता हो उसको मिलती न हो, वैसा ही हमारा हाल है। हमारा हीरा खो गया है, हमारी कोई कीमती चीज़ है जो मिल नहीं रही है। और हम उसको बड़ी अजीब-अजीब जगहों पर तलाश रहें हैं।

हम उसको तलाशते हैं टी.वी. में, हम उसको तलाशते हैं हर तरह के मनोरंजन में, हम कभी कभी उसको धर्म में तलाशने लग जाते हैं। हम कभी उसको इज्ज़त में तलाशतें हैं कि इज्ज़त पा लूँ तो शायद मन शांत हो जाए। कहाँ-कहाँ को भागता है मन? इधर को ही तो भागता है: इज्जत के पीछे, पैसे के पीछे, डिग्री मिल जाए कोई, दूसरे कोई किसी तरीके का ठप्पा दे दें, सेक्स के पीछे। हज़ार तरीके के उसने अड्डे खोज रखे हैं, जहाँ उसको शक है कि मुझे वो मिल जाएगा जो खो गया है। पर जो खो गया है वो मिलने का नाम नहीं ले रहा। जो खो गया है वो मिलने का नाम ही नहीं ले रहा। ये मत समझना कि ये कहानी कभी भी ख़त्म होगी, ये कहानी लगातार चलती रहेगी।

तुम जिसको एकाग्रता बोलते हो वो बहुत छोटी चीज़ है और बहुत थोड़ी देर के लिए आएगी, मन फिर जाएगा इधर-उधर। मन फिर जाएगा क्योंकि मन को जो चाहिए वो उसको मिल ही नहीं रहा है। जीवन भर भटकता रहेगा। अब ध्यान से देखतें हैं कि मन को क्या चाहिए जो उसको नहीं मिल रहा।

मन जिधर को भी जाता है इच्छा ही करता है ना? मन का किधर को भी जाना एक प्रकार कि इच्छा ही है। इस बात को गौर से समझो। मन जहाँ को भी जाता है, कुछ इच्छा होगी इसीलिए जाता है। और मन क्या चाहता है कि इच्छा कैसी हो जाए, पूरी हो जाए या अधूरी रहे? पूरी हो जाए। तुम्हें कुछ चाहिए, तुम्हें उसकी इच्छा है। इच्छा कहती है 'मिल जाए'। अगर मिल जाए तो इच्छा का क्या होगा? इच्छा खत्म हो जाएगी। तो तुम अंततः क्या इच्छा कर रहे हो कि मेरी इच्छा खत्म हो जाए। यही तुम्हारी गहरी-से-गहरी इच्छा है कि सारी इच्छाएँ खत्म हो जाएँ। यही तुम्हारी गहरी-से-गहरी इच्छा है, क्योंकि जब भी तुम कुछ पाते हो तो यही तो कहते हो ना कि यह मिल जाए और इच्छा चली जाए? या यह कहते हो कि मिल जाए फिर भी इच्छा बची रहे? ये तो नहीं कहते।

गहरी-से-गहरी इच्छा यही है कि इच्छा ही खत्म हो जाए। यही मन चाहता है, इसीलिए वो इधर-उधर दस दिशाओं में भागता है। मन इच्छा-शून्य होना चाहता है, मन शांत होना चाहता है। और तुम क्या कोशिश कर रहे हो? तुम कह रहे हो: "नहीं, मन लगे यहाँ पर"। और 'यहाँ को लगाना' क्या है? एक और इच्छा। मन क्या चाहता है? इच्छा-शून्य होना। वाकई, जो उसकी गहरी आकाँक्षा है वो है कि आकाँक्षा बचे ही ना।

इसी तरीके से कोशिश कौन करता है? एकाग्रता अपने आप में एक कोशिश है। वो कौन करता है? मन। जितनी कोशिश करोगे, मन उतना ताकतवर होगा, कोशिश अपने आप में एक इच्छा है। तुम जितनी कोशिश कर रहे हो, तुम उतना ज्यादा इच्छा को ताकत दे रहे हो? पर तुम कोशिश कर-कर के कोशिश कर रहे हो, कोशिश के पार

जाने की। तुम इच्छा कर कर के इच्छा को मारना चाहते हो, वो कैसे हो पाएगा? जब हम कह रहे हैं कि मन इच्छा-शून्य होना चाहता है तब हम यह कह रहे हैं कि मन बिलकुल शांत हो जाना चाहता है। पर जो तुम्हारी यह कोशिश है एकाग्रता की, ये मन को शांत होने नहीं देती। एकाग्रता खुद मन के ऊपर एक दबाव है, वो एक तरह की उत्तेजना है। मन शांत कैसे होगा? तुमने तरीका ही गलत चुन लिया है। ये सारे तरीके तो तुमको, जहाँ तुम्हें जाना है, उस से बिलकुल विपरीत ले जाएँगे—एकाग्रता की कोशिश, ये, वो।

ध्यान से देखो कि मन को अगर शांति चाहिए तो उसे शांत हो जाने दो। मन अगर इधर-उधर जाता है तो बिलकुल कोशिश मत करो उससे लड़ने की, क्योंकि वो मन तुम्हारा ही है, और जो उससे लड़ने की कोशिश कर रहा है वो भी वही मन है। मन को दबा कर रखने की कोशिश वैसे ही है जैसे ये हाथ दूसरे हाथ को दबाने की कोशिश करे (दोनों हाथों को साथ लाकर कहते हैं)। कौन-सा हाथ जीतेगा? दोनों में से कोई हाथ नहीं जीतेगा मगर मेरी ज़िन्दगी नरक हो जाएगी। मैं लगातार इसी कोशिश में रहूँगा कि एक हाथ जीत जाए। कैसे जीतेगा? दोनों हाथ मेरे ही हैं। मन का एक हिस्सा भाग रहा है और दूसरा हिस्सा उसको खींच रहा है और दबा रहा है। कैसे जीतोगे? हाँ, पूरा मन युद्धभूमि बन जाएगा और वहाँ लड़ाईयाँ चालू हो जाएँगी। तुम बंट जाओगे। तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे, मानसिक तौर पर। तो यह कोशिश कभी मत करना। और मैं तुमको जो बात बोल रहा हूँ, ये नयी है। क्योंकि तुम्हें आज तक यही बताया गया है कि मन को खींच के लाओ वापस। मैं तुमसे कह रहा हूँ मन जहाँ जाता हो उसको जाने दो, क्योंकि मन से लड़ाई कर के आजतक ना तो कोई जीता है ना जीत सकता है।

मन को वहाँ जाने दो, उसके साथ-साथ जाओ। मन कुछ पाना चाहता है—हमने कहा था ना कुछ खो गया है—उसको वहाँ जाने दो, उसके साथ रहो, उसको दबाओ नहीं। मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि तुम उसके साथ बेहोशी में रहो, तुम उसके साथ रहो होश में और देखो कि, "तू कहाँ जा रहा है? अच्छा, बता, तुझे कहाँ जाना है?" तुम पढ़ने बैठे हो और मन कह रहा है "देखो, खिड़की के बाहर मौसम बहुत अच्छा है"। "अच्छा ठीक है, तू मौसम को देखना चाहता है, चल देख लेते हैं मौसम को।" तुम्हें एक बड़ी मजेदार चीज़ मिलेगी, जैसे ही तुम मौसम को देखने जाओगे, मन कहेगा, "नहीं नहीं, ये नहीं देखना था।" तुम कहोगे, "ठीक है बेटा, तुझे ये नहीं देखना, तो बता क्या देखना है?" मन कहेगा, "वो ना खेल आ रहा है, खेल देखना है। अच्छा, चलो मैच देखते हैं। साथ में देखेंगे, तू भी देख, हम भी देखते हैं।" मैच देखने बैठ जाओ, पाँच मिनट नहीं बीतेंगे कि वो उकता जाएगा, "नहीं नहीं, ये भी नहीं देखना था।"

"अच्छा अच्छा, क्या चाहिए फिर?"

“वो कुछ खाने का मन कर रहा था किचन की तरफ चलो”

“ठीक है, कुछ खा लेते हैं”

कितना खाएगा? झूठी भूख है, दो निवाले, चार निवाले।

“अरे नहीं नहीं, ये नहीं था, वो दोस्त से बात करनी थी”

“अच्छा चलो, बात कर लेते है”

फालतू की बात भी कितनी देर करेगा? और इस पूरी प्रक्रिया में मन को दोष मत देना, मन को दबाना नहीं और ना बेहोश हो जाना। बिलकुल देखते रहना कि क्या चाहता है। जैसे छोटा बच्चा होता है ना जो जिद्द कर रहा होता है, उसके साथ कैसे रहते हैं? “हाँ, क्या चाहिए? लो, ये लो। और बोलो क्या चाहिए?” थोड़ी ही देर में मन को इस पूरी चीज़ की व्यर्थता दिखाई देने लगेगी। मन समझ जाएगा कि मैं जो कुछ मांग रहा हूँ वो मुझे चाहिए ही नहीं। मन समझ जाएगा कि ये सब कुछ कर के मैं वर्तमान से भाग भर रहा हूँ। जो मौजूद है, उस से भाग रहा हूँ। मन की सारी भाग-दौड़ रुक जाएगी और रुकते ही मन को वो मिल जाएगा जो उसे वास्तव में चाहिए।

बात समझ में आ रही है?

मन जहाँ-जहाँ जाता है, जाने दो उसे। सब्र रखो, कोई जल्दी नहीं है। क्योंकि ज़िन्दगी भर वो भागता ही तो रहा है और क्या करा उसने? तो जब वो जा रहा हो, तुम भी साथ हो लो, दोस्त की तरह साथ हो लो—वाचफुल फ्रेंड। “मैं तेरे साथ हूँ भाई, बोल क्या चाहिए तुझे? भविष्य की कल्पनाएँ करनी है? चल कर। तू भी कर, मैं देख रहा हूँ तू क्या कल्पना कर रहा है।” कितनी देर तक कल्पना करेगा? क्या कल्पना करेगा? वही घिसी-पिटी कल्पनाएँ करेगा, ये है,

वो है। शांत हो जाएगा। और जैसे ही शांत होगा, मन समझ जाएगा कि ये शान्ति ही तो चाहिए थी, ये इच्छा शून्यता ही तो चाहिए थी, फिर नहीं हिलेगा, फिर तुम्हें मन से लड़ना नहीं पड़ेगा। समझ में आ रही है बात?

मन का जो पूरा तरीका है, उसकी जो पूरी व्यवस्था है वो जानते हो क्या है? वो ये है कि जो उसके पास है, उसको वो भूलता है, पर चूंकि भूलता है इसीलिए, कष्ट में आ जाता है। कष्ट में आते ही वो ढूँढ़ता है, लेकिन ढूँढता वो सही जगह पर नहीं है, गलत जगह पर ढूंढ़ता है। मन को कुछ नहीं चाहिए होती मन को शान्ति चाहिए होती है, शान्ति उसे उपलब्ध है पर उसे भूल जाता है, अशांत हो जाता है। अशांत होते ही शान्ति को ढूँढना शुरू करता है। और कहाँ ढूंढ़ता है? जहाँ है वहाँ नहीं ढूंढ़ता। वो उसको ढूँढता है भविष्य में, वो उसको ढूँढता है फ़ोन पर, वो उसको ढूँढता है फेसबुक पर, वो उसको ढूँढता है रिश्ते-नातों में वो उसको ढूँढता है सेक्स में, कि ये सब में शायद शांति मिल जाएगी।

और उन सब में उसको मिलती नहीं और जितना उसको मिलती नहीं वो उतना और व्यग्रता से ढूंढ़ता है। कहता है, "शायद इसलिए नहीं मिली क्योंकि मैंने जोर से दौड़ नहीं लगाई। मैं और ज़ोर से दौड़ लगाऊँ तो शायद मिल जाए शांति और जितनी ज़ोर से दौड़ लगाता है उतना और अशांत होता जाता है। ये मन की पूरी व्यवस्था है। इस तरीके से वो काम करता है इस बात को समझ लो जैसे ही समझ लोगे वैसे ही जान जाओगे की इसका पूरा चक्कार क्या है? इसका एक ही काम है भागना। और भागने के लिए इसको दोष मत दो। क्योंकि उसको कुछ चाहिए।

भागता इसीलिए है क्योंकि उसे कुछ चाहिए। जो उसको चाहिए वो उसे आसानी से मिल सकता है। तुम थोड़ी समझ से काम लो बस, जो उसको चाहिये वो उसको दे दो। उसको शान्ति चाहिये , उसको शांत हो जाने दो। उसको दबा के उसको शांत नहीं कर पाओगे। उसके साथ लड़ के उसको शांत नहीं कर पाओगे। होश में रहो, साथ में रहो, होश में रहो और मन के साथ में रहो। फिर इसका खेल देखना। पढ़ने बैठो, मन इधर-उधर भागे, बिलकुल कोशिश मत करो लड़ने की। थम जाओ बिलकुल, ठहर जाओ। और पूछो, हाँ भाई बताओ कहाँ जाना है तुम्हें?

जैसे ही उससे ये पूछोगे, उस की भागने की इच्छा आधी तो वहीँ खत्म हो जाएगी। वो भागने की इच्छा करता भी इसीलिए है क्योंकि तुम दबाने पर तुले हो। जितना तुम उसको दबाते हो उतना उसकी भागने की इच्छा होती है। जैसे ही तुम ठहर जाओ, कहोगे ठीक तेरी बात मानी, बोल क्या करना चाहता है? तो आधी इच्छा तो उसकी वहीँ खत्म, बाँकी बची आधी। आधी वो अपनी पूरी करने की कोशिश करेगा, तुम साथ में लगे रहो। जितना पूरा करने की कोशिश करेगा उतना उसको व्यर्थता दिखती जाएगी दौड़ धूप की। ऐसे तो पूरी नहीं हो रही। ऐसे भी पूरी नहीं हो रही

ऐसे भी पूरी नहीं हो रही। नहीं हो रही ना पूरी बेटा। दिख रहा है? हाँ दिख रहा है। तो फिर क्या करना है? कुछ नहीं करना है।

जैसे ही कहेगा, "कुछ नहीं करना है", वो शांत हो गया। अब तुम्हे कोई एकाग्रता नहीं चाहिए। जरूरत ही नहीं है एकाग्रता की। एकाग्रता का अर्थ तो है अन्यमनस्कता से लड़ाई। उस लड़ाई की अब जरुरत ही नहीं है। तूम एकाग्रता अब हो ही नहीं। मन भागना ही नहीं चाह रहा तो एकाग्रता की क्या ज़रूरत है। मन अब मौजूद है। अब अवलोकन चल रहा है। इस अवलोकन से एक नयी चीज़ निकलेगी। इनसाईट, अंतर्दृष्टि। जो कंसंट्रेशन से कभी नहीं निकल सकती एकाग्रता तुमको सतह सतह पे बता सकता है की क्या है। पर वो तुमको, गहरी पैनी अंतर्दृष्टि नहीं दे सकता, अंतर्दृष्टि समझते हो? एक ऐसी नजर जो छुपे हुए को भी जान लेती है। जो नहीं लिखा है उसको भी पढ़ लेती है। जो नहीं कहा जा रहा है उसको भी सुन लेती है। वो चीज़ तुमको कंसंट्रेशन नहीं दे सकता।

इसी कारण तुमनें एकाग्रता कर के जो भी करा है उसमे तुम्हे कुछ विशेष मिला नहीं है। थोड़ा बहुत कुछ मिल गया है। पर पूरा-पूरा कभी नहीं मिला है। क्योंकि पूरा पूरा कभी एकाग्रता से मिलता भी नहीं है। एकाग्रता से नहीं मिलता, वो ध्यान से मिलता है।

प्र: सर, अगर ऐसे देखा जाए तो इच्छाएँ तो बहुत सारी हैं। फिर मन तो कभी शांत ही नहीं होगा हमारा?

आचार्य: मन तब तक शांत नहीं होगा जबतक तुम उन इच्छाओं को महत्व देते रहोगे। और जानते हो तुम इच्छाओं को महत्व कैसे देते हो? उनको दबा कर के। इच्छा बड़ी, और बड़ी, और बड़ी, जानते हो कैसे हो जाती है? क्योंकि तुमने उसके साथ बड़ी जबरदस्ती करी है। इच्छा के साथ जितनी जबरदस्ती करोगे वो उतनी भीमकाय होती जाएगी।

प्र: सर अभी आपने कहा की एकाग्रता से नहीं, कोई चीज़ हमें ध्यान से मिलती है? सर अगर हम एकाग्र हीं नहीं होंगे तो ध्यान कैसे लगा पाएँगे?

आचार्य: तुम समझे ही नहीं हो फिर एकाग्र का मतलब। तुम्हारे मन में एकाग्र का वही अर्थ घूम रहा है जो पहले से ले

कर बैठे हो। जब एकाग्र हो तो तुम लड़ रहे हो लगातार।

प्र: मगर मन से तो कोई लड़ ही नहीं सकता।

आचार्य: पर तुम तो लड़ते हो ना, असंभव को संभव करना चाहते हो। अगर नहीं लड़ते तो एकाग्रता का प्रश्न नहीं पैदा हो सकता न बेटा। एकाग्रता का तो अर्थ ही है लड़ना। और जिस एकाग्रता में लड़ाई नहीं, वो तो एकाग्रता रही ही नहीं वो तो ध्यान हो गया। एकाग्रता का तो अर्थ ही है लड़ाई। इसीलिए मैंने शुरू में ही कहा था कि एकाग्रता के साथ ही अनाय्मानास्क्ता आती है, यदि एकाग्रता न हो तो क्या तुम बात भी करोगे एकाग्रता की? तुम्हे एकाग्रता की बात भी इसीलिए करनी पड़ती है, तुम कहते हो, "मैं एकाग्र होना चाहता हूँ।" ये तुम्हें बात भी इसीलिए करनी पड़ती है क्योंकि तुम हर समय कैसे रहते हो? अन्यमनस्क। तो एकाग्रता का तो अर्थ ही है बिखरा हुआ मन। वर्ना एकाग्रता का सवाल ही क्यों पैदा होगा?

प्र: अगर हम पढ़ रहे हैं और एक ख़याल आता है कि नहीं चलो टीवी देखते हैं और फिर एक ख़याल ये भी आता है कि कल पेपर है चलो टीवी नहीं देखेंगे, पढेंगे। तो फिर अन्यमनस्कता कहाँ है?

आचार्य: तुमनें जीवन भर यही किया ना कि पढ़ने बैठे और मन भाग रहा है टी.वी. की ओर, और मन भाग रहा है इधर उधर। ठीक? वो तुम्हारी नहीं सबकी कहानी है। ये जो दिमाग में ध्यान आ रहा है इसने मन को दो हिस्सों में बाँट दिया। एक हिस्सा कह रहा है देखो। दूसरा हिस्सा कह रहा है पढ़ो।

प्र: सर ,एक ख्याल आया था और वो चला गया।

आचार्य: चला नहीं गया। तुम मन को समझ नहीं रहे हो। कोई भी ख़याल कभी जा नहीं सकता। कभी नहीं जा सकता। फ्रायड की पूरी पूरी खोज ही यही है मन की। पूरा जो उसका मनोविज्ञान का विश्लेषण है वो यही है।

प्र: सर, इस तरह से तो आदमी पागल है?

आचार्य: आदमी पागल है। आदमी पागल है, पूरी तरीके से। फ्रॉयड की पूरी रिसर्च ही यही है कि कोई ख़याल कभी मन से जा सकता नहीं है। पुराने समय में हमने लगातार ये माना था की अगर विचार को अहमियत ना दो, अगर विचार को दबा दो, चित्त निरोध कर दो, तो वो ख़याल चला जाता है। फ्रॉयड ने बहुत प्रयोग कर के एक नयी चीज़ बताई हमको। उसने कहा जाता नहीं है, मन का एक कमरा होता है, मन एक कमरे जैसा है, उस कमरे का एक बसेमेत भी है। तुम जिस विचार को दबा देते हो वो उस कमरे से तो हट जाता है, ये कमरा सोच का कमरा है। तुम्हें लगेगा नहीं कि विचार बचा है। पर वो कमरे से हट के तहखाने में घुस जाता है, वो दिमाग के तहखाने में घुस जाता है। और वहाँ पर जा कर के वो तुम्हारे जीवन को जबरदस्त रूप से प्रभावित करता है। तुम्हें दिन मैं सेक्स का ख़याल आता है तुम उसको दबा देते हो वो रात में सपना बन के आएगा।

तुम्हे पता भी नहीं चलेगा की मुझे ये सपने क्यों आते हैं? वो सिर्फ इसी कारण आते हैं क्योंकि दिन में जब वो ख़याल आता है तो तुम कहते हो, “छिः! गन्दी बात” और उसको दबा देते हो, अब वो बेसमेंट मैं चला गया। अब वो सपना बनेगा। सपना अगर नहीं बना तो भी वो तुम्हारी वृत्ति बन जाएगा और तुम पाओगे की अजीब घटनाएँ हो रही हैं। लडकियाँ सामने से निकलती हैं और उनकी तरफ नज़र उठ जाती है अपने आप। क्या नज़र तुमसे पूछ के उठ रही है? क्या नज़र तुमसे पूछ के उठ रही है? नहीं अपने आप उठ रही है। ये कहाँ से उठ रही है? ये उसी ख़याल की करतूत है जिसको तुमने दबा दिया था। और वो ख्याल बहुत छोटा सा था वो ख़याल बहुत छोटा सा था।

तुम पाओगे कि जिस प्रकार के अपराध जिस समाज में सबसे ज्यादा होते हैं वो समाज वही है जिस ने उन बातों पर सबसे ज्यादा बंदिश लगा रखी होती है। जितना दबाओगे तुम विचार को उतनी ऊर्जा दोगे। तुम सोचते हो की दबाने से विचार चला गया। मन हँसता है मन कहता है, “पगले, तुम जानते भी नहीं हो कि वो दबाने से जाता नहीं है वो स्प्रिंग की तरह है, स्प्रिंग को दबाओ तो स्प्रिंग छोटी हो जाती है पर साथ ही वो कुछ इकठ्ठा कर लेती हो? क्या? जितनी उर्जा तुमने इस्तेमाल की उसको दबाने के लिए, स्प्रिंग उसको पी गयी है तुमको लग रहा है स्प्रिंग तो गयी, छोटी सी हो गयी है, कहाँ बची? तुमको पता भी नहीं है अब होगा क्या? तुम्हारी ही इस उर्जा का इस्तेमाल कर के अब वो स्प्रिंग उछलेगी और फिर तुम ये कहोगे ये? मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ? ये तुम्हीं ने किया है।

उसको दबाने की कोशश कर कर के तुमनें उसको ताकतवर बना दिया है। ये हत्यारे, ये बड़े बड़े लुटेरे, ये बलात्कारी, तुम्हें लगता है कहाँ से आते हैं? ये सब दमन के परिणाम हैं, तुम इतना दमन करते हो कि अंततः विस्फ़ोट

हो जाता है। तुम अपने आप को ही इतना दबाते हो कि अंत में बिलकुल ज्वालामुखी फटता है और फिर तुम कहते हो, “ये क्या हो गया?” उदाहरण के लिए जो लोग कभी गुस्सा व्यक्त नहीं करते, वो जिस दिन गुस्से में आते हैं, उस दिन दूर-दूर रह लेना। जो आदमी बिलकुल पी जाता हो वो जिस दिन फटता है, जो आदमी बात-बात पर चिढ़ जाता है, बात-बात पर गुस्सा व्यक्त कर देता है वो ठीक है। वो कोई बड़ा नुकसान नहीं पँहुचा सकता लेकिन जो आदमी कभी गुस्सा व्यक्त न करता हो उसे भगवान बचाए। वो जिस दिन फटता है उस दिन दो-चार लाशें गिरती हैं। क्योकि वो जो उसने व्यक्त नहीं होने दिया वो उसके भीतर अब इकठ्ठा हो रहा है, इकठ्ठा हो रहा है। फिर फटेगा, जबरदस्त रूप से फटेगा।

संचय होता रहा है उसका। जैसे कि तुम्हारी साँस रोक दी जाए तीन मिनट को और फिर जब छोड़ा जाए तो कैसी साँस लोगे? (तेज़ी से साँस लेकर दिखाते हैं) जैसे पी जाना चाहते हो पूरी दुनिया को ही, ऐसे साँस लोगे। वैसी ही हालत होती है हमारी, हमें लगातार घर परिवार ने धर्म ने शिक्षा ही यही दी है कि दबाओ, और यह शिक्षा बड़ी ही उलटी शिक्षा है। वास्तव में पूछो तो किसी भी जानने वाले ने कभी भी दमन की शिक्षा नहीं दी है, पर नासमझों को बात समझ में नहीं आयी, तो उन्होंने कहा इसका मतलब शायद यह है कि दबाओ।

कुछ अच्छी बातें हैं वो जो मन में आनी चाहिए और कुछ बुरी बातें हैं वो मन में नहीं आनी चाहिए। छि छि ये तो छि छि है और नासमझों को यह समझ में नहीं आया कि वो छि छि दबा-दबा कर के पूरे मन में भर गयी है और पूरा मन अब बिलकुल महक रहा है उसी से, इसीलिए अगर तुम किसी मनोचिकित्सक के पास जाओ और तुम उससे कहो कि मुझे गुस्सा बहुत आता है या मैं निराश बहुत रहता हूँ या मैं अचानक फट पड़ता हूँ या मेरे भीतर सेक्स को लेकर बड़ा तूफ़ान मचा रहता है। तो वो तुमको एक अकेले कमरे में छोड़ देगा और कहेगा, कोई कैमरा नहीं लगा यहाँ कुछ नहीं है, दीवारों पे जितना हाथ मारना है मारो, पागल हो के चिल्ला सकते हो चिल्लाओ, बच्चा बन सकते हो, कुत्ता बन सकते हो, कपडे फाड़ दो, चीज़ें तोड़ दो। जो करना चाहते हो करो, इसको रेचन कहते हैं, इसको कहते हैं रेचन।

जिबरिश एक तकनीक है, वो यही करती है। तकनीकि रूप से कैथारसिस इसका नाम है, रेचन हिंदी में, अंग्रेजी में कैथारसिस। कैथारासिसका अर्थ ही यही है की यह गन्दगी जो इकठ्ठा कर ली है इसको बहने दो क्योंकि और कोई तरीका नहीं है इसके ख़त्म होने का बहने के आलावा। तो बिलकुल मत सोचना की कोई भी विचार तुम खत्म कर सकते हो, जिसको तुमने ख़त्म जान लिया इस वक़्त वो तुम पर हँस रहा होगा। कह रहा होगा, “खत्म हो गया हूँ? अभी बताऊँगा मैं।मैं दिख नहीं रहा हूँ छुप गया हूँ, मैं जब सामने आऊँगा तो तेरी हवा खराब हो जाएगी। तुझे पता भी नहीं चलेगा कि तेरा यह रूप भी है।

लोगों के देखे हैं ना, कई-कई रूप होते हैं। तुम कहते हो यह तो बड़ा सभ्य आदमी लगता था इसने ऐसा कैसे कर दिया? वो वही है, वो छुपा हुआ था अन्दर वो निकल पड़ा, अन्दर का दानव। वो दानव है नहीं, वो एक छोटा सा विचार होता है पर तुमको शिक्षा यह मिली हुई है की इसको दबाओ। तो दबा-दबा के तुम उसको बड़ा कर देते हो जैसे गुब्बारा, फुलाए जा रहे हो, फुलाए जा रहे हो। था कुछ नहीं, छोटी सी बात थी। छोटा सा बच्चा है, ज्यादा उम्र नहीं दस-बारह ही साल का, वह जा रहा है किसी लड़की से बात करने, माँ ने टोक दिया, "अब बड़े हो रहे हो, लड़कों में खेला करो लड़कियों से नहीं बात करते।"

हो कुछ नहीं जाता। थोड़ा-बहुत खेलता, कूदता जो आम तौर पर होता है बच्चों में, चुहलबाज़ी करते, थप्पड़-थूप्पड़ चलाते, वापस जाके सो जाता, खत्म। पर अब टोक दिया गया है, अब वो कहेगा गड़बड़ है बात कुछ, अब वो खेलेगा कम लड़कियों की ओर ज्यादा देखेगा, कहेगा, "रोका गया है बात कुछ है, वर्ना रोका नहीं जाता।" बात कुछ भी नहीं थी, बड़ी स्वाभाविक सी बात है। एक लड़का है एक लड़की है वो आपस में मिलना चाहते हैं इसमें कोई बड़ी बात नहीं पर तुम्हें रोक दिया गया अब बड़ी बात हो गई और अब मन उधर को ही भागेगा और जितना रोका जाएगा उतना ही भागेगा। जितना ज्यादा रोका जाएगा उतना ही भागेगा। हैरान कर देगा तुमको, पगला जाओगे। तुम जैसे हो ठीक हो, कोई दिक्कत नहीं है।

जिसने तुमको बनाया है, जिस स्त्रोत से तुम आए हो, उसी स्त्रोत से तुम्हारी इच्छाएँ भी आती हैं। इच्छाओं को पाप मत समझ लेना। मन पूरा होना चाहता है इसी कारण मन में इच्छा है, कोई इच्छा पाप नहीं होती। नासमझी पाप होती है, बेवकूफी पाप होती है, इच्छा पाप नहीं है। बेहोशी पाप है, क्योंकि होश लेकर के आये हो तुम, इच्छा लेकर के आये हो न, होश भी है। होश में जियो। इच्छा भी उठे तो उसे देखो ध्यान से, होश में। उससे लड़ो नहीं, दबाओ नहीं। मामला क्या है? बात क्या है? और इसी का नाम परिपक्वता है। मैं अपनी इच्छाओं को भी समझता हूँ, मैं इस मन के हर क्रिया कलाप को समझ रहा हूँ।

"अब डर लगता है यह सब सुन के कि सर इच्छा तो बड़ी भयानक भयानक है, अगर पूरी करने चलें तो क्या होगा?" कुछ नहीं होगा। पहली बात तो यहाँ बैठे हुए हो इसीलिए इच्छा बड़ी-बड़ी है। मन उस छोटे बच्चे की तरह है जो बैठ के तो बहुत मचलता है पर जब उससे पूछो अच्छा क्या चाहिये चलो बाज़ार खरीद देते हैं? तो उसे कुछ विशेष नहीं चाहिए, कुछ विशेष नहीं चाहिए। उसको असल में ध्यान चाहिए। वो यह सब करता ही इसीलिए है क्योंकि कोई ध्यान नहीं दे रहा ना उस पर। ध्यान दे दो, पूछ लो, क्यों उदास है, क्यों परेशान है? क्यों मूड ख़राब है? वो ठीक हो जाएगा।

छोटे बच्चे से ज्यादा बड़ा नहीं होता ये (सिर की तरफ इशारा करते हुए)। इसे प्यार से रखो, लड़ो नहीं।

तुम्हारे साथ एक छोटा बच्चा हो उससे लड़ोगे? "अरे तू पापी, आज फिर तूने चड्डी में कर दी। दुष्ट, राक्षस, असुर, अधम, नर्क में सड़ेगा।" बच्चा तुरंत बड़ा हो जाएगा ये सब बातें सुन के। पाँच सात शब्द नए सीख लिए उसने – दुष्ट और राक्षस और असुर। दिल तो बच्चा है जी। (मुस्कुराते हुए)

....

(कानपुर, 2013)

न एकाग्रता, न नियंत्रण, मात्र होश

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, मन को नियंत्रित कैसे करें? मन को अपने अधीन कैसे करें? मन को संयम में कैसे लाएँ? और उसी से सम्बंधित अगली बात कि — मन एकाग्र कैसे हो जाएँ?

आचार्य प्रशांत: एक-दो बातें समझनी पड़ेंगी। मन को नियंत्रित करने की जो चाह है वो भी उसी मन से निकल रही है जिसको तुम नियंत्रित करना चाहते हो। समझ रहे हो बात को? मन को जब तक एक आकार मिला हुआ है, मन पर जब तक बाहरी प्रभाव डेरा जमा करके बैठे हुए हैं, तब तक वो वैसे ही चलेगा जैसा उन प्रभावों को उसको चलाना है।

मन को संयमित नहीं किया जा सकता, साफ़-साफ़ कह रहा हूँ। और इस बात को समझ लो, क्योंकि तुम ही नहीं, बड़े-बड़े विद्वान और बड़ी उम्र के लोग भी इस तरह की बाते करते हैं; मन का नियंत्रण, आत्म-संयम, और ये सब। ये अर्थहीन बातें हैं। क्योंकि तुम जो बन गए हो, तुमने अपनी जिस छवि के साथ तादात्मय बना लिया है, अब वो तो अपने रंग दिखाएगी ही। तुमने जो खाना खा लिया है, उसके जो प्रभाव शरीर पर पड़ने हैं, वो तो पड़ेंगे ही।

तुम ऐसा ही सवाल पूछ रहे हो, कि तुम ख़ूब सारा ऐसा भोजन कर लो जो शरीर में गर्मी पैदा करता है, और फिर कहो कि—"अब तापमान नियंत्रित कैसे करें?" अब नहीं हो सकता कुछ भी। सोडियम पर पानी पड़ गया है, अब जो होना है, वो होकर रहेगा; विस्फोट होगा। पर तुम्हारी गहरी-से-गहरी इच्छा ये है कि सोडियम पर पानी पड़ता भी रहे, और विस्फोट भी ना हो। तुम दोनों हाथों लड्डू रखना चाहते हो। तुम कहते हो कि—"हम जिस प्रकार का जीवन जी रहे हैं, ऐसा जीवन जीते भी रहें, उसके मज़े भी लूटते रहें, और मन भी वैसा ही चले जैसा मन की मर्ज़ी है।" नहीं ऐसा नहीं हो पाएगा। कर्मफल तो भुगतना ही पड़ेगा।

एकाग्रता का प्रश्न भी इससे जुड़ा हुआ है, समझना इस बात को।

हम सबके मन संस्कारित हैं, हम सबके मन को एक आकार दे दिया गया है; उस सब पर कुछ रंग चढ़ा दिए गए हैं। जैसे हमें संस्कार दे दिए गए हैं, वैसी ही हमारी एकाग्रता हो गई है। तुम भूल कर रहे हो अगर तुम सोचते हो कि तुम एकाग्र नहीं हो सकते। तुम सब गहरी-से-गहरी एकाग्रता को पाते हो, लेकिन उस एकाग्रता के विषय वही होते हैं, जो तुम्हें तुम्हारे संस्कारों ने सिखाए हैं।

मैं अभी यहाँ पर पीछे एक चित्रों का एक संग्रह लगा दूँ, जिसमें सौ प्रकार के चित्र हों, और उसी में बीच में कहीं पर एक छोटा-सा ऐसा चित्र हो जो तुम्हारे मन को खूब रुचता हो, तुम एकाग्र हो जाओगे। इतने बड़े चित्रों के समूह में तुम वो छोटा-सा चित्र ढूँढ निकालोगे, और उसी पर तुम्हारी आँखें और मन दोनों जम जाएँगे।

इतना विशाल भंडार है इंटरनेट, तुम उस में से वही खोज निकालते हो जो तुम्हें चाहिए, और पूरी तरह एकाग्र हो जाते हो वहाँ पर। तब तुम कभी पूछने नहीं आते कि—"वो वाली साइट मिल तो गई है, पर एकाग्र नहीं हो पा रहे हैं।" मैंने कभी ऐसा सवाल पूछते तुम्हें सुना ही नहीं।

दुनिया की जितनी बेहूदगियाँ हैं, उन पर तुम पूर्णतया एकाग्र हो जाते हो। कोई दिक़्क़त ही नहीं होती। तो कभी मत कहो, "हम एकाग्र हो नहीं पाते," बल्कि पूछो अपने आप से —"मन ऐसा कैसे है कि उसने यही विषय चुन लिए हैं एकाग्रता के?"

ये कमरा है, ये पूर्णतया साफ़ है, चमक रहा है। पर अभी इसी कमरे में एक मक्खी आ जाए, तो पूरी एकाग्रता से अपने लिए कोई ऐसा स्थान चुन लेगी जो गन्दा हो। मक्खी के सामने कोई विकल्प ही नहीं है। यदि तुम मक्खी हो गए, तो तुम्हें गन्दगी पर ही एकाग्र होना पड़ेगा, तुम सफ़ाई पर एकाग्र नहीं हो पाओगे। तो प्रश्न ये पूछो —“मैं मक्खी हुआ क्यों?”

मक्खी हो जाने के बाद अब कोई चुनाव बचा ही नहीं है। घोड़ा हो जाने के बाद अब घास दिखते ही एकाग्र हो जाओगे। इतना ऊँचा उड़ती है चील, और बड़ी एकाग्रता से ज़मीन पर पड़े हुए छोटे-से-छोटे माँस के टुकड़े को पकड़ लेती है। अगर चील हो गए तो माँस के छोटे से टुकड़े पर एकाग्र होना ही पड़ेगा। पूछो, “मन हुआ क्यों मक्खी? मन हुआ क्यों चील जैसा?” असली प्रश्न वो है।

हम चील नहीं थे सदा, हम मक्खी नहीं थे सदा। बच्चा काफ़ी कुछ साफ़, खाली, निर्दोष ही पैदा होता है। हाँ कुछ संस्कार होते हैं, पर बहुत कुछ साफ़ होता है। तुम पूछो कि—“ये सब मैं अपने ऊपर क्या लिखकर के बैठा हुआ हूँ?” और जो तुम लिखकर के बैठे हो, मन उधर को ही जाएगा। तुम नहीं कर पाओगे उसको संयमित।

जो तुम्हारे मन ने धारणा बना ली है कि—‘यह महत्त्वपूर्ण है’—मन उसी पर एकाग्र हो जाएगा। तुम मन को नहीं रोक पाओगे। लड़ ज़रूर लोगे, और लड़ते तुम लगातार ही रहते हो मन से। उस लड़ाई को तुम कभी जीत नहीं सकते। तुम मन का दमन कर लोगे, अधिक-से-अधिक यही करोगे कि मन कहीं पर भागना चाहता है, और तुम मन के साथ ज़बरदस्ती करके उसको चुप कर दो। ज़बरदस्ती चुप कर भी दिया तो क्या? वो कुलबुलाता रहेगा, और तुम कष्ट में रहोगे।

बात समझ रहे हो?

पर बहुत कम हुआ है कि मुझसे लोगों ने कहा हो कि—“हम अपना सम्पूर्ण कायाकल्प करने में उत्सुक हैं। हमें धो ही डालना है इस मन को, हमें कुछ शेष नहीं रखना। हमें नहीं लगाव है कि हमने ये जान लिया, ये पढ़ लिया, ये

संस्कार है, ये धारणाएँ हैं।" ऐसा कोई मिलता ही नहीं बहादुर जो कहे कि—"मैं तैयार हूँ अकेला खड़े होने को, धारणाओं को पीछे छोड़कर।" हाँ, लोग ये सवाल पूछते ज़रूर मिल जाते हैं कि—"देखिए, बीमार तो हमें पूरी तरह रहना है, क्योंकि हमने ये मान ही रखा है कि बीमारी हमारा स्वभाव है। पर ये बताइए कि बीमार रहते हुए भी हमें बुख़ार कैसे ना आए?"

अब ये तुम असम्भव की माँग कर रहे हो। तुम असम्भव की माँगकर रहे हो। तुम कह रहे हो कि—"बीमार तो हमें रह ही आना है, पर बीमार रहते हुए भी हम सहज-सहज सा, स्वस्थ-स्वस्थ सा कैसे अनुभव करें? कोई नुस्ख़ा दीजिए।" ऐसा कोई नुस्ख़ा कभी हुआ ही नहीं है। हाँ, ऐसा नुस्खा देने वाले नकली हक़ीम बहुत हैं बाज़ार में, पर वो तुम्हें धोखा ही दे रहे हैं।

बीमारी जाएगी तो पूरी जाएगी, स्वास्थ्य आएगा तो पूरा आएगा। पर तुम्हारी माँग ये है कि हम बीमार तो बने रहें, हमें कुछ इधर-उधर की बातें और बता दीजिए। वो वैसा ही है कि जैसे कोई कैंसर का मरीज़ आए और उससे कहा जाए कि—"देखो कैंसर है, तुम्हारे पूरे शरीर का रेचन करना पड़ेगा," और वो कहे कि—"नहीं-नहीं, कुछ थोड़ा-बहुत बता दीजिए, कहिए तो बाल साफ़ करा लूँ, इतना मुझे स्वीकार है।" अब सिर के बाल घुटवा लेने से कैंसर तो नहीं ठीक हो जाएगा।

"अच्छा बताइए, ज़रा एक-आध, दो मील दौड़कर आ जाऊँ, पर कैंसर नहीं छोड़ूँगा। क्यों? क्योंकि कैंसर बड़ा प्यारा है, विरासत में मिला है। खानदानी कैंसर है, कैसे छोड़ दूँ? कैंसर नहीं छोड़ सकता, और बताइए क्या करना है। दाँत साफ़ कर लूँ?" दाँत साफ़ करने से कैंसर नहीं जाएगा। वो ज़हर तुम्हारे रेशे-रेशे में भरा हुआ है। कैसे हो जाओगे एकाग्र?

तुम कहते हो, "पढ़ाई पर एकाग्र नहीं हो पाता।" तुम्हें तुम्हारी पूरी शिक्षा ने बस ये सिखाया है कि—"उधर को जाओ जिधर सुख मिलता हो।" तुमसे कहा जा रहा है कि—"तुम पढ़ो इसलिए ताकि अंततः नौकरी मिल जाए, तुम जीवनयापन कर सको," —सुख। "तुम पढ़ो इसलिए क्योंकि खूब पढ़े-लिखे होगे तो तुम्हारी अच्छी शादी हो पाएगी,"—सुख। "तुम पढ़ो इसलिए क्योंकि जो पढ़ा-लिखा होता है उसे सम्मान मिलता है,"—सुख।

तो जब पूरी शिक्षा तुम्हें यह कह रही है कि शिक्षा का उद्देश्य ही सुख की प्राप्ति है, तो जब तुम पढ़ने बैठे हो, उसी

समय सुख अगर किसी और दरवाज़े से आ रहा है, तो तुम उधर को क्यों ना जाओ? अंततः बड़ा क्या है? सुख।

अब मैं पढ़ने बैठा हूँ, और उसी समय खिड़की से बाहर मेरा दोस्त मुझे बुला रहा है कि—"आ क्रिकेट खेलते हैं," तो सुख जिधर दिखता है, मैं क्यों ना जाऊँ उधर? मेरी सारी एकाग्रता तो सुख के पीछे है, और मैं जा रहा हूँ सुख के पीछे। मेरी शिक्षा ने ही मुझे यही सिखाया है—"सुख के पीछे दौड़ो।" तुम्हें आज पता चल जाए कि जो तुम पढ़ रहे हो वो करके नौकरियाँ नहीं लगनी हैं, तो तुम पढ़ना छोड़ दोगे। या तुम्हें ये पता चल जाए कि कॉलेज आने के लिए, यूनिवर्सिटी आने के लिए अब अटेंडेंस की कोई आवश्यकता नहीं है, तुम कॉलेज आना छोड़ दोगे।

तो तुम्हारी शिक्षा ने जो दूसरी चीज़ सिखाई है, वो है—डर। और डर पर मन बड़ा एकाग्र होता है। तुम्हारे सामने एक शेर खड़ा हो, तुम्हारी सारी एकाग्रता शेर पर चली जाएगी। मौत जब सामने आ रही हो, तो तुम इधर-उधर की फ़िज़ूल बातें नहीं सोचोगे, तुम्हारा पूरा मन एकाग्र हो जाएगा मौत पर।

मन दो ही जगह एकाग्र होता है, या तो सुख की तरफ़, या दुःख की तरफ़। या तो लालच की तरफ़, या भय की तरफ़। और तुम्हारे मन को इन्हीं विचारों से परवरिश ने, शिक्षा ने, और संस्कारों ने भर दिया है, कि—जो करो वो लाभ के लिए करो। 'लाभ' अर्थात—सुख। तो जिधर ही तुम्हें सुख दिखता है, तुम उधर को ही भाग लेते हो।

तुम पढ़ने बैठे हो और आँखों पर नींद सवार है, अब सोने में तुम जानते हो कि बड़ा सुख है। तो जब सुख ही पाना है, तो सो ही जाते हैं। इसमें अब ताज्जुब क्या बचा? तुम क्यों कहते हो कि—"हम एकाग्र नहीं हो पाते?"

मन पूरे तरीके से दूषित है। एकाग्रता वो जानता है, पर एकाग्रता के जो उसने विषय चुने हैं वो अपने दूषण से चुने हैं। और उत्सुक हो अगर मन का पूरा शोधन करने में, तो अपने जीवन को सुबह से शाम तक देखो—आज का ही दिन देख लो, चाहे कल का, चाहे बीते हुए कल का, और चाहे परसों का। और देखो कि मन कहाँ-कहाँ जाकर के बैठ जाता था। ऐसा नहीं है कि ये पक्षी कहीं बैठना जानता नहीं है। पर ये सबसे गन्दी डालें चुन रहा है बैठने के लिए।

पक्षियों को लेकर के ही कबीर साहब का एक दोहा है, बड़ा सुन्दर है।

पहले ये मन काग था, करता आतम घात। अब तो मन हंसा भया, मोती चुन-चुन खात।।

तो मन जब कौए जैसा हो गया है तो गन्दी से गन्दी जगह जाकर के बैठ जाता है; वही उसकी एकाग्रता है। और कहा है कबीर ने कि मन को हंस जैसा कर लो, जिसका गन्दगी की ओर ध्यान ही ना जाए। जो गन्दगी में से भी बस मोती चुन-चुन के खाए।

उसके लिए तैयार हो क्या? उसके लिए बहुत कम लोग तैयार होते हैं। लोग कहते हैं कि—"नहीं, कौआ तो हमें रहना है। हम खानदानी कौए हैं। कौआ रहते हुए भी हमें मोती चुगने हैं।" नहीं, वो नहीं हो पाएगा। कौआ तो आत्मघात ही करेगा, और ये बात बड़ी पुरानी है। जिन्होंने भी जाना है, इस बात को जान लिया है—अपना पूर्ण पुनर्जन्म करना पड़ेगा, तब बात बनेगी।

सवाल सिर्फ़ ये नहीं है कि—जब किताब के साथ बैठ रहे हो तब क्या हो रहा है? पूरे दिन का सवाल है, और पुरे जीवन का सवाल है। मैंने कहा कि—पूरे दिन को देखो। सुबह उठते हो, तो मोबाइल में क्या देखते हो? किधर को जा रहे हो? अखबार में कौन-सी खबरें हैं जिनकी ओर जाते हो? किन लोगों को तुमने अपना दोस्त बना रखा है?

और जैसे-जैसे पूरे जीवन में परिवर्तन आना शुरू होगा, तुम पाओगे कि तुम्हारी एकाग्रता भी बदलने लगी है। वो एक पूर्ण बदलाव होगा, जीवन के किसी हिस्से में आंशिक बदलाव नहीं। तुम पाओगे कि तुम्हारे निर्णय, तुम्हारी पसंद, पूरी-पूरी बदल रही है। तुम एक किताबों कि दुकान में जाते हो, तुम्हें कौन-सी किताब पसंद आती है, ये बात बदल गई है। तुम टी.वी. खोलते हो, तुम्हें कौन-सा धारावाहिक पसंद आ रहा है, वो बदल गया है। तुम्हारी एकाग्रता का पूरा केन्द्र ही बदल गया है। किस प्रकार के दोस्तों को तुम अपने क़रीब लाते हो और किनसे कहते हो, कि—"क्षमा आपके साथ ना हो पाऊँगा।" सब बदल रहे हैं।

तुम्हारे सारे निर्णयों में परिवर्तन आएगा। तुम्हारे खाने-पीने, उठने-बैठने में परिवर्तन आएगा। वो तुम्हारा पूरा कायाकल्प होगा।

छोटी-सी बात मत माँगो, कि—“हम वही रहे आएँ जो हम हैं, और साथ-ही-साथ हम पढ़ें ऐसा कि हमारे अंक भी अच्छे आ जाएँ।” नहीं ये नहीं हो पाएगा। जैसा पूरा जीवन है, पढ़ाई भी वैसी ही होगी। जब पूरा दिन अव्यवस्था में गुज़रता है, जब पूरा दिन भय और लोभ में गुज़रता है, तो मात्र पढ़ाई के क्षण में तुम दूसरे नहीं हो पाओगे। इस कमरे के बाहर जो तुम थे, और इस कमरे के भीतर जो तुम हो, वो कोई नया अवतार नहीं हो सकता। जो घर से निकला है, और जो कॉलेज मैं है, ये दो नहीं हो सकते। जो खेल के मैदान पर है, और जो पुस्तक के साथ है, ये दो नहीं हो सकते। जीवन एक है, पूर्ण है। पूरे जीवन पर ही ध्यान देना होगा।

समझ में आ रही है बात?

और, इस काम को बहुत भारी मत समझ लेना, कि तुम कहो कि—“हमने तो छोटी-सी चीज़ माँगी थी, ‘एकाग्रता’, और इन्होंने कह दिया कि पूरा जीवन ही बदलो।” नहीं, तुम जिसे छोटी-सी चीज़ कह रहे हो, वो छोटी नहीं है, क्योंकि तुम उसे जीवन भर माँगते रहे हो, और तुम्हें मिली नहीं है। वो एक असम्भवता है। मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, वो सुनने में शायद तुम्हें अभी बड़ी लगे, पर वो बात बड़ी सहज है।

जो भी कर रहे हो उसी पर ध्यान दो। अभी बैठे हो, तो बैठने पर अपना ध्यान दो। देखो कि ये हो क्या रहा है। देखो कि तुम्हारे बैठने में क्या गुणवत्ता है। बात करते हो तो उस पर ध्यान दो, होश में जियो। और जब तुम होश में जीने लगोगे, तो तुम पाओगे कि अब तुम्हें एकाग्रता की ज़रूरत ही नहीं रही, क्योंकि एकाग्रता भी एक प्रकार का संयम है, एकाग्रता भी एक प्रकार का खिंचाव है।

तुम कहोगे कि—“एकाग्रता अब चाहिए किसको, अब तो मन नदी की तरह हो गया है, जो अपने आप ठीक दिशा में ही बहता है। उसको कोई दिशा दिखाई नहीं जाती, वो खुद जानता है कि सागर किधर है, और अपने आप बहता है।”

सरल है, बहुत सरल है। ठीक अभी से शुरुआत कर सकते हो। और जैसे-जैसे इसमें आगे बढ़ते जाओगे, जैसे-जैसे इसमें डूबते जाओगे, जैसे-जैसे तुम्हें इसका स्वाद मिलता जाएगा, वैसे-वैसे तुम कहोगे, “वाह! ये पहले क्यों नहीं हुआ?” कभी-भी हो सकता था, बड़ी साधारण-सी बात है। कुछ विशेष करना ही नहीं है। बस होश में रहे आना है।

ठीक है?

....

(उत्तर प्रदेश, 2014)

मन प्रशिक्षण के अनुरूप ही विषय चुनेगा

प्रश्नकर्ता: मेरी कमज़ोरी यह है कि मैं एकाग्र नहीं हो पाती हूँ। तो एकाग्रता को मैं अपनी ताकत कैसे बनाऊँ?

आचार्य प्रशांत: तो सीधे सीधे सवाल ये है कि एकाग्रता बढ़ाएं कैसे?

(श्रोताओं की तरफ देखते हुए) तो कितने लोग एकाग्र नहीं हो पाते हो?

(सभी श्रोता हाथ उठाते हैं)

आचार्य (मुस्कुराते हुए प्रश्नकर्ता की ओर देखते हुए): यह तुम्हारी कमज़ोरी कहाँ है? यह तो सार्वजनिक कमज़ोरी है।

यह तो मुझे लग रहा है कि कोई विश्वव्यापी समस्या है। कोई है जो कहता हो कि ‘नहीं, एकाग्र जहाँ चाहतें हैं वहाँ हो

जाता है?’ ऐसा भी कोई है?

(एक–दो श्रोताजन कहते हैं कि हो जाता है)

दो –चार हैं जो दावा करते हैं कि जो चाहतें हैं, मन को वहीं ले जाते हैं।

(आचार्य जी प्रश्नकर्ता से उनका नाम पूछते हैं, जिनका नाम शुभि है)

एक तो ये कि बात तुम्हारी नहीं है, यहाँ जितने बैठे हैं बात सभी की है। और दूसरी ये कि आज कि नहीं है। सदा की रही है। सदा रहेगी भी शायद। बात है क्या? जिसको हम एकाग्रता कहते हैं, वो है क्या? तुम कब कहते हो कि मन एकाग्र है?

तो तुमने कोई चीज़ पकड़ी है, और तुम उस चीज़ के बारे में सोचना चाहते हो। उसी को दूसरे शब्दों में कहते हैं कि तुमने एक विषय चुना है। और तुम चाहते हो कि विचार का वही विषय रहा आये। वो किसी और विषय पर ना जाए। यही चाहते हो ना? देखो दो तीन बातें हैं जो तुम्हें समझनी पड़ेंगी फिर तुम्हें स्पष्ट हो जाएगा कि मन एकाग्र क्यों नहीं हो पाता है। पहली तो है कि मन कौन सा विषय चुनता है? मन हमेशा किसी न किसी विषय को तो पकड़ कर रखता ही है, यही फितरत है उसकी। कोई न कोई विषय उसको चाहिए। कुछ न कुछ ख्याल चलता रहना चाहिए और हर ख्याल का एक विषय होता है। ठीक है ना? हम सब के मन में तमाम ख्याल चलते ही रहते हैं। ये बताओ कि ये कैसे तय होता है कि कौन किस बारे में सोचेगा। मन में विचार तो चलते ही रहते हैं। दुनिया में क्या कोई ऐसा है जिसका मन विचारों से खाली रहता हो? शायद ही कोई। मन विचारों से भरा ही रहता है और हर विचार का क्या होता है? एक विषय होता है। जब भी तुम कहोगे कि सोच रहा हूँ, तब तुम्हें ये भी कहना पड़ेगा कि किस बारे में? तुम जिस बारे में सोच रहे हो, उसको क्या बोलेंगे?

प्र (एक साथ कहते हैं): विषय।

आचार्य: अब मुझे ये बताओ कौन किस बारे में सोचता है? दुनिया में इतने लोग हैं, सब सोच रहे हैं। कोई कुछ सोच रहा है, कोई कुछ सोच रहा है। ये तय कैसे होता है कि कोई क्या सोच रहा है?

प्र: सर, जिसके साथ जो घटनाएँ घटी हैं उसके बारे में।

आचार्य: तुम्हारे साथ बहुत सारी घटनाएँ घटी हैं अब तक जीवन में। काफी लंबा जी चुकी हो। क्या जितनी भी घटनाएँ घटी हैं तुम्हारे दशकों के जीवन में, सबके बारे में सोचती रहती हो? सब याद भी हैं? जितनी घटनाएँ तुम्हारे साथ घटी हैं, छोटी-बड़ी, उनका कितना प्रतिशत याद है? कोई दावा करेगा की पचास प्रतिशत याद है? कोई दवा करेगा कि आज तक जितनी घटनाएं घटी हैं, उनका पांच प्रतिशत भी याद है? कोई दावा करेगा की आज सुबह से ले कर अभी तक जितनी घटनाएं घटीं हैं, जितनी माने जितनी, प्रतिपल की घटना उसका पचास प्रतिशत भी याद है? मुश्किल हो जाता है, है ना? तुम इस हॉल में आये हो, तभी से ले के अब तक जितनी घटनाएं घटी हैं, क्या याद हैं सारी? जितनी माने, जितनी। मैं उनकी ही बात नहीं कर रहा जितनी तुम्हें याद हैं। मैं सारी घटनाओं कि बात कर रहा हूँ।

प्र: नहीं सर।

आचार्य: नहीं ना। तो तुमने ये कहा कि हर आदमी वही सोचता है, जो उसका अनुभव हो चुका है। पर क्या तुम अपने सारे अनुभवों के बारे में सोचते हो? नहीं। तुम अपने कौन से अनुभवों को याद रखते हो? ध्यान से देखो।

प्र: सर जिसके बारे में हमें सबसे ज्यादा अच्छा लगेगा या बुरा लगेगा, हम उसके बारे में ज्यादा सोचेगें।

आचार्य: अनुष्का ने तो पूरी बात तुरंत पकड़ ली। अनुष्का ने कहा या तो बहुत अच्छा लगे, या बहुत उसने चिंता दी हो, तनाव दिया हो। याने कि बड़ा दहशत वाला हो। या तो बड़ा प्रिय, या तो बड़ा अप्रिय, ये दोनों बातें ही याद रहतीं हैं। हम जो पूरी धार पकड़ रहे हैं, इसको छोड़ना नहीं। हमने यहाँ से शुरू किया था की एकाग्रता क्या है। एकाग्रता से हम यहाँ पर आये कि एकाग्रता का अर्थ होता है कि मन किसी एक विषय पर जा कर बैठा रहे। फिर हमने कहा कि मन सोचता तो रहता ही है। और सोचने के विषय हमेशा अलग-अलग हैं। तो हमने जानना चाहा कि मन क्या सोचता

रहता है। तो किसी ने कहा कि मन अपने अनुभवों के बारे में सोचता रहता है। फिर हमने जानना चाहा कि कौन से अनुभवों के बारे में। तो बात खुल रही है कि मन अपने सबसे पसंदीदा और अपने सबसे अप्रिय अनुभवों के बारे में ही सोचता रहता है। ये जो पूरी लाइन है इसको छोड़ना नहीं। एक कदम और आगे बढ़ाते हैं। क्या सब लोगों को एक ही बात प्रिय होती है ?

प्र: नहीं सर।

आचार्य: क्या सब लोगों को एक ही बात अप्रिय होती है?

प्र: नहीं सर।

आचार्य: किसको क्या पसंद है और किसको क्या नापसंद है, ये कैसे तय होता है?

चीन और जापान में तनाव चल रहा है। चीन का पलड़ा भारी है। ये बात किसो प्रिय लगेगी और किसको अप्रिय?

प्र: चीन को प्रिय लगेगी और जापान को अप्रिय।

आचार्य: चीन तो कुछ है नहीं ना, चीनी होते हैं। तो अगर तुम चीनी हो, तो तुम्हें क्या प्रिय लगेगा? चीन का जीतना, और अगर तुम जापानी हो तो तुम्हें क्या प्रिय लगेगा ?

प्र: जापान का जीतना।

आचार्य: तो खबर आई कि चीन हावी हो रहा है। तुरंत कोई खुश हो गया और तुरंत कोई उदास हो गया। एक ने

सोचा, ‘वाह’ और एक के दिल से निकली, ‘आह’। ये बात, ये नज़रिए, ये सोच, कहाँ से आयी दोनों में? चीनी में भी, जापानी में भी, ये कहाँ से आयी?

प्र: खबर।

आचार्य: खबर तो दोनों के लिए एक थी। एक सामान खबर आयी। इधर बैठे हैं चीनी, और इधर बैठे हैं जापानी। क्या खबर आयी है?

(श्रोतागण खबर दोहरातें हैं)

चीनी ने कुछ और सोचा और जापानी ने कुछ और सोचा। तो ये दोनों की सोच कहाँ से आ रही है?

अच्छा यहाँ चीनी बच्चे बैठे हुए हैं और कक्षा के दूसरे तरफ जापानी बच्चे बैठे हुए हैं मान लो चौदह- चौदह साल के हैं, तो जैसे ही बताया जाएगा कि चीन का पलड़ा भारी है, चीनी बच्चे क्या कहेंगे?

प्र: वाह

आचार्य: और जापानी बच्चे?

प्र: आह

आचार्य: इन बच्चों की उम्र कम करते जाते हैं। अब ये चौदह साल के नहीं हैं, अब ये छह साल के हैं। ये छह साल के

चीनी बच्चे, ये छह साल के जापानी बच्चे। खबर आती है। चीनी बच्चे क्या कहेंगे ?

प्र: वाह।

आचार्य: जापानी बच्चे क्या कहेंगे?

प्र: आह

आचार्य: अब बच्चों की उम्र और कम हो जाती है। अब बच्चे और मासूम हो गए हैं। दो साल के, ढाई साल के। उन्हें खबर दी गयी, चीन जीत रहा है।

प्र: उन्हें कोई मतलब नहीं होगा।

आचार्य: कोई मतलब नहीं। सोच नहीं आयी। अब तुम मुझे बताओ कि तुम्हारे दिमाग को जो प्रिय लगता है, और अप्रिय लगता है, वो कहाँ से आता है? वो थिंकिंग तुममे कहाँ से आयी?

प्र: आयु से।

आचार्य: आयु ने तुम्हें क्या दिया? तीन साल के बच्चे और छह साल के बच्चे में सोच का अंतर कहाँ से आ गया?

प्र: एक्सपीरियंस।

आचार्य: एक्सपीरियंस का अर्थ क्या है?

प्र: अनुभव।

आचार्य: अनुभव का आधार क्या है?

(श्रोता उत्तर देने में असमर्थ, आचार्य जी उनकी मदद करते हुए आगे बढ़ते हैं)

प्र: सराउंडिंग

आचार्य: सराउंडिंग। जो कुछ भी आस पास है। क्या मैं कहूँ माहौल?

प्र: जी सर।

आचार्य: क्या मैं कहूँ वातावरण?

प्र: जी सर।

आचार्य: क्या मैं कहूँ दूसरे, स्थितियां, लोग?

प्र: जी सर।

आचार्य: तो सोच कहाँ से आयी?

प्र: दूसरों ने दी।

आचार्य: यहाँ जो चीनी बच्चे थे, उन्हें दूसरों ने क्या सिखाया?

प्र: चीन से प्यार करो।

आचार्य: जो जापानी बच्चे थे, उन्हें दूसरों ने क्या सिखाया?

प्र: जापान से प्यार करो।

आचार्य: तो तुम्हारी सोच, क्या तुम्हारी होती है?

प्र: नहीं होती सर।

आचार्य: तुम्हारे नज़रिये क्या तुम्हारे होते हैं?

प्र: नहीं सर।

आचार्य: अब देखो बात कहाँ तक पहूँची। हमने पूछा था, 'मन एकाग्र क्यों नहीं हो पाता है?' हमने कहा था कि मन किसी एक ख़ास विषय पर जा कर बैठे। फिर हमने कहा था मन किसी एक विषय पर जा कर बैठा ही रहता है। हम सोचते ही रहते हैं। तो फिर हमने जानना चाहा कि मन कौन से विषय चुनता है? तो वहाँ से अनुष्का ने बताया कि मन दो ही विषय चुनता है– जो उसे बहुत पसंद हों या जो उसे बहुत नापसंद हों। तो फिर हमने जानना चाहा कि ये पसंद, नपसंद, ये नज़रिये, ये हमे मिलते कहाँ से हैं? तो अब हमें पता चलता है कि वो अब हमें हमारे माहौल से मिलते हैं। तो अंततः मन कहाँ जा कर बैठता है। मन किस वस्तु पर एकाग्र हो जाता है? ये तुम्हें कहाँ से मिला?

प्र: माहौल से मिला।

आचार्य: माहौल से मिला। इसको कहते हैं मन का संस्कारित होना। इसी को मन की कंडीशनिंग कहते हैं। तो अब हम सवाल थोड़ा सा बदलेंगे। मन एकाग्र तो होता ही है। एकाग्रता कोई समस्या नहीं है। लगता हमें यही है कि एकाग्रता समस्या है। एकाग्रता समस्या नहीं है। मन एकाग्र तो होता ही है। अब प्रश्न ये है कि मन इस प्रकार के विषयों पर क्यों एकाग्र होता है? तुमने एक विषय कहा उस पर नहीं एकाग्र हो रहा वो। वो कहीं और जा करके बैठना चाहता है। और हमने देखा है कि मन वहीँ जा करके बैठता है जैसा उसे सिखाया गया है। किसके द्वारा?

प्र: दूसरों के द्वारा।

आचार्य: मन उड़–उड़ कर वहीँ बैठेगा जहाँ बैठने की उसको लगातार शिक्षा दी गयी है। एकाग्रता की कोई समस्या है ही नहीं। कोई मूवी देखने जाते हो, फ़िल्म देखने, देखा है कितने एकाग्रचित हो कर देखते हो? क्या तब तुम ये शिकायत करने आते हो कि सर कंसन्ट्रेट नहीं कर पा रहे हैं? क्रिकेट मैच देखते हो। देखा है कितने एकाग्र हो करके देखते हो? क्या तब तुम ये शिकायत करते हो कि सर एकाग्रता नहीं बनती? तो तुम्हारे पास एकाग्रता कि कोई कमी नहीं है। तुम सब एकाग्र होना जानते हो। प्रश्न ये है कि हम किन विषयों पर एकाग्र होते हैं। हमने मन को कैसा संस्कारित किया है। हमने किन जगहों पर मन को रुचि लेना सिखा दिया है। मन के पास अपने कोई इंटरेस्ट नहीं होते, कोई रुचियाँ नहीं होतीं। कभी ये दावा मत करना कि मेरी रुचि इस काम में है। सारी रुचियाँ मन को सिखाई जातीं हैं। एक विद्वान ने एक बच्चे के मन के लिए नाम दिया है, 'टेबुला रासा ', खाली स्लेट, खाली स्थान। उसमें कुछ लिखा नहीं होता। ना रुचि लिखी होती है, ना अरुचि लिखी होती है। तुम उसमें रुचियाँ –अरुचियाँ खुद भरते हो। तुम्हारे जीवन के प्रारम्भ में रुचियाँ –अरुचियाँ भरी जातीं हैं, माहौल द्वारा, जिसमें तुम्हारा कोई बस नहीं है। और एक उम्र के बाद वो रुचियाँ –अरुचियाँ तुम्हारे ही द्वारा भरीं जातीं हैं। तुम जैसी ट्रैनिंग दे रहे हो, मन को, मन उसी के

अनुसार एकाग्रता का विषय चुन लेता है। तुमने जो धारणाएँ बना रखी हैं, मन उसी के अनुसार कहीं पर जाके बार बार बैठने की शिक्षा पा लेता है।

उदाहरण देता हूँ:

तुमने ये धारणा बना रखी है कि जो भी किया जाए वो अंततः किसी परिणाम के लिए किया जाए। अगर जीवन के बारे में तुमने ये धारणा पाल ली है, किसी कारणवश, किसी प्रभाववश, कि जो भी किया जाए वो किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाए, तो तुम्हारा मन लगातार लगातार एकाग्र रहेगा उद्देश्य पर। नतीजा क्या होगा? कि तुम जो कर रहे हो मन उसमें कभी एकाग्र नहीं हो पायेगा। क्योंकि उद्देश्य दूर कहीं भविष्य में बैठा हुआ है। और यदि तुम्हारे मन में ये बात भर दी गयी है कि जीवन इसीलिए है ताकि कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके, तो तुम जो कुछ भी करोगे छोटा काम, बड़ा काम तुम्हारा मन कभी उसमें लग ही नहीं सकता। क्यों? क्योंकि तुम्हें ये बता दिया गया है कि काम छोटा है और उद्देश्य बड़ा है। तुम्हें ये बता दिया गया है कि राह महत्वहीन है, मंज़िल महत्वपूर्ण है। अब ये तो बड़ी मज़ेदार बात हो गयी क्योंकि राह महत्वहीन है, तो तुम चलोगे कैसे? किसी पढ़ने वाले को अगर यदि बता दिया जाए कि पढ़ाई इसीलिए है ताकि परिणाम अच्छे आ सकें, तो फिर पक्का ही है कि वो पढ़ नहीं पायेगा। क्योंकि उसकी नज़र हमेशा कहाँ रहेगी?

प्र: परिणाम पर।

आचार्य: परिणाम पर। और अगर उसे ये भी बता दिया जाए कि बिन पढ़े भी परिणाम हासिल हो सकता है, तो तो वो बिल्कुल ही नहीं पढ़ेगा। क्योंकि उसके मन को संस्कार ही ये दे दिया गया है कि महत्वपूर्ण क्या है?

प्र: परिणाम।

आचार्य: परिणाम मिल रहा है, बिना पढ़े मिलता है तो अच्छी बात है। किसी को यदि ये संस्कार दे दिया जाये कि पैसा बहुत महत्वपूर्ण है, तो फिर वो कभी भी प्रेमपूर्ण हो कर किसी काम को नहीं कर पायेगा। क्योंकि महत्वपूर्ण क्या है

काम या पैसा?

प्र: पैसा।

आचार्य: उसको तो ये शिक्षा दे दी गयी है कि पैसा बहुत महत्वपूर्ण है। उसका काम में मन कभी लगेगा ही नहीं, क्योंकि काम अब उसके लिए बस एक माध्यम है। सिर्फ एक जरिया है। क्या करने का?

प्र: पैसा कमाने का।

आचार्य: और जब भी, कुछ भी जब तुम्हारे लिए एक जरिया बन जाता है तो तुम उसकी उपेक्षा करना शुरू कर देते हो। वो तुम्हारे लिए सिर्फ एक उपयोग की चीज़ हो जाता है। तुम उपयोग करोगे और उसका तिरस्कार कर दोगे। तुम उसमें डूब नहीं सकते, तुम उससे प्रेम नहीं कर सकते। उसका उपयोग बस कर सकते हो। और उपयोग में और प्रेम में अंतर होता है ना कि नहीं होता है?

प्र: होता है सर।

आचार्य: बात समझ में आ रही है? तो एकाग्रता प्रश्न है ही नहीं। प्रश्न ये है कि हमने मन को क्या सिखाया है? कि जीवन में क्या महत्वपूर्ण है? तुमने मन को जो भी सिखाया होगा कि ये महत्वपूर्ण है, मन वहीँ पर जा कर के बैठ जाता है। फिर से बोल रहा हूँ। एकाग्रता कि कोई कमी नहीं है। एकाग्रता कोई मुद्दा ही नहीं है। एकाग्र तो हम सब हो ही जाते हैं। सवाल ये है कि कहाँ पर एकाग्र हो जाते हैं? कहाँ पर एकाग्र होगा मन? मन वहीँ एकाग्र होगा, जो मन को बता दिया गया है कि महत्वपूर्ण है। मैं तुमसे पूछ रहा हूँ अब कि तुमने जीवन में किन बातों को महत्वपूर्ण मान रखा है? और पक्का बता रहा हूँ कि जो कुछ भी तुमने महत्वपूर्ण मान रखा है वहाँ ही जा कर तुम्हारे मन बार-बार अटक जाता है। उसी डाल पर तुम्हारा पंछी जा के बार बार बैठ जाता है। तो गौर से देखो अपने मन को और उससे पूछो कि क्या है जो तूने महत्वपूर्ण मान रखा है? किन मूल्यों को पकड़ कर के बैठा हुआ है तू? तेरी धारणाएं क्या हैं? जो तुम्हारी धारणा होगी, वहीँ तुम एकाग्रचित हो जाओगे। तुमसे एक प्रश्न पूछ रहा हूँ। तुममें से कितना लोगों ने वाकई में पूरी ईमानदारी से माना है कि जीवन में और सब चीज़ों से ज्यादा ज्ञान महत्वपूर्ण है? जिस किसी ने ये पूरी गहराई से

माना होगा, सिर्फ दावा करने से नहीं होगा, बात ईमानदारी की है। जिस किसी ने पूरी गहराई से ये माना होगा कि जीवन में सबसे महत्वपूर्ण ज्ञान है, उसको तो एकाग्रचित होते देर ही नहीं लगेगी। वो कहेगा ज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ज्ञान खाने से ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर में पढ़ रहा हूँ तो में खाने नहीं जा सकता। ज्ञान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ज्ञान मेरे रिश्ते-नातों, दुनियादारी से ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर में पढ़ रहा हूँ तो मैं मोबाइल फ़ोन पर आती हुई कॉल का जवाब नहीं दे सकता। पर क्या तुम्हारे साथ ऐसा होता है कि यदि तुम पढ़ रहे हो, तो कुछ भी हो जाए तुम अपने आसन से हिलते नहीं? इसका अर्थ समझो। तुम पढ़ रहे हो और दरवाजे पर तुम्हारा दोस्त दस्तक देता है। तुम पढ़ाई छोड़ कर दोस्त के साथ चल देते हो' इसका मतलब तुम्हारे मन ने ज्यादा महत्वपूर्ण क्या माना?

प्र: दोस्त को।

आचार्य: अब जब तुमने अपने आप को ये संस्कार दे रखा है कि दोस्ती, ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है, तो निश्चित सी बात है कि मन किताब से ज्यादा दोस्त पर एकाग्र होगा। हो गयी गड़बड़। अब क्या करें? ये तो मन ने धारणाएं ही उलटी -पुल्टी भर रखी हैं। तुमने यदि मन को बता रखा है कि जीवन में भय बड़ी महत्वपूर्ण चीज़ है। अगर तुम्हारी दृष्टि ये है कि दुनिया भय से चलती है तो फिर तुम पढ़ोगे कब?

प्र: जब भय होगा।

आचार्य: और यदि भय नहीं है तो तुम नहीं पढ़ोगे। तो फिर तुम्हारी एकाग्रता भय पर है। तुम भय का इंतज़ार करोगे। तुम फिर इंतज़ार करोगे कि भय कब आये और मैं पढ़ूं। और फिर मात्र भय ही है जो तुमसे कुछ करवा सकता है। उसके बिना तुम कुछ करोगे नहीं। अब अभी भय है, नहीं तो तुम कैसे पढ़ो। फिर तुम कहते हो कि एकाग्र नहीं हो पा रहे। कैसे हो पाओगे? तुमने महत्वपूर्ण किसको माना है? अभी भय ही नहीं है, तो एकाग्रता कहाँ से लायी जाये। कोई मिल जाए डराने वाला, दो-चार डंडे लगाए, तुरंत एकाग्रता आ जायेगी। होता है कि नहीं होता है? यदि ऐसा होता है तो समझो कि तुम्हारे मन में उलटी-पुल्टी धारणाएं ठूस दी गयी हैं। इस दुनिया ने, समाज ने, परिवार ने तुम्हें कुछ ऐसा सिखा दिया है जो झूठा है। तुम्हें जीवन को देखने की एक नकली दृष्टि दे दी गयी है। तुम जिन बातों को मूल्यवान समझ रहे हो वो मूल्यवान है ही नहीं। तुम्हारा मन उड़-उड़ कर जिस डाल पर बैठ रहा है, उस डाल पर ना कोई फल है, ना कोई पत्ती। तुम्हारे मन को शिक्षा दे दी गयी है सूनी, बजर डालों पर बार-बार जा कर बैठ जाने की। तो मन एकाग्र तो हो रहा है पर ऐसी जगहों पर जहाँ से तुम्हें कुछ मिल सकता नहीं। मन जा जा करके ऐसी डालों पर बैठ

रहा है जिनमें तुम्हारे लिए कोई रस है ही नहीं। तुम्हारे मन को भय से चलने कि शिक्षा दे दी गयी है, लालच से चलने की शिक्षा दे दी गयी है। अब अगर लालच महत्वपूर्ण है तो तुम कुछ भी कब करोगे? जब उसके पीछे कोई लालच खड़ा हो। और यदि लालच नहीं है, तो कर ही नहीं पाओगे। यदि लालच नहीं है, तो होगा ही नहीं तुमसे। लेकिन घबराने की ज़रुरत नहीं है। मन को जैसे संस्कारों से भरा गया उसी तरीके से मन को धारणाओं से मुक्त भी किया जा सकता है। तुम सब होशियार हो, तुम सब के पास क्षमता है मन को समझ पाने की। तुम ध्यान से देखो कि चल क्या रहा है। जैसे- जैसे तुम मूल्यों से मुक्त होते जाओगे, वैसे- वैसे तुम पाओगे कि जो कुछ महत्वपूर्ण है, वास्तव में महत्वपूर्ण है, मन का उसकी ओर एकाग्र होना आसान हो गया है।

कबीर का दोहा है –

पहले तो मन कागा था, करता जीवन घात। अब मनवा हंसा भया, मोती चुन चुन खात।।

मन हमारा कागा जैसा, कौआ जैसा कर दिया है। वो सिर्फ विष्ठा, मल ही खाता है। वो जहाँ कहीं दुर्गन्ध, सड़न देखता है, तुरंत उधर को चला जाता है। अच्छा दो लोग बैठ कर के व्यर्थ चर्चा कर रहे हैं, मन आकर्षित हो गया। टी.वी. में सड़ा हुआ कार्यक्रम आ रहा है, मन तुरंत उधर को पहूँच गया। किसी की निंदा चल रही है, तुरंत हम भी उसमें जुड़ गए। पहले तो मन कागा था, करता जीवनघात। और जब मन ऐसा होता है जो सिर्फ मल की ओर आकर्षित होता है तो ये जीवनघात है। तुम अपने जीवन को ख़त्म किये दे रहे हो। अब मनवा हंसा भया। मन का शोधन किया जा सकता है। मन हंस के जैसा हो सकता है। अब मनवा हंसा भया मोती चुन चुन खात। ऐसा भी हो सकता है। कैसे होगा?

प्र: सर कहते हैं की आदमी को परिस्थिति के अनुसार ढल जाना चाहिए। तो हम अपने मन को ऐसा कर लें कि वो परिस्थिति के अनुसार ढल जाए।

आचार्य: सवाल पर फिर से जाओ। मैं कह रहा हूँ कि हमारे मन ने एक आदत पकड़ ली है। वो आदत क्या है? गंदगी की ओर ही जाने की। मन को ऐसा कैसे कर दिया जाए कि हमें उसे धक्का ही ना देना पड़े, वो स्वतः ही मोती की ओर जाए। उसके सामने तुम कितनी भी विष्ठा रख दो, भले ही वो भूखा मर रहा हो, पर उसकी ओर ना जाए।

प्र: पहले भी हम समझाते थे की ये चीज़ अच्छी है। अब हमें समझाना पड़ेगा कि ये चीज़ अच्छी नहीं है, ये अच्छी है।

आचार्य: समझाना पड़ेगा। ठीक है बढ़िया तरीका है, समझाना पड़ेगा। कैसे समझाओगे?

प्र: सर, एक तरफ पढ़ाई है और एक तरफ मूवी। मूवी का शोर आ रहा है कि गाना अच्छा है, मूवी अच्छी है लेकिन मन को समझाना पड़ेगा कि पढ़ाई ज्यादा इम्पोर्टेन्ट है, पढ़ाई ज्यादा अच्छी है।

आचार्य: मन बड़ा चालाक है। वो खूब तर्क करेगा। वो पूछेगा कैसे? उसे समझाओ, तुम्हें समझाना पड़ेगा। बताओ कैसे? मन कहेगा कि तुम पढ़ाई क्यों कर रहे हो? सुख के लिए। कि पढ़ोगे तो पैसा कमाओगे, फिर सुख मनाओगे। मन कहेगा कि अभी बगल के कमरे में मनोरंजन है, सुख है, तो चलो सुख पा लेते हैं। अब मन ने तुम्हें तर्क दे दिया। अब कैसे समझाओगे मन को? मन जीता, तुम हारे। बड़ी दिक्कत हो गयी। बोलो कैसे समझाओगे? मन ने तर्क दे दिया है। जो मैंने अभी कहा वही तर्क दे दिया है मन ने। क्या उत्तर है इस तर्क का तुम्हारे पास? जब अंततः सुख ही पाना है तो अभी क्यों ना सुख ले लूँ। बाद में मूवीज़ की कोई कमी आ जाने वाली है, तो दुख कहाँ आ जा रहा है बाद में। और फिर सुख के लिए है सब कुछ और मैं कह रहा हूँ कि सुख मुझे अंततः मिल रहा है, तो अभी क्या मिल रहा है मुझे? दुःख। तुम मन को जो प्रक्रिया बता रहे हो कि अभी ये करो, अभी वो करो आखिर में सुख मिलेगा, तो मन तुम्हें तर्क देगा तो अभी क्या मिल रहा है? दुःख। तो अभी जिसमें सुख मिल रहा है, वो सुख क्यों ना ले लूं, चलो घूमनें चलते हैं। मन कहेगा बाद की देखी किसने है, क्या पता जियेंगे भी कि नहीं। क्या पता बाद में क्या होगा? पर मुझे ये पता है कि अभी मुझे सुख उपलब्ध है। मैं अभी क्यों ना उसमें नहा लूं। और मन यही कहता है। मन के पास बड़े बड़े तर्क हैं। मन कहता ही यही है अब तुम क्या जवाब दोगे ?

प्र: सर, मन की परिभाषा चेंज कर देंगे।

आचार्य जी (शाबाशी देते हुए): बड़ा बढ़िया लग रहा है सुन कर। तो सुख और दुःख को पुनः परिभाषित करना होगा। बहुत बढ़िया। शुरू हमने किया था एकाग्रता से, और बात चलते चलते कहाँ आ गयी? कि जब तक हमें यही नहीं पता कि सुख कहाँ और दुःख कहाँ, तब तक हमारी एकाग्रता गड़बड़ ही रहेगी। मन गलत डाल पर ही बैठेगा। एकाग्र तो होगा, पर एकाग्रता का विषय गड़बड़ रहेगा। तो चलो अब सुख और दुःख की अब नयी परिभाषा खोजते हैं। बताओ

क्या नई परिभाषा खोजनी है सुख की और दुःख की?

आचार्य: चलो एक नयी परिभाषा देखतें हैं सुख की। पहली बात– सुख समय पर या स्थिति पर आश्रित नहीं हो, तभी हम कह सकतें हैं कि वो सुख है। जो सुख भविष्य का है वो सुख है ही नहीं। वो मात्र?

प्र: कल्पना है।

आचार्य: बहुत बढ़िया। कल्पना है। कल्पना मिथ्या होती है। तो सुख कौन सा हुआ? जो एकमात्र...?

प्र: अभी है।

आचार्य: अभी है। प्रेजेंट है। दूसरी बात सुख समय पर तो आश्रित है ही नहीं। सुख परस्थिति पर, किसी व्यक्ति पर भी आश्रित नहीं हो सकता। सुख किसी और पर निर्भर हो नहीं सकता तो इसका मतलब एकमात्र सुख कौन सा हुआ? जो पूरे तरीके से मेरा है, जो आतंरिक है, जो किसी और के मिलने से नहीं मिल सकता कि मैं कुछ हासिल कर लूं, कोई पद, कोई व्यक्ति, कोई मुकाम तो मुझे मिलेगा। दोनों बातों को मिलाओ। पहली बात से ये निकल के आया कि वास्तविक सुख अभी है और दूसरी बात कि वास्तविक सुख किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है। आतंरिक है, मेरा है। यदि सुख कि हम ये नयी परिभाषा रख सकें तो सुख चाहने वाले मन को अब क्या करना पड़ेगा? मन सुख ढूँढता है। मन को सुख जहाँ दिखता है, वहीं जा कर बैठता है। अब हमने मन को बताया कि सुख अभी है, सुख आतंरिक है। अब मन को कहाँ जाना पड़ेगा? कहीं नहीं। तो मन कहाँ रहेगा? अपने पास। तुम जहाँ भी हो मन...?

प्र: वहीँ रहेगा।

आचार्य: तुम जो भी कर रहे हो मन...?

प्र: वही करेगा।

आचार्य: एकाग्रता की समस्या…?

प्र: हल हो गयी।

आचार्य: तो एकाग्रता की समस्या मूलतः ये थी कि हमने सुख की परिभाषा गलत रखी थी। हमें बता दिया गया था कि सुख कहाँ पर है?

प्र: भविष्य में।

आचार्य: और हमें बता दिया गया था कि सुख कैसे मिलता है?

प्र: दूसरों के द्वारा।

आचार्य: दूसरों के द्वारा, हासिल कर लेने पर, कोई हमें मान्यता दे दे। दूसरे आ कर हमारी तारीफ कर दें। दूसरा हमें प्रेम कर दे। हमें दो गलत बातें बता दी गयीं थीं सुख के बारे में। फिर से हम दुहराएंगे। क्या थीं वो बातें? पहली क्या थी कि सुख कहाँ है?

प्र: भविष्य में।

आचार्य: और दूसरी क्या थी कि सुख कैसे मिलता है?

प्र: दूसरों में।

आचार्य: तो इसका नतीजा क्या होता था कि मन कहाँ को भागता था? दूसरों की ओर। और समय में कहाँ को भागता था? भविष्य की ओर। पर जैसे ही तुमने मन से कहा कि ध्यान से देख। भविष्य में तो मात्र कल्पना है, सुख नहीं है। कि ध्यान से देख कि सुख दूसरों से कैसे मिल सकता है। जो सुख दूसरों से मिलेगा उसमें तो डर रहेगा कि कहीं छिन ना जाए। आश्रित हो दूसरों पर छिन सकता है। तो इसीलिए वास्तव में सुख मेरा हो सकता है, अपनी आतंरिक मौज। कभी ना छिनने वाली मस्ती। अब मन कहीं उड़ कर के जाएगा ही नहीं। उसे आवश्यकता ही नहीं कहीं जाने की । तुमने मन को स्पष्ट कर दिया कि सुख कहाँ है? और समय में कहाँ है?

प्र: आतंरिक है, अभी है।

आचार्य: पर बात सिर्फ मेरे कहने भर की नहीं है। तुमको मन से बातचीत करनी पड़ेगी। अभी तो कहा है। आगे का काम तुम्हें करना है। तुम्हें मन से बातचीत करनी है कि जो कर रहे हैं उसी में?

प्र: सुख है।

आचार्य: मुझे दूसरों पर भी....?

प्र: आश्रित नहीं रहना है।

आचार्य: ठीक है ना। उसके बाद देखना, जहाँ तुम हो मन वहीं रहेगा। कहीं भागेगा नहीं। बात आ रही है समझ में?

प्र: जी सर।

आचार्य: चलो ठीक है।

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2014)

यथार्थ है सहज जानना

प्रश्नकर्ता: सर, हम अगर किसी एक काम पर एकाग्रचित होते हैं तो बाकी सब जो हो रहा है उस पर हमारा ध्यान नहीं जाता। ऐसा होने पर सब यही कहते हैं, 'तुम दुनिया से अलग हो गए हो, तुमने अपनी एक नयी दुनिया बना ली है'। मैं जानना चाहती हूँ कि हर जगह से एक समान कैसे जुड़े रहें, हर जगह कैसे सक्रिय रहें?

आचार्य प्रशांत: अगर यहाँ, इस कक्ष में सक्रिय रहना है, तो उनकी दुनिया से कटना होगा जो अभी इस कक्ष के भीतर नहीं हैं। कैसे कर पाओगी ये कि बाहर रहो, वहाँ उपद्रव मचाओ, और यहाँ बैठकर मुझसे सवाल भी पूछो?

प्र१: वो बात नहीं है। यहाँ पर एकाग्रता है, पर कभी-कभी ऐसा होता है कि मन कहीं और भी चला जाता है।

आचार्य: तो जहाँ चला जाता है, तुम वहीं की हो जाती हो।

प्र१: जी सर, तो फिर इस तरफ ध्यान नहीं जा पाता।

आचार्य: तो ये तो करना ही पड़ेगा। जब जागोगे तो सपना टूटेगा। क्या तुम ये चाहती हो कि मैं जगी भी रहूँ और सपने के मज़े भी लेती रहूँ? जब यहाँ पर बैठे हो तो बाहर जो रस की धारा बह रही थी, अभी उससे अपने आप को तोड़ना पड़ेगा ना? जब भी कभी अपने साथ हो पाओगी, तो बहुत कुछ जो नकली है, अधूरा है, उससे टूट ही जाओगी, उससे अलग हो ही जाओगी। उसमें क्या दिक्क़त है? वो सपने के टूटने जैसा है। *(सभी श्रोतागण की ओर देखते हुए)* सपना टूट जाता है, तो क्या सुबह उठकर रोते हो?

(सभी श्रोतागण 'न' में सिर हिलाते हैं)

आचार्य: लोग हैं जो रोते हैं। ऐसे गाने बने हुए हैं कि 'मेरा सुन्दर सपना टूट गया'।

(सभी श्रोतागण हंसते हैं)

हमारा जीवन ऐसा ही है- 'मेरे सपने क्यों टूट गए?' अरे सपने थे, टूटेंगे ही, यथार्थ में आओ। क्योंकि तुम्हें सिखाया गया है, 'ऊँचा सोचो, बड़ा सोचो', तो तुम्हारा जीवन ही सपनों से भर गया है।

प्र२: सर, तो हम क्या करें? सपने उन्हीं बातों से बनाते हैं जिनसे हम सम्बंधित होते हैं, जो हम करना चाहते हैं।

आचार्य: और तुम क्या चाहते हो? दाल-भात, रोटी-सब्ज़ी।

प्र२: सर, दाल-भात भी तो ज़रूरी है ना।

आचार्य: समझो बात को। तुम वही तो चाहोगे जो तुम्हारा पुराना अनुभव रहा है।

प्र२: कुछ अंतर्मन भी तो होगा?

आचार्य: कोई अंतर्मन नहीं होता।

प्र२: सर, एक बार आप बात कर रहे थे काव्य लिखने की। बहुत लोग होते हैं जो काव्य से घृणा करते हैं, लेकिन फिर भी वो काव्य लिखना शुरू कर देते हैं। पता नहीं क्यों लिखना शुरू कर देते हैं।

आचार्य: उनके जीवन में 'क्यों' जैसा कुछ है ही नहीं। मन की दुनिया में सब यंत्रवत है। ये मत पूछो कि क्यों ऐसा हो जाता। उन पर कोई प्रभाव पड़ा, इसलिए हो गया, और कोई बात नहीं है।

प्र२: सर, मैं अपनी बात नहीं कर रहा हूँ। मैं तो वैज्ञानिक बनना चाहता हूँ।

आचार्य: क्या बनना चाहते हो?

प्र२: वैज्ञानिक। लेकिन अगर ये सपना टूट गया, तो उससे दुखी ना हों?

आचार्य: जो 'अभी' कर रहे हो, बस वो करो।

प्र३: सर, ऐसे तो ज़िन्दगी में तो कोई उद्देश्य ही नहीं रह जायेगा।

प्र४: उद्देश्य तो रहना चाहिए ना सर?

प्रश्नकर्ता (मुस्कुराते हुए): रखो उद्देश्य। तुमने फैसला कर ही लिया है कि रखना है उद्देश्य, तो मुझसे क्यों पूछ रहे हो? रखो, अभी तक भी रखा है। अभी तक रखने पर ये हालत है और आगे भी रखना है, तो रखो ।

प्र३: तो क्या उद्देश्य छोड़ देना चाहिए? क्या फ़ालतू था वो?

आचार्य: ये तुम जानो, अपनी हालत को देखो। मैं तो बस कुछ बातें कह रहा हूँ।

प्र५: सर जब तक कोई उद्देश्य नहीं होगा, तो फिर हम वास्तव में क्या करेंगे?

आचार्य: अभी तुम सवाल पूछ रही हो, मैं उसके उत्तर में कुछ कह रहा हूं, तुम सुन रही हो। मन में कोई उद्देश्य चल रहा है?

प्र२: हाँ सर, जानो।

आचार्य: यही एक उद्देश्य हो सकता है। इसके अलावा भी कोई उद्देश्य चल रहा है? और कुछ भी चल रहा है क्या? सिर्फ़ जान रही हो। मैं कह रहा हूँ, तुम जान रही हो, यही हो रहा है ना? बस काफ़ी है ।

प्र२: तो वैज्ञानिक भी क्या चाहता है? वो बस जानना ही तो चाहता है।

आचार्य: सिर्फ जानना ही ठीक है, सिर्फ जानना।

प्र२: हम केवल जानना ही तो चाहते हैं।

आचार्य: जान तो अब भी सकते हो।

प्र२: बिना आगे पढ़े कैसे जानेंगे सर?

आचार्य: तो जानो, 'अभी' पढ़ो। वही तो है जानना, लगातार जानना। जानने में इच्छा का सवाल कहाँ है? क्या जानोगे? जो हो रहा है, वही तो जानोगे ना? जो है, जानो लगातार, जानते रहो उसको, उसी का तो नाम 'चेतना' है। उसके लिए किसी व्यवसाय की ज़रूरत नहीं है, उसके लिए किसी नाम की ज़रूरत नहीं है कि वैज्ञानिक हैं तो ही जान सकते हैं। लगातार जानो, प्रतिपल जानो ।

प्र२: सर अगर लक्ष्य नहीं होगा तो हम कैसे चुनाव करेंगे कि वास्तव में हमें किस रास्ते पर चलना है? क्योंकि अगर हमने गलत रास्ता चुन लिया, तो हम उसी दिशा में चलेंगे।

आचार्य: और अगर मैं अभी तुम्हें उत्तर दे रहा हूँ, तो क्या तुम चुनाव कर रहे हो कि क्या सुनना है और क्या नहीं सुनना है?

प्र३: नहीं ।

आचार्य: जो है सो है, क्या दिक्कत है? शाकाहारी हो या मांसाहारी?

प्र३: मांसाहारी।

आचार्य: मांसाहारी। अभी तुम्हारे सामने बढ़िया मांसाहारी खाना रख दिया जाए और बगल में सूखी रोटी और लौकी की सब्ज़ी, क्या तुम उनमें चयन करोगे? मांसाहारी खाना, वही चुनोगे ना? तुम्हें सिखाया गया है मांसाहार खाना, कर लिया तुमने चुनाव। यहाँ पर कोई ऐसा है जो शाकाहरी है?

(श्रोता हाथ उठाते हैं)

आचार्य: तुम लोगों के सामने एक तरफ़ रोटी और लौकी की सब्ज़ी और दूसरी तरफ़ मांसाहार रख दिया जाए, तो तुम क्या चुनोगे?

प्र४: रोटी-सब्ज़ी।

आचार्य: तुम्हारे सारे चुनाव तुम्हारी कंडीशनिंग से आते हैं। तो उनको अपनी रुचि मत मान लेना। जिसको शाकाहारी खाना सिखाया गया है उसे शाकाहार पसंद आयेगा, जिसे मांसाहारी खाना सिखाया गया है उसे मांसाहार पसंद आयेगा। ये क्यों मान रहे हो कि तुम्हारा चुनाव कोई बड़ी कीमती चीज़ है?

तुम्हारा चुनाव तुम्हारे यंत्र होने का संकेत है। तुम जो भी चुनाव करते हो, तुम वही चुनते हो जिसका संस्कार तुम्हारे मन में भरा हुआ है। तुम्हारे चुनाव में तुम हो कहाँ? ध्यान से देखो ना।

प्र४: सर हम कुछ भी जानने के लिए बहुत सारे प्रश्न करते हैं, और उन प्रश्नों से हम बहुत कुछ सीख भी जाते हैं। लेकिन कभी-कभी वो प्रश्न हमें इतना हैरान कर देते हैं कि जानने के बाद भी हम अनिश्चित से हो जाते हैं ।

आचार्य: ये भी तुमको संस्कारित कर दिया गया है कि जानने के लिए सवाल करना आवश्यक है, ये बहुत बड़ी भूल है। जानने के लिए सवाल करना आवश्यक नहीं है। अच्छा, यहाँ पर कोई ऐसा बैठा है जिसने आज कोई सवाल नहीं

पूछा है?

(श्रोता हाथ उठाते हैं)

आचार्य: तुम यहाँ बैठे थे, क्या कुछ जान नहीं पाए? जान गए ना? केवल सुन रहे हो। सच तो ये है कि सवाल करना, जानने के रास्ते में बाधा है। कैसे? एक बड़ी दुकान है जहाँ पर सब कुछ उपलब्ध है। तुम जाते हो, तुम्हारे मन में बैठा हुआ है पहले से कि मुझे आलू लेने हैं। तुम जाते ही उससे क्या सवाल करोगे?

प्र (एक स्वर में): आलू हैं क्या?

आचार्य: 'आलू हैं क्या'? अब क्या तुम जान पाओगे? जो समग्रता है वहाँ की, क्या उसे समझ पाओगे? जैसे ही तुमने सवाल किया तुमने पहले ही तय कर लिया कि इस सवाल का ही उत्तर चाहिए। जो उपलब्ध है, सब नहीं जानना। सवाल करते ही तुमने अपने आप को छोटा कर दिया।

इतनी बड़ी दुकान है, जिसमें पता नहीं क्या-क्या है, पर तुम्हें उत्तर क्या मिला? उतना ही छोटा उत्तर मिला जितना छोटा तुम्हारा सवाल है कि 'आलू हैं क्या?' एक दूसरा व्यक्ति है, वो बस खड़ा होकर देख रहा है, तो वो क्या-क्या जान जाएगा? वो सब कुछ जान जाएगा।

सवाल मत करो, देखो, समझो, शांति से जानो। सवालों में उलझना, ये भी एक संस्कार ही है, जो तुम्हें बचपन से दे दिया गया है कि खूब सवाल पूछो। सवाल तो मन से निकलते हैं, और मन है कुएं का मेंढक। कुएं का मेंढक सवाल करेगा भी तो क्या करेगा? कुएं का मेंढक क्या कभी ये सवाल पूछेगा कि महासागर कितना लम्बा और कितना गहरा है? क्या वो ये सवाल पूछेगा कभी? वो तो ये पूछेगा कि मेरे कुएं में थोड़ा-बहुत पानी कब आ जाएगा।

तुम्हारे सवालों की कोई कीमत नहीं है, कीमत है केवल तुम्हारे जानने की। बात समझ में आ रही है?

....

(उत्तर प्रदेश, 2013)

पढ़ाई में मन क्यों नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, परीक्षाओं में अंक अच्छे आएँ इसी कारण ही पढ़ाई करती हूँ। और इसी कारण कुछ भी गहराई से समझ नहीं पाती। कृपया इस पर प्रकाश डालें।

आचार्य प्रशांत: यही संकट है बेचारे परिणाम वादियों का – परिणाम बुरा आए तो दुःख, और परिणाम अच्छा आए तो आगत की आशंका – “अब आगे क्या होगा?” और जितना परिणाम अच्छा आता जाता है, आगे के लिए तुम्हारा पैमाना उतना ही ऊँचा होता जाता है – “इस बार छः फीट कूदे थे, अब आगे सात फीट कूदेंगे।” तो दिल तो धड़केगा न।

कोई भी परिणाम आख़िरी हुआ है तुम्हारे लिए, कि इसके आगे अब और नहीं कूदना है? तो ऊँचा कूद-कूदकर अपने लिए ही आफ़त पैदा कर रहे हो न। जितना कूदोगे, उससे ज़्यादा ही कूदना पड़ेगा।

निष्काम कर्म का यही अर्थ होता है – कर लो, बल्कि होने दो, और इस झंझट में पड़ो ही मत कि नतीजा क्या आएगा।

जो हो रहा है, वो अगर पूरेपन से हो रहा है, तो बस ठीक। अंजाम क्या आता है, परवाह किसको है?

और जो अंजाम की परवाह करेगा, वो अंजामों के अनंत चक्र में उलझा हुआ रहेगा।

कोई अंजाम कभी नहीं कहेगा कि – "मैं आख़िरी हूँ।"

तुम मर जाओगी, तो भी कोई और अंजाम आना बाकी होगा। इसीलिए ख़ूब कल्पनाएँ बैठ गई हैं कि मरने के बाद आख़िरी अंजाम मिलता है। कौन सा?

प्र: मोक्ष।

आचार्य: तो अंजामों का तो जाल ऐसा फैलाया गया है कि उससे कोई मुक्ति नहीं है। उससे यदि मुक्ति हो सकती है तो अगले अंजाम पर नहीं होगी, ठीक मुकाम पर होगी।

प्र: तो क्या छोड़ना होगा?

आचार्य: पकड़ा क्या है- ये बताओ। तुम लोग बात हमेशा आगे की करते हो, इधर की कभी करते ही नहीं, बिलकुल अभी की। ज़मीन की कभी बात ही नहीं करते। क्या पकड़ा है तुमने? तुम पढ़ाई कर रही हो, तुमने अभी अपनी परीक्षा के परिणाम कि बात की। तुम पढ़ाई कर रही हो अभी। तुमने हाथ में क्या पकड़ा है? क़िताब। मैं क़िताब छोड़ने को थोड़े ही कह रहा हूँ। मैं क़िताब से जुड़ी हुई चिंता छोड़ने को कह रहा हूँ।

प्र: वो तो यंत्रवत होता है आचार्य जी।

आचार्य: नहीं, ये यंत्रवत नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम्हें क़िताब से कोई प्यार ही नहीं है। तुम्हें सारा मतलब परिणाम से है। और परिणाम यदि आ सके बिना क़िताब के, तो तुम क़िताब छुओ न – "पता नहीं परिणाम कब आएगा? आएगा या नहीं आएगा?"

अभी तो हाथ में क्या है? क़िताब। और क़िताब से अगर प्यार नहीं, तो ज़िंदगी से प्यार नहीं, क्योंकि ज़िंदगी तो क़िताब के साथ ही बीत रही है न।

प्र: तो आचार्य जी, क्या डरना ज़रूरी है, पर उससे घबराना नहीं है?

आचार्य: क़िताब यदि हाथ में है, तो डरते हो क्या? जो क़िताब से डरते हैं, उन्हें क़िताब से क्या समझ में आएगा? क्या आएगा? कौन-सी क़िताब ने तुम्हारा मुँह नोंच लिया है?

क़िताब डराती है क्या? नहीं, क़िताब नहीं डराती, क़िताब से जुड़ी हुई अपेक्षा डराती है। क़िताब तो कोई सीधी-साधी बात कह रही है, सामान्य ज्ञान है। तुम उस ज्ञान से पता नहीं कितनी उम्मीदें जोड़ लेते हो कि ये ज्ञान मिल गया तो तुम्हारा जीवन बन जाएगा।

कोई ज्ञान तुम्हारा जीवन नहीं बना सकता। तुम जो हो, सो हो। कोई क़िताब न आज तक लिखी गई है, न उतरी है, न लिखी जाएगी, जो तुम्हारा जीवन परिवर्तित कर दे। हाँ, कोई क़िताब ऐसी ज़रूर हो सकती है जो तुम्हें परिवर्तन की उम्मीद से आज़ाद कर दे।

उतना ठीक है।

पर तुम्हारी तो उम्मीद ही बड़ी बेहद की है। तुम कहते हो, “ये क़िताब पढ़ूँगा, इससे कैरियर बन जाएगा तो मैं चमक जाऊँगा।” तुम चमक कैसे जाओगे?

कुछ चमक रहा है?

(हँसी)

क़िताब डराती सिर्फ़ इसलिए है क्योंकि तुम क़िताब से वो माँग रहे हो जो कोई क़िताब तुम्हें नहीं दे सकती।

तुम क़िताब को सहज तरीक़े से नहीं पढ़ते।

तुम क़िताब को ऐसे पढ़ते हो कि पढ़ लिया, तो परिणाम आएगा, परिणाम आया तो ये मिलेगा, ये मिला तो जीवन बनेगा।

जीवन कोई बनाने की चीज़ है?

अरे, और जो कुछ बनाना है बनाओ – कार बनाओ, रोटी बनाओ, घर बनाओ। जीवन थोड़े ही बनाया जाता है!

जब भी किसी से तुम ऐसा कुछ माँगोगे जो दे पाने की उसमें पात्रता ही नहीं, तो उसके और तुम्हारे सम्बन्ध में खटास आ जाएगी। तो क़िताब से भी तुम वही माँगते हो, जो तुम अपने प्रेमी से माँगते हो।

तुम क़िताब के माध्यम से भी पूर्णता पाना चाहते हो, और प्रेमी के माध्यम से भी।

दोनों ही नहीं दे सकते – तो पुस्तक और प्रेमी दोनों विफल रह जाते हैं, और दोनों तुम्हें डराते हैं।

और एक मोड़ पर आकर तुम दोनों को कहीं फेंक आते हो।

काम निकल गया है, उसके बाद किताबें रखते हो क्या अपने पास? ठीक उसी तरह से न-उम्मीद जब हो गए, तो प्रेमी रखते हो अपने पास? तुम कहते हो, "जो तुझसे न मिला वो अगले से मिलेगा।"

मत माँगो संसार से जो संसार तुम्हें दे नहीं सकता – न कोई क़िताब, न कोई विचार, न कोई वस्तु।

तुम्हें तुम्हारी पूर्णता कोई नहीं दे सकता।

तुम पूर्ण हो, तुम चमके हुए हो।

प्र: आचार्य जी, जीवन का उद्देश्य क्या है?

आचार्य: अगर तुम हो ही चमके हुए, तो क्या करोगे तुम उद्देश्य का? उद्देश्य का तो अर्थ ही यही हुआ कि कुछ करना बाकी है, कुछ और पाना बाकी है, और न पाया तो कुछ खोखला रह जाएगा। सब मिला ही हो, तृप्त ही हो अगर, तो जीवन जीने में कोई परेशानी? या बहुत ही मज़ा आता है इस एहसास के साथ जीकर कि बड़ी कमी है, बड़ा अधूरापन है?

कितने लोग हैं जिनको बड़ा मीठा-मीठा-सा लगता है ये सोच-सोचकर?

जीवन अपने आप में पूर्ण है।

कोई उद्देश्य है यदि उसका, तो मात्र पूर्णता की अभिव्यक्ति है।

तुम ठीक हो, बढ़िया हो, मस्त हो।

अब अपनी इस मस्ती को प्रकट होने दो – यही इस जीवन का उद्देश्य है।

मस्ती 'प्राप्त करना' उद्देश्य नहीं हो सकता। पूर्णता, आत्मा, सत्य, मुक्ति प्राप्त करना उद्देश्य नहीं है। मुक्त हो! अब अपनी इस मुक्ति को नाचने दो। यही उद्देश्य है। मुक्ति को दबाए रहोगे तो वो दबी रहेगी, वो तुम्हारा सम्मान करती है। तुम्हें 'हाँ' बोलनी होगी कि – "जो मुक्त स्वभाव है मेरा, वो अभिव्यक्त हो ज़रा।"

प्र: आचार्य जी, ऐसा क्यों होता है कि आनंदित व्यक्ति दुःख और सुख से प्रभावित नहीं होता?

आचार्य: क्योंकि वो दोनों से ही अस्पर्शित है। अनुभव हम रोकते हैं, अनुभव का हम दमन करते हैं, क्योंकि उससे हमें डर लगता है।

जब अनुभव तुम्हारे लिए बहुत मायने नहीं रखता, तब तुम अनुभव को आने देते हो। तब तुम कहते हो, "आ भी गया, तो मेरा बिगाड़ क्या लेगा? और आ भी गया, तो मुझे दे क्या जाएगा?" तो फिर दुःख हो, सुख हो, तुम कहते हो, "आओ, दोनों आओ।"

"ख़ुशी का मौका है तो हम पूरी तरह से ख़ुश हो लेंगे। हमें ये नहीं लगेगा कि ख़ुशी प्रदर्शित करना अनैतिक है। और दुखी होने का अवसर है, तो हमें ये नहीं लगेगा कि दुःख का प्रदर्शन कमज़ोरी का प्रदर्शन है कि आध्यात्मिक आदमी, सुलझा हुआ आदमी, धार्मिक आदमी रो कैसे सकता है।"

"न, हम तो ख़ूब रोएँगे। रोएँगे, पर कोई आँसू हमें गला नहीं रहा है। हँसेंगे, पर कोई ठहाका हमें कम्पित नहीं कर रहा है। हँस रहे हैं, और भीतर अपनी ही हँसी से अनछुए हैं। रो रहे हैं, पर रो नहीं भी रहे हैं।"

और जब तुम रो नहीं भी रहे होते हो, तब तुम्हें आज़ादी होती है पूरा रोने की।

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2019)

पढाई, संसार, और जीवन के निर्णय

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, कल मेरी परीक्षा है, लेकिन मन शांत नहीं है। मैंने प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर्ष में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया। पर इस वर्ष ऐसा हो रहा है कि मन बड़ा अशांत है। कुछ ही घंटे बचे हैं। आपका आशीर्वाद मिल जाएगा तो कल का दिन बहुत ही अच्छा जाएगा।

आचार्य प्रशांत: आशीर्वाद लेने से क्या होगा, जाकर पढ़ाई करो बेटा। यही आशीर्वाद है। और मन को क्यों इतना महत्त्व दे रहो कि शांत है या अशांत है। हो गया मन शांत, तो उससे क्या पा जाओगे? मन तुम्हारी छाया है। तुम दृढ़तापूर्वक चल पड़ो कहीं को, छाया को पीछे-पीछे आना ही पड़ेगा। ऐसा हुआ कि किसी की छाया ने कहा हो कि "मैंने तो खूँटा पकड़ लिया, अब तुम्हें आगे जाने दूँगी"? तुम छाया का निर्धारण करते हो, छाया तुम्हारा निर्धारण नहीं कर सकती।

मन तो तुम्हारा तुम्हारे पीछे-पीछे आएगा, तुम जान तो दिखाओ।

मन की शांति-अशांति, सहमति-असहमति, इनकी परवाह नहीं किया करते। जानते हो मन पर कितने तरह के प्रभाव पड़ते हैं इधर से, उधर से? गिनती भी नहीं कर पाओगे। लाखों सालों के संचित प्रभावों का नाम है 'मन'।

उसको तो कोई भी, किधर को भी खींच सकता है। लेकिन ये याद रखो कि तुम्हारी ताक़त, आत्मा की ताक़त, मन पर पड़ते किसी प्रभाव की नहीं है।

दोनों बातें बोल रहा हूँ ।

एक तो ये कि मन पर करोड़ों प्रभाव आजतक पड़े हैं, और मन ने उनको सोख लिया है, अंगिकार कर लिया है। वो तुम्हें कभी इधर को, कभी उधर को ढकेलते रहते हैं। और दूसरी बात मैं कह रहा हूँ कि मन पर आजतक जितने प्रभाव पड़े हैं उनका कुल सामर्थ्य जोड़ भी लिया जाए, तो वो भी आत्मा के सामर्थ्य के आगे कुछ नहीं।

तो तुम आत्मिक रूप से, हार्दिक रूप से बढ़ो किधर को भी, मन आएगा छाया की तरह पीछे -पीछे। मन की औक़ात नहीं कि वो चू-चपर करे। चू-चपर कर भी रहा है तो करने दो, पीछे तो उसे आना ही पड़ेगा। आगे मैं कुछ नहीं बोलूँगा, चलो चुपचाप पढ़ाई करो ।

प्र१: मेरे पिताजी ने कंप्यूटर साइंस से ग्रेजुएशन कराया था मुझे, जिसे करने में मेरा मन नहीं लगा। फिर मैं योग के क्षेत्र में मास्टर्स की डिग्री हासिल करने में लग गया। पिछले चार वर्षों से योगशिक्षा दे रहा हूँ, लेकिन फिर भी बहुत सफलता नहीं मिली है। ख़ास आमदनी भी नहीं होती है।

इस स्थिति में मैं क्या करूँ? मेरे लिए अगला क़दम क्या है?

आचार्य: जगत को कुछ ऐसा दोगे जो उसके लिए वास्तव में मूल्यवान हो, और उसको समझा भी पाओ कि क्या मूल्य दे रहो हो तुम, तो जगत तुमको वो देगा जिसको तुम 'सफलता' इत्यादि बोलते हो। या फिर तुम जगत को बुद्धू बनाने लग जाओ, तो भी जगत तुमको सफलता दे देता है। तो जो ये तथाकथित सफलता है, ये दो ही तरीक़ों से आती है।

अच्छा है कि तुम सही तरीक़ा चुनो, लोगों को वो दो जो वास्तव में मूल्य रखता है। जो विधियाँ योग इत्यादि की तुम

सिखा रहे हो, लोगों को देखो कि क्या उससे वास्तव में लाभ हो रहा है। लाभ हो रहा होगा तो वो क्यों नहीं तुम्हारे पास लौटकर आएँगे? क्यों नहीं तुम्हारा काम आगे बढ़ेगा?

पर दूसरी बात और भी देखो।

लोगों को पता भी चलना चाहिए कि उन्हें लाभ हो रहा है। क्या तुम ठीक से इस बात को सम्प्रेषित कर पा रहे हो, बता पा रहे हो कि लोगों को लाभ हो रहा है? कई बार देना ही काफ़ी नहीं होता, जताना भी पड़ता है। समझाना भी पड़ता है कि क्या लाभ हुआ, क्योंकि जिसको लाभ दे रहे हो, वो हो सकता है कि इस स्थिति में ही न हो कि लाभ को समझ पाए।

अगर हठयोग की तुम बात अगर कर रहे हो, तो उसमें ऐसा होगा नहीं, क्योंकि लाभ बहुत स्पष्ट और स्थूल होता है। दैहिक तल पर होता है, दिख ही जाता है कि शरीर को लाभ हुआ है। कुल मिला-जुलाकर तुमने जो क्षेत्र पकड़ा है, वो तो अच्छा ही है। उसमें या तो अपनी प्रवीणता, अपनी योग्यता को बढ़ाओ, या फिर लोगों को समझाओ कि तुम योग्य तो हो ही, बात बस कम्युनिकेशन (सन्देश) की है।

आज के समय में जब तन-मन मनुष्य के दोनों बेकार, बीमार होते ही जा रहे हैं, उस समय में यदि कोई कहे कि योग जैसी साधना सिखाने के बावजूद उसे मूल्य-महत्त्व नहीं मिल रहा है, तो इसका मतलब जो सिखाया जा रहा है, अभी उसमें ही प्रवीणता नहीं है। और गहराई से अपने क्षेत्र में प्रवेश करो। जो तुम्हारे सामने सीखने वाले शिष्य, साधक आते हैं, उनसे और गहरे सम्बन्ध स्थापित करो। मात्र सिखाओ ही नहीं, समझाओ भी।

प्र२: मेरी मनोस्थिति अभी ये है कि न ही मुझे संसार में फैले हुए इस जाल का ज्ञान है, और न ही मुझे गुरु के वचनों की पूरी समझ है। हाँ, एक आकर्षण ज़रूर है गुरु के व्यक्तित्व के प्रति। क्या ऐसा करना सही रहेगा कि गुरु को ही एक उदाहरण मानकर, उनपर विश्वास रखकर ही मैं चल पड़ूँ, और वही चीज़ मुझे आख़िर तक ले जाएगी?

आचार्य: हाँ, बिलकुल हो सकता है, लेकिन अगर गुरु को उदाहरण बना रहे हो तो फिर उसमें अपनी मान्यताएँ और

अपना व्यक्तित्व बीच में मत लाना। गुरु को तुमने उदाहरण बनाया, गुरु तुम्हारे सामने कई तरह के उदाहरण रखते हैं। वो कभी नहीं कहेंगे कि – "मुझसे या मेरे निजी व्यक्तित्व से ही चिपककर रह जाओ।" वो तुमसे सब चाँद-तारों की बात करेंगे, उनकी ओर भी देखना।

क्योंकि कई बार इसमें हमारा स्वार्थ भी छुपा होता है कि बस हम 'गुरु' नामक एक ही व्यक्ति की ओर देखेंगे। उस व्यक्ति की भौतिक सीमाएँ होती हैं, उस व्यक्ति की एक स्थिति होती है, उस स्थिति में वो हो सकता है कि भौतिक रूप से सर्वांग-सर्वगुण सम्पन्न न हो, तो इससे 'गुरु' को आदर्श बनाने वाले को सुविधा हो जाती है।

हुए हैं कई संतजन, उदाहरण के लिए, जो शारीरिक रूप से ज़रा बेडौल थे। रामकृष्ण परमहंस के गुरु थे तोतापुरी महाराज। अब तुम देखोगे तो, उनकी थी इतनी बड़ी तोंद। अब तुम ख़ुद मोटे आदमी हो, तुमने कहा, "मैं तो गुरु को ही उदाहरण बनाऊँगा," ये स्वार्थ की बात हो गई न। तुमने गुरु पकड़ा ही इस दृष्टि से है कि जलेबियाँ चलती रहें।

तो ठीक है, तुम्हारी निष्ठा सम्माननीय है, सुन्दर है। तुम गुरु को ही उदाहरण बनाना चाहते हो, लेकिन फिर गुरु तुम्हें अन्य जिन उदाहरणों की ओर प्रेषित करे, वहाँ जाने से इंकार मत करना। आओ गुरु के पास। और फिर गुरु कहे, "वहाँ चले जाना," तो ये मत कहना कि – "इतनी तो आपमें श्रद्धा रखता हूँ कि आप तक आ जाऊँगा। लेकिन इतनी श्रद्धा नहीं रखता कि आप जिधर को भेजेंगे वहाँ को चला भी जाऊँगा।" ये बात बेईमानी की हो गई। गुरु के पास आ रहे हो अगर, तो गुरु जब गुरु दूर भी भेजे, तो दूर चले जाओ। जिस दिशा भेजे उस दिशा चले जाओ। ये मत पूछो कि – मिलेगा क्या?

ठीक है ?

प्र: अध्यात्म जीवन में अवतरित होने के बाद सांसारिक और पारिवारिक कार्यों में मन नहीं लगने का क्या समाधान है?

आचार्य: सांसारिक-पारिवारिक कार्यों से मन नहीं उठ जाता अध्यात्म की वजह से।

अध्यात्म की वजह से बेवकूफ़ी से मन उठ जाता है।

अध्यात्म का बिलकुल विरोध नहीं है संसार-परिवार-समाज से।

अध्यात्म तो जीवन को सच्चाई और सौन्दर्य देने का विज्ञान है।

अध्यात्म का विरोध है तो बेवकूफ़ी से।

जहाँ कहीं भी मूर्खता होती है, विवेकहीनता होती है, छद्म षड़यंत्र होते हैं, छल और प्रपंच होते हैं, अज्ञान का अँधेरा होता है, अध्यात्म उनपर रोशनी डालता है। उन सबको ख़त्म कर देता है अध्यात्म।

अध्यात्म का काम है सच्चाई को, निर्भीकता को, सुन्दरता को आगे बढ़ाना।

लेकिन ये सुनने को ख़ूब मिलता है कि जबसे जीवन में अध्यात्म आया है, तबसे परिवार में समस्याएँ बढ़ गई हैं, इत्यादि। अध्यात्म तो बेवकूफ़ी के ख़िलाफ़ है। अध्यात्म जीवन में आया, परिवार में समस्याएँ बढ़ गईं, इससे क्या बात समझ में आती है? इससे तो यही पता चलता है कि परिवार बेवकूफ़ियों का अड्डा था, और है। तो अध्यात्म आया नहीं कि बेवकूफ़ियों पर चोट पड़ रही है करारी।

पेट में कीड़े हों, और तुम कीड़े मारने की दवाई खाओ, और भीतर से आवाज़ आए ज़ोर से, "अरे, ये दवाई बड़ी घातक है, ये तो मार ही डालेगी," तो क्या ये तुम्हारी आत्मा की आवाज़ है? ये कीड़ों की आवाज़ है। वो दवाई शरीर के लिए घातक नहीं है, वो दवाई कीड़ों के लिए घातक है। तो अध्यात्म कीड़े मारने वाली दवाई है। उससे अगर किसी को तकलीफ़ हो रही है तो वो कीड़ा है। बल्कि कीड़ा कौन है ये जानने के लिए अध्यात्म सर्वोत्तम विधि है। जिनको अध्यात्म से तकलीफ़ होती है, वो ही कीड़े हैं।

अध्यात्म ताप है।

मोम के पुतले खड़े हों, और लोहे के पुतले खड़े हों, अध्यात्म आग है, जला दो आग। जो पिघलने लगे और हाय-हाय करने लगे, जान लेना यही नकली है, यही मोम का था। अन्यथा पता नहीं चलता। दूर से देखो तो मोम पुतला भी लकड़ी के, लोहे के, ताँबे के, किसी भी रंग में रंग सकते हैं उसको। पर अध्यात्म को आग है, लपट है। उसके सामने तो मोम त्राहिमाम शुरू कर देता है। अब कीड़े भीतर से चिल्ला रहे हैं, "अरे, अरे, ज़हर खा लिया है तुमने। अब मरोगे," तो कीड़ों की सुन मत लेना। कीड़े अपने स्वार्थ के लिए तुम्हें भटका रहे हैं। तुम नहीं मरोगे। ज़हर नहीं खा लिया तुमने, तुमने दवा खाई है।

परिवार में सच्चाई होनी चाहिए, रिश्तों में मधुरता होनी चाहिए, रस होना चाहिए, प्रेम होना चाहिए, निष्कामता होनी चाहिए। उसकी जगह पारिवारिक रिश्ते अगर भ्रम पर, मोह पर, स्वार्थ पर, कामनाओं पर आधारित हैं, तो अध्यात्म से उन रिश्तों पर चोट तो पड़ेगी न।

और याद रखना – अध्यात्म रिश्तों की कालिमा, मलिनता, कलुष के ख़िलाफ़ है, रिश्तों के ख़िलाफ़ नहीं है। ये भी बड़ा भ्रम व्याप्त है समाज में कि – "साहब, अध्यात्म तो रिश्ते तोड़ देता है।" नहीं, रिश्ते नहीं तोड़ देता है अध्यात्म। अध्यात्म रिश्तों की सफ़ाई करता है।

अध्यात्म रिश्तों की सफ़ाई करता है, मैल हाय-हाय करके चिल्लाती है कि – "बर्बाद हो गए, बर्बाद गए।" मैल ही बर्बाद हुई है, कीड़े ही बर्बाद हुए हैं, मोम का पुतला ही पिघला है। लोहे के पुतले नहीं पिघले, शरीर को हानि नहीं हुई। वस्त्र को हानि नहीं हुई है, मैल को हानि हुई है। वस्त्र तो अब निखर के, चमक के सामने आएगा।

जो रिश्ते आध्यात्मिक बुनियाद पर बनते हैं, उनसे प्यार रिश्ते दूसरे होते हैं क्या? और जो रिश्ते आध्यात्मिक बुनियाद पर नहीं हैं, उनके साथ तुम जी कैसे लेते हो, बताओ। वो रिश्ते नहीं होते, वो रिक्त-पिपासु कीड़े ही होते हैं फिर, जो तुम्हारी आँत के भीतर पल रहे हैं बस। और ख़ून पीना चाहते हैं।

रिश्ते तोड़ने की कोई बात नहीं है। संतों के रिश्ते तो पूरे संसार से बन जाते हैं। अध्यात्म अगर रिश्ते तोड़ने का खेल होता, तो संत क्यों कहते, “पूरा ब्रह्माण्ड ही हमारा परिवार है”? अध्यात्म तो रिश्ते बनाता है, रिश्ते जोड़ता है – सुन्दर तरीक़े से, साफ़ तरीक़े से।

प्रश्न ५: प्रणाम आचार्य जी। कुछ समय पहले मुझे आपके दर्शन-सत्संग का लाभ मिला था। तब आपने मुझे नेति-नेति एवं शास्त्र अध्ययन के लिए प्रेरित किया था। मैं पूर्ण प्रयास से दोनों कर रहा हूँ। बहुत से व्यक्ति, वस्तुएँ, विचार सहज ही छूट रहे हैं। शास्त्र अध्ययन से अब मुझे यह आभास स्पष्टता से मिल रहा है कि आप एवं सभी शास्त्र एक ही हैं। प्रश्न उठने कम हुए हैं, बल्कि अब तो कोई प्रश्न उठता ही नहीं। और जैसा है, उसका स्वतः शास्त्रों से सहज उत्तर मिल जाता है।

आगे यहाँ से मेरे लिए क्या मार्गदर्शन है, कृपया बताएँ।

आचार्य प्रशांत: ठीक जा रहे हो, बस चलते रहो। अभी जहाँ पहुँचे हो, उसको बस शुरुआत भर मानो। शास्त्र अनंत राशि हैं। जितना उनमें गहरे जाओगे, उतनी उनमें सम्पदा पाओगे। शुरुआत में ही लाभ होने लगा है, लक्षण बहुत शुभ है। अब आगे बढ़ते रहो। जितना मिला है, उससे सन्तुष्ट होने की कोई बात नहीं। बहुत है अभी पाने को।

प्र: आचार्य जी, आपके मार्गदर्शन के अनुसार मैं कुछ समय से बैडमिंटन खेल रहा हूँ। कल शाम मुझे कुछ रुचि हुई, और मैंने गूगल सर्च करके देखा, तो मैंने कहीं पढ़ा कि शटल कॉक बनाने के लिए,पक्षियों की ह्त्या की जाती है। यह पढ़कर मैं बहुत उदास हुआ। क्या मुझे यह खेल अब आगे खेलना चाहिए ?

आचार्य: तुम ये जो बात बता रहे हो, ये आज से दशक-दो दशक पहले की है। बहुत दिनों से मैंने बैडमिंटन खेला नहीं है, इसीलिए शायद ठीक-ठीक ब्यौरा न दे पाऊँ। लेकिन थोड़े से पैसे अगर और ख़र्च करोगे, तो अर्टिफिशियल (कृत्रिम) शटल कॉक आती हैं अब, प्लास्टिक या किसी अन्य पदार्थ की बनी हुई। वो चलती भी ज़्यादा हैं। पर मुझे लग रहा है कि वो थोड़ी महँगी होती होंगी।

देखो, आदमी के रचे जितने खेल हैं, उनमें आदमी की बीमारियाँ और वृत्तियाँ भी परिलक्षित तो होती ही हैं। अब

क्रिकेट खेलते हो आप, उसमें जो गेंद होती है वो चमड़े की होती है। बल्ला लकड़ी का होता है। विकेट भी लकड़ी के हुआ करते थे, अब शायद लकड़ी के नहीं होते हैं। गिल्लियाँ भी लकड़ी की होती थीं, अब शायद लकड़ी की नहीं होती हैं। तो ये सब जिस समय की खोज हैं, उस समय की सब बीमारियाँ और दुर्गुण भी इन खेलों में दिखाई तो देंगे ही न।

बैडमिंटन खेलते हो तुम, रैकेट पर जो पट्टा लगा होता है, वो भी मैं समझता हूँ कि किसी समय में चमड़े का ही होता था। अब धीरे-धीरे चीज़ें बदलेंगी। लेकिन फिर भी ये पक्का ही है कि आदमी ने जो कुछ भी आविष्कृत किया है, उसमें आदमी की बीमारियाँ भी सम्मिलित हो ही जाती हैं। लोहे का खनन नहीं होगा, या एलुमिनियम का खनन नहीं होगा नहीं होगा, तो बैडमिंटन का रैकेट बनना बड़ा मुश्किल है। इसी तरीक़े से हम प्लास्टिक से होने वाले ख़तरों की बात करते हैं – बैडमिंटन रैकेट का जाल, बैडमिंटन की शटल, रैकेट के तार, मैं समझता हूँ इन सब में आज भी प्लास्टिक का प्रयोग तो हो ही रहा है।

तो खेलों की उपयोगिता है, निश्चित रूप से है। खेलना चाहिए। लेकिन हाँ, एक बिंदु आता है जब दिखने लगता है कि अगर खेल आदमी ने रचा है, आदमी ने ईजाद किया है, तो उसमें आदमी के दुर्गुण भी हैं। खेल में ही हैं, खेल की रचना में ही हैं। हमारे खेल, देखते नहीं हो, एक दूसरे को पछाड़ने के खेल हैं? हम खेलते समय भी एक-दूसरे को पछाड़े बिना नहीं खेल सकते। अब कहने को खेलने गए हैं, लेकिन वहाँ भावना यही है कि दूसरे पर भारी पड़ें।

हमारा ऐसा कोई खेल है ही नहीं जो प्रेम का हो।

हमारा ऐसा कोई खेल है ही नहीं जिसमें हार के जीता जाता हो।

हमारा कोई खेल है ही नहीं जिसमें तुम्हें अंक इस बात के मिलेंगे कि तुमने डूबते को सहारा कितना दिया।

हमारे खेल सारे यही हैं कि – “पटक के मारो। बचना नहीं चाहिए।”

और कुछ तो ऐसे ही हैं कि मुँह पर मुक्का पड़ना चाहिए, तभी अंक मिलेंगे। और इतनी ज़ोर से मारो कि गिर ही पड़े, दोबारा उठे ही नहीं, तो नॉक आउट मिल जाएगा बढ़िया।

हम हीं ने रचे हैं न, तो हमारे ही जैसे हैं। हम जैसे, वैसे हमारे खेल। पर तुम अभी खेलो। अभी खेलो। अभी इतना आगे नहीं बढ़े हो तुम कि सब खेलों की निरर्थकता तुमको दिखने लग जाए। ज़रा अट्ठारह-बीस साल के हो जाओ, तब मैं देखूँ कि तुम अन्य खेलों में फँस रहे हो या नहीं। जब देखूँगा कि तुम किसी खेल में नहीं फँस रहे हो, तब मैं कहूँगा, "तुम चिड़िया को भी छोड़ दो।" अभी तो बहुत चिड़ियाएँ आएँगी, उनको छोड़कर दिखाओ पहले। फिर शटल कॉक को छोड़ने की बात करना।

ये चिड़िया और कॉक का खेल तो अभी शुरू होना बाकी है तुम्हारी ज़िंदगी में। उससे ऊपर उठे तो फिर ये रैकेट भी छोड़ना। नहीं तो गड़बड़ हो जाएगी। गहरी वृत्ति बची रहेगी, ऊपर-ऊपर की चीज़ें छोड़ दोगे, उससे कोई लाभ नहीं होगा।

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2019)

पढ़ाई के किसी विषय में रुचि न हो तो?

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, मुझे अपनी आगे की पढ़ाई के लिए कुछ ऐसे विषयों का चुनाव करना पड़ रहा है जिनमें मेरी बहुत ज़्यादा रुचि नहीं है। ऐसा लगता है उनमें नकली रुचि जगानी पड़ेगी। लेकिन ऐसा भी लग रहा है कि वो विषय आगे कैरियर में बहुत लाभ देंगे, और वो मानवता से जुड़े कार्यक्षेत्रों में भी काम आएँगे।

मैं उन विषयों में अपनी रुचि कैसे जगाऊँ? या उन विषयों को छोड़कर कुछ ऐसे विषय चुनूँ, जिनमें मेरी रुचि है?

आचार्य प्रशांत: अगर कह रहे हो कि कोई ऐसा क्षेत्र है जो तुम्हें भी लाभ देगा, और मानवता के लिए भी अच्छा है, तो उसमें तुम्हें नकली रुचि क्यों बनानी पड़ेगी? वास्तविक रुचि क्यों नहीं?

प्र: क्योंकि उन विषयों की पढ़ाई मुझे बहुत जल्दी समझ नहीं आती है। जैसे कंप्यूटर और गणित हैं, इन विषयों में मुझे हमेशा से दिक़्क़त महसूस होती है।

आचार्य: तो अब समझो।

इंटरेस्ट या रुचि छोटी चीज़ होती है, सत्यता बड़ी चीज़ होती है।

अहंकार कहता है, "रुचि को प्रधानता दो।"

अध्यात्म कहता है, "धर्म प्रधान है।"

अध्यात्म का अर्थ ही है – रुचि की परवाह ही न करना, और उस तरफ़ चलना जिस तरफ़ धर्म है, जिधर सत्य है।

रुचि की तरफ़ चलना माने – वृत्तियों के चलाए चलना।

'रुचि' बड़ा हल्का शब्द है।

और ये बड़े खेद की बात है कि हमने आज के समय में ‘रुचि’ को, या ‘इंटरेस्ट’ को बड़ा आदरणीय शब्द बना लिया है। हम रुचि की बात ऐसे करते हैं जैसे रुचि कोई ऊँची चीज़ हो, सत्य की समकक्षी हो।

जीवन जीने का उसूल ये है कि – “रुचि चाहे हो चाहे न हो, वो करेंगे जो ज़रूरी, उचित है, आवश्यक है, सत्य है, आध्यात्मिक है।

लेकिन हवा कुछ ऐसी चल रही है कि लोग कहते हैं, “आई एम नॉट इंटरेस्टेड (मेरी इसमें रुचि नहीं है)।” सो व्हॉट(तो क्या)? हाऊ इस यॉर इंटरेस्ट सो सेक्रेड (तुम्हारी रुचि में ऐसा क्या पवित्र है, पूजनीय है)?

लेकिन बात यही है कि ‘सेक्रेडनेस’, पवित्रता या पावनता का कोई मूल्य ही नहीं रहा है। वो सिद्धांत के तौर पर भी बच नहीं रही है। तो जब कुछ नहीं है जो अहम से आगे का है, कुछ नहीं है जो आपकी रुचि से कहीं ज़्यादा आवश्यक है, तब ‘रुचि’ ही रानी बन बैठती है।

छोटे-छोटे बच्चों को सिखाया जा रहा है – “फाइंड आउट व्हॉट यू आर इंटरेस्टेड इन (पहचानो तुम्हारी रुचि किसमें है)।”

और रुचि तो तुम भली-भाँति जानते हो कि किसकी होती है, इसीलिए किसकी तरफ़ होगी। आत्मा तो किधर की रुचि रखती नहीं – न दाएँ की न बाएँ की। रुचियाँ तो सारी अहंकार की होती हैं। और अहंकार की ही होती हैं अगर सारी रुचियाँ, तो रुचियाँ तो उधर को ही जाएँगी जिधर अहंकार होगा, और जिधर तुम्हारा विनाश होगा।

अहम की रुचि किधर को होगी? जिधर चकाचौंध होगी, जिधर उत्तेजना होगी, जिधर लोभ होगा, जिधर प्रशंसा-प्रतिष्ठा होगी। तो रुचि तो बड़ी सस्ती, हल्की, कभी-कभी बड़ी घिनौनी बात है। इतना ही नहीं, रुचि का बड़ी आसानी से पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

लड़का जवान हो रहा है, लड़कियों में रुचि आ गई होगी उसकी। इतनी उथली चीज़ है ‘रुचि’, इंटरेस्ट। इंटरेस्ट की बात कभी मत कर देना। जिधर को भी तुम्हारा इंटरेस्ट जा रहा हो, उधर तीखे सवाल करो –

“क्यों है मेरी रुचि इधर?”

“क्या है मेरे भीतर जो खींच रहा है उधर को?”

अभी भी देखो न तुम अपने आपको इस स्थिति में। जिस क्षेत्र की तुम बात कर रही हो, उस क्षेत्र में तुम्हारी अरुचि ही इसीलिए है क्योंकि उसमें तुम्हें सफलता नहीं मिली। तुम ये नहीं देख रहीं कि आवश्यक क्या है। बल्कि ये कह लो कि तुम्हें पता है कि आवश्यक क्या है, फिर भी रुचि आवश्यकता पर, धर्म पर, सत्य पर भारी पड़ रही है।

ये मत होने देना।

अगर रुचि धर्म पर भारी पड़ रही है, तो इसका मतलब अहंकार आत्मा पर भारी पड़ रहा है।

हमने ‘इंटरेस्ट (रुचि)’ शब्द को बहुत ज़्यादा अहमियत दे दी है। ये बाज़ार का काम है, ये उपभोक्तावाद का काम है। बाज़ार चलता ही है तुम्हारी रुचि पर। बाज़ार तुमसे पूछता है, “टेल मी, व्हॉट डु यु फाइंड इंटरेस्टिंग (बताओ तुम्हारी किसमें रुचि है)।”

और फ़िर तुम्हें वही बेच दिया जाता है जो तुम्हें इंटरेस्टिंग (रुचिकर) लगता है। तो बाज़ार तुम्हारी रुचि की कद्र करेगा ही, वो तुम्हारी रुचि को पूजेगा, क्योंकि बाज़ार है ही तुम्हें लूटने के लिए, तुमसे मुनाफ़ा बनाने के लिए।

तो बाज़ार ने अभी प्रचलित, समसामयिक लोक-संस्कृति में, इन शब्दों को बड़ा उभार, बड़ी मान्यता, बड़ा सम्मान दे दिया है – इंटरेस्ट, पैशन इत्यादि। जबकि फ़िज़ूल शब्द हैं ये। लोग आते हैं, कहते हैं, “आई एम नॉट इंटरेस्टेड इन

स्पिरिचुअलिटी (मेरी आध्यात्मिकता में रुचि नहीं है)।” वो उतने ही बड़े मूर्ख हैं, जितने कि वो जो कहते हैं, “मैं सत्संग में आया हूँ क्योंकि मैं अध्यात्म में रुचि रखता हूँ (आई एम इंटरेस्टेड इन स्पिरिचुअलिटी)।”

अध्यात्म तुम्हारी रुचि-अरुचि का मोहताज होकर कब से रह गया?

जो सच है वो सच है, उसमें तुम्हारी रुचि हो या अरुचि हो।

पर हम सत्संग में भी तभी आते हैं जब वो इंटरेस्टिंग लगता है। वीडियोस हैं यूट्यूब पर, वहाँ रोज़ पचास टिप्पणियाँ इस तरह की भी आती हैं – “व्हॉट यू आर सेइंग इस इंटरेस्टिंग (आप जो कह रहे हैं वो रुचिकर है)।” ख़ासतौर पर बुद्धिजीवी वर्ग। और इसकी विपरीत ऐसे भी आते हैं, जो कहते हैं, “आई डोंट फाइंड इट इंटरेस्टिंग।” वाहियात बात है। ये वही कह सकता है जिसकी ज़िंदगी में ‘सेक्रेडनेस‘ (पवित्रता) जैसी कोई चीज़ न हो।

और आज का तो युग है ही हर चीज़ पर अपने गंदे हाथ रख देने का युग, किसी-भी बात को सेक्रेड (पवित्र) न मानने का युग। तुम्हारे आसपास जो कुछ है, वो सेक्रेड न हो, ये बात तो समझमें आती है। यहाँ तक ठीक है। पर अगर तुमने ये कह दिया कि – “कुछ सेक्रेड हो ही नहीं सकता, बेयॉन्डनेस डस नॉट एक्सिस्ट,” कि तुम्हारे मन और तुम्हारी बुद्धि के पार कुछ है ही नहीं, तो तुमने गुनाह कर दिया है।

जीवन या तो चलेगा धर्म पर, या वो चलेगा तुम्हारी रुचि पर।

तुम देख लो किस पर चलाना है।

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2019)

विद्यार्थी जीवन, पढ़ाई, और मौज

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी मैं पढ़ नहीं पा रहा हूँ, और हमेशा बेचैन रहता हूँ। क्या नहीं पढ़ना ही मेरी बेचैनी का कारण है? या कोई और कारण है जिसे मैं समझ नहीं पा रहा हूँ?

आचार्य प्रशांत: पढ़ाई तो आप करते ही नहीं आए हो न। और आप इंजीनियरिंग में पहुँच गए, वो भी किसी उम्मीद के साथ। कोई बहुत अच्छा कॉलेज तो होगा नहीं, और बहुत अच्छे तुम छात्र भी नहीं। तो घुसे हो, और सालभर में बात समझ में आ गई कि जो उम्मीदें लेकर आए हो वो यूँहीं थीं, दिवास्वप्न, पूरी होनी भी नहीं हैं। पढ़ने में तुम्हारी रुचि पहले भी बहुत नहीं थी, और अब उम्मीद टूटी है तो बिलकुल ही नहीं बचेगी।

तो ये है कहानी। इसमें तुम मुझे समझा क्या नहीं पा रहे थे ?

प्र: आचार्य जी, मैं लेकिन पढ़ना चाहता हूँ अभी। मैं पुस्तकों के साथ मौज मारना चाहता हूँ।

आचार्य: मौज तो तभी मनती है जब पहले उनमें घुसते हो, जब उनके साथ समय बिताते हो। और आप उनके साथ समय नहीं बिताओगे, अगर समय बिताने के पीछे कोई कारण है। कारण लगेगा अभी है, और कारण लगेगा अभी सिद्ध नहीं हो सकता, तो तुम्हारी रुचि ख़त्म हो जाएगी।

कारणवश, प्रयोजनवश जो भी काम करोगे उसमें बहुत जान थोड़े ही होगी। उसके लिए तभी तक प्रेरित रहोगे जब लगेगा कि तुम्हारी आशा पूरी हो सकती है। जैसे ही ये एहसास होगा कि यहाँ दाल नहीं गलने वाली, वैसे ही सारी प्रेरणा छूमंतर हो जाएगी। कोई ऊर्जा नहीं बचेगी, काम करने का मन नहीं करेगा।

पुस्तकों के साथ मौज मनाना तो उसके लिए है न जो अकारण पढ़ता हो, निष्प्रयोजन पढ़ता हो। तुम भी निष्प्रयोजन हो जाओ, तुम भी मौज मनाओगे। ये उम्मीद मन से बिलकुल निकाल दो कि पढ़ाई नौकरी की ख़ातिर होती है, फिर पढ़ने लग जाओगे।

प्र: आचार्य जी, आपको ऐसा कहते पहले भी सुना है, मैं फिर भी पढ़ नहीं पाता हूँ।

आचार्य: क्योंकि तुम पढ़ते तो कभी भी नहीं थे। पढ़ते तो तुम कभी भी नहीं थे। मेरी बातें सुनने भर से तुम निष्प्रयोजन थोड़े ही हो गए हो।(सामने रखे एक पोस्टर पर लिखी उक्ति की ओर इंगित करते हुए) ये क्या लिखा है इस पोस्टर पर?

प्र: ओपिनियंस आर नॉट ट्रुथ (अभिमत सत्य नहीं होता)।

आचार्य: जो एक वाक्य पढ़ सकता है, वो पूरा अध्याय भी पढ़ सकता है। इतना पढ़ लिया तो और क्यों नहीं पढ़ सकते? वाट्सएप्प मैसेज पढ़ते हो या नहीं? होर्डिंग (पट विज्ञापन) पढ़ते हो या नहीं? बाज़ार में निकलते हो तो बैनर पढ़ते हो या नहीं? जब ये सब पढ़ सकते हो तो एक अध्याय क्यों नहीं पढ़ सकते? छोड़ो एक अध्याय, क़िताब का एक पैराग्राफ (अनुच्छेद खंड) क्यों नहीं पढ़ सकते? या नहीं पढ़ सकते?

सब पढ़ सकते हो न। बस इसको पढ़ने में कोई प्रेरणा नहीं है, इसको पढ़ने के पीछे कोई लोभ वगैरह है नहीं, तो आसानी से पढ़ लिया। क़िताब बोझ कि तरह लगती है क्योंकि क़िताब से पहले एक उम्मीद जोड़ी थी कि इससे सफल हो जाओगे। वो उम्मीद अब दिख रहा है कि नहीं पूरी होगी। तो इसीलिए तुम्हारा मन उठा हुआ है। (कक्ष में रखे पोस्टर्स की ओर इंगित करते हुए) यहाँ देखो कितनी चीज़ें लिखी हुई हैं, सब पढ़ डालो। देखो पढ़ ले रहे हो न?

कॉलेज में खेलने-कूदने की कुछ व्यवस्था है?

प्र: जी।

आचार्य: खेला-कूदा करो। कॉलेज में जितनी भी को-करीकुलर संबंधी गतिविधियों का साधन उपलब्ध हो, उनमें भाग लो। और भाग लो। तुम्हारा शरीर अभी बी. टेक. द्वितीय वर्षीय छात्र जैसा नहीं है। तुम अगर अभी कहते कि तुम दसवीं कक्षा में हो, तो मैं मान लेता। शरीर को और विकसित करो। और अब जब क़िताबों के पास जाओ तो ये मान कर जाओ कि इनके माध्यम से तो नौकरी नहीं लगनी है। उनको वैसे ही पढ़ो जैसे कोई पोस्टर पढ़ता है, जैसे कोई उपन्यास पढ़ता है। किस्से-कहानी की तरह पढ़ो क़िताबों को, फिर दिक़्क़त नहीं आएगी।

प्र: आचार्य की , क्या यही कारण है कि जीवन में मौज नहीं है, आनंद नहीं है?

आचार्य: मौज तुम्हारे लिए सिर्फ़ अभी एक नाम है, एक शब्द है, जो आकर्षक लग रहा है कि मौज होगी, मौज होगी। अभी तुम इसको हटाओ कि मौज होगी, अभी तुम देखो कि बिलकुल तुम्हारे समीप ऊब कहाँ है, बोरियत कहाँ है, अविकास कहाँ है। पहला अविकास तो शरीर के ही तल पर है, उसको दूर करो।

मौज कोई मस्ती तो होती नहीं कि सड़क पर घूम रहे हैं, और उछल-कूद मचा रहे हैं। वो सब तो मौज होती नहीं। मौज तो आदमी की सहज और स्वभावगत आदत होती है। मौज को लाने जैसा कोई कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। हाँ, जो चीज़ें तुमको अर्धविकसित, या ग्रंथिग्रस्त बनाए हुए हैं, जिनकी वजह से तुम छोटे हो, सीमित हो, संकुचित हो, उन चीज़ों को दूर कर दो।

ठीक है ?

तुम्हारी हालत अभी ऐसी है जैसे किसी ने जीवन में कुछ पाया न हो, कुछ कमाया न हो, पात्रता ही न अर्जित करी हो, और उसके बाद वो एक आशा रखे, और जल्दी ही ये सिद्ध हो जाए कि वो आशा पूरी होने वाली है नहीं। पात्रता है नहीं, तो आशा वैसे भी पूरी हो नहीं सकती है। तो वो और कुंठित और निराश हो जाए।

पात्रता बढ़ाओ, आशाएँ रखना बिलकुल छोड़ दो।

नौकरी चौथे वर्ष में लगती है, तुम अभी से कहाँ सोचने बैठ गए पहले साल में, दूसरे साल में कि मेरी नौकरी यहाँ लगेगी, वहाँ लगेगी।

प्र: क्या उत्कृष्टता की आशा रखना ग़लत है?

आचार्य: उत्कृष्टता बनानी पड़ती है, आशा से थोड़े ही आ जाती है। अभी तो कह रहे हो, “कर नहीं पाता हूँ,” फिर बात कर रहे हो, “उत्कृष्टता की आशा रखनी है।” ये तुम एक सिरे से दूसरे सिरे तक कूद लगा रहे हो बस। किसी ने साठ-सत्तर प्रतिशत कुछ कर रखा हो, और फिर वो कहे, “मुझे उत्कृष्टता चाहिए नब्बे प्रतिशत वाली,” तो उसकी बात समझ में आती है। जो कह रहा हो, “मैं तो क़िताब पढ़ना शुरू ही नहीं करता,” वो बात करे उत्कृष्टता की, फिर तो ये बात ही व्यर्थ है न।

हम जो ये बातें करते हैं, इन बातें का हमारी ज़िंदगी से बहुत कम सम्बन्ध होता है। हम बस बातें करते हैं। हम ये देखते ही नहीं हैं कि हम कौन हैं और हम खड़े कहाँ पर हैं।

हमारा ऐसा होता है कि जैसे हम थार के रेगिस्तान में खड़े हैं और बातें कर रहे हैं हिमालय के जंगलों की। तुम कौन हो, तुम्हारी हालत क्या है, कहाँ खड़े हो, थोड़ा तो देख लो। तुम अभी नौकरी इत्यादि भूलो। तुम अभी अपने शारीरिक, मानसिक विकास पर ध्यान दो।

खेला–कूदा करो, शरीर पर ध्यान दो। और जितना ज़्यादा पाठ्य-पुस्तकों के अलावा भी ज्ञान इकट्ठा कर सकते हो, करो। अपने आप को बनाओ, बढ़ाओ। क़िताबों से तुम्हारा स्नेह कभी नहीं रहा, मैं पाठ्यक्रम की पुस्तकों की बात कर रहा हूँ, तो उनको तुम उपन्यास की तरह ही पढ़ डालो। पास होने लायक नम्बर तो तुम ले ही आओगे, तो पास होते चलो। लेकिन साथ-ही-साथ अपना निर्माण करते चलो।

अपने आप को बनाओ थोड़ा।

दिमाग में ज्ञान होना चाहिए। अर्थव्यवस्थाएँ कैसे चलती हैं, दुनिया की राजनीति कैसे चल रही है, खेलों में क्या हो रहा है; किस देश में किस तरह की व्यवस्थाएँ चलतीं हैं, तमाम धर्म हैं ये सब क्या कहते हैं; देशों का, जातियों का, समुदायों का इतिहास क्या रहा है; विज्ञान में, तकनीक में नया क्या हो रहा है – ये सब ज्ञान रखो। इससे मन ज़रा तीव्र होता है। और दूसरी बात – अपने शरीर पर ध्यान दो। क़िताबें तुमसे नहीं पढ़ीं जातीं, तो तुम उनको ऐसे ही पढ़ लो, किस्सा है, कहानी है।

और बहुत ज़्यादा उन चीज़ों में गहराई मत देखो जहाँ गहराई है ही नहीं। कुछ मामले इतने गहरे नहीं होते कि उनका गहरा इलाज करना पड़े। माथे पर अगर मुहाँसा निकल आएगा, तो ब्रेन सर्जरी थोड़े ही कर देंगे। गड़बड़ हो जाएगी न? तुम्हारी समस्या इतनी गहन-गंभीर है ही नहीं जिसका कोई गंभीर इलाज हो। सीधी-सी बात है। कॉलेज में हो, इस समय का पूरा -पूरा सदुपयोग करो।

देखो अहंकार छोटा है, तो उसे सदा किसकी तलाश है? कि अपना छोटापन दूर कर सके। तो बड़ा मज़ा आता है अपनी समस्याओं को भी बड़ा बताने में, कि -"अरे साहब, तुम्हारी क्या समस्याएँ हैं, हम अपनी बताते हैं। तुम छोटे लोग, तुम्हारी छोटी समस्या, हमारी समस्याएँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं।" देखा है लोगों को कितना अद्भुत आनंद पाते हैं अपनी समस्याएँ बताने में?

"मेरी समस्याएँ पूछिए। आपका कुत्ता भाग रहा है, मेरा बेटा भाग गया। आपकी कोई समस्या है?"

"आपकी चप्पल नहीं मिल रही, मेरी बीवी नहीं मिल रही। कोई समस्या है आपकी?"

(हँसी)

बहुत छोटी-सी बात है, उसको विराट रूप मत दो। खेलो, और पढ़ो। और पाठ्यक्रम की क़िताबें उतनी ही पढ़ लो कि बस पास हो जाओ। और बहुत कुछ है दुनिया में पढ़ने लायक, उसको पढ़ो।

देखो पाठ्यक्रम की क़िताब पढ़कर तुम्हें वैसे भी कोई लाभ होना नहीं है। जैसा तुमने अभी तक पाठ्यक्रम के साथ न्याय किया है, और जैसा तुम्हारा कॉलेज है, मैं समझता हूँ बहुत ज़्यादा सिलेबस पढ़कर तुम्हारा कोई कल्याण हो जाने वाला नहीं है। तुम ले आओगे पिछत्तर-अस्सी प्रतिशत, तो क्या हो जाएगा? उससे अच्छा ये है कि तुम अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास कर लो।

छोटे-मोटे कॉलेज में तो कोई टॉपर भी होता है, तो उसे मिल क्या जाता है? तो क़िताबें रट-रटकर अपने डिपार्टमेंट के अग्रणी भी हो गए, नम्बर एक, टॉपर भी हो गए, तो करोगे क्या? डिग्री लटकाए घूमोगे। लेकिन पास होना, ये न हो कि स्मृति पर एक धब्बा लगा लिया कि पढ़ने गए थे और वहाँ से निकाले गए, क्योंकि फेल हो गए। आमतौर पर जो साधारण इंजीनियरिंग कॉलेज होते हैं, वहाँ कोई भी उत्कृष्ट नहीं होता। वहाँ सब ऐसे ही होते हैं – घुसते हैं, निकलते हैं। आते समय इतनी उम्र थी, जाते समय उससे चार साल ज़्यादा हो गई। कई बार पाँच या छः साल ज़्यादा होती है।

तो तुम किस बड़े अभियान में लग गए हो कि – "मैं कॉलेज में हूँ, लेकिन पढ़ नहीं पा रहा"? न तुमने कभी पढ़ाई की, न तुम्हारे पूरे डिपार्टमेंट में किसी ने पढ़ाई की, न उस कॉलेज में कोई पढ़ता है। तुम ये क्या विकराल समस्या लेकर आ गए हो कि पढ़ा नहीं जा रहा। छोटे कॉलेजों में ज़्यादा पढ़ना शुरू कर देते हैं लड़के, वो ख़तरा बन जाते हैं। शिक्षक को बड़ी असुविधा हो जाती है। वो पढ़ाने आए हैं, और उन्होंने ऊटपटाँग सवाल पूछ दिए। वो निकाल और दिए जाते हैं।

(हँसी)

मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि तुम अग्रणी हो जाओ पढ़ाई-लिखाई में। छोड़ो। वो वैसे भी तुमने कभी किया नहीं, न उसका तुम्हारा मन है। पास होने लायक कर लो, जब कॉलेज में घुसे ही हो। और कोई महत क्रांति तुमसे हो नहीं रही है। तुम बस एक डिग्री ले लो हाथ में, और इस समय का सदुपयोग कर लो।

कोई बहुत भारी लक्ष्य पा जाओ जीवन में तो मेरे पास आना, फिर मैं कहूँगा,"छोड़ो कॉलेज, आज़ादी की लड़ाई है, तुम भी क्रांति का झंडा फ़हराओ।" पर न कोई महत लक्ष्य है, न आज़ादी की लड़ाई है, न कोई महाक्रांति यहाँ हो रही है। कॉलेज है, कॉलेज की कैन्टीन के समोसे हैं, और यही ज़िंदगी है। इसमें मैं कौन-सा तुमसे कहूँ कि रणभेरी बजाओ और शंख फूँको। पास हो जाओ, यही बड़ी बात है।

वज़न कितना है तुम्हारा बेटा?

प्र: साठ किलो।

आचार्य: अगली बार आना तो पैंसठ किलो करके आना। मूँछें ज़रा घनी करके आना, और बाज़ू ज़रा और मोटे करके आना। बाकी सब अभी छोड़ो। वो ज़्यादा बड़ा सवाल है।

....

(बेंगलुरु, 2018)

इंजीनियरिंग की पढ़ाई, और मन में दुविधाएँ

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, मैं इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ रहा हूँ। पढ़ने में अच्छा हूँ, अंक अच्छे आते हैं, पर पढ़ने में मन नहीं लगता क्योंकि पता ही नहीं है कि क्यों पढ़ रहा हूँ। अपने बारे में कुछ भी नहीं जानता, और दुनिया के बारे में जानने को मुझे कहा जा रहा है। समझ ही नहीं पाता कि क्या कर रहा हूँ और क्यों कर रहा हूँ।

कृपया मदद करें।

आचार्य: नहीं, ठीक कर रहे हो। दुनिया के बारे में अगर जान गए तो अपने बारे में बहुत दूर तक जान गए तुम। अविद्या का बहुत महत्त्व है। जिसको आप इंजीनियरिंग या व्यावसायिक शिक्षा कहते हैं, ये सब ‘अविद्या’ की श्रेणी में आती हैं। वास्तव में हमारे शिक्षण संस्थानों में जो भी पढ़ाया जा रहा है तो अधिकाँशतः अविद्या ही है। और उसका ख़ूब महत्त्व है। वो बेकार की चीज़ नहीं है।

अगर तुम ये जान लो कि तुम्हारे कार का इंजन कैसे काम करता है, तो तुम्हें मदद मिलेगी ये जान लेने में कि तुम्हारे दिमाग का इंजन कैसे काम करता है। दोनों में बहुत समानताएँ हैं। दोनों ख़ूब ईंधन पीते हैं, दोनों गर्म होते हैं, धुआँ मारते हैं; प्रक्रियाएँ भी दोनों की बहुत दूर-दूर की नहीं हैं।

इसी तरीक़े से, अगर तुम मेडिकल के छात्र हो, और तुम समझ ही लो कि मस्तिष्क कैसे काम करता है, कि पूरा जो ये स्नायु तंत्र है, और ये पूरी जो आंतरिक प्रणाली है, ये कैसे काम करती है, तो अपने बारे में बहुत सारे जो भ्रम हैं उनसे मुक्ति पा जाओगे।

इसी तरीक़े से चाहे गणित हो, चाहे समाज समाजशास्त्र हो, चाहे मनोविज्ञान हो, ये सब तुम्हें तुम्हारे बारे में बहुत कुछ बता रहे हैं। कोई ये न कहे कि – “मैं विश्वविद्यालय में पढ़ता हूँ जहाँ बाहर-बाहर शिक्षा दी जा रही है, मुझे मेरे बारे में तो कुछ बताया ही नहीं जा रहा है।” नहीं, वो अविद्या भी उपयोगी है, काफ़ी उपयोगी है। काफ़ी उपयोगी है, काफ़ी नहीं है। आवश्यक है, पूर्ण नहीं है। पूर्ण उसे करता है अध्यात्म।

अंतर समझ रहे हो?

तो उपनिषद् तुम्हें बताते हैं कि – “विद्या बहुत आवश्यक है, अविद्या भी बहुत आवश्यक है। जो विद्या की उपेक्षा करके अविद्या में पड़े रहते हैं, वो अंधे कुएँ में गिरते हैं।” और उपनिषद् उसके बाद चुटकी लेते हुए बोलते हैं, “जो

लोग अविद्या की उपेक्षा करके विद्या भर में पड़े रहते हैं, वो और गहरे कुएँ में गिरते हैं।"

फिर आगे मर्म की बात बताते हैं। कहते हैं, "जो संसार को अमरतापूर्वक जीना चाहते हों, उन्हें अविद्या और विद्या दोनों आनी चाहिए। विद्या और अविद्या दोनों में प्रवेश होना चाहिए।" तो अभी जो तुम कर रहे हो वो अविद्या है। वो तुम्हें आनी चाहिए। मैंने कहा कि वो काफ़ी ज़रूरी है, काफ़ी नहीं है। अविद्या के साथ-साथ चाहिए हमें अध्यात्म।

स्कूलों में पढ़ाई, कॉलेजों में पढ़ाई, इनमें जो हो रहा है वो ठीक हो रहा है। ठीक है, पर अधूरा है। उसको पूरा कौन करेगा? अध्यात्म। आध्यात्मिक शिक्षा की कमी है। लेकिन इसका ये अर्थ नहीं है कि तुम स्कूल और कॉलेज की शिक्षा छोड़कर अध्यात्म में आ जाओ। वहाँ पर जो बताया जा रहा है, वो भी जानना ज़रूरी है।

अध्यात्म कॉलेजी शिक्षा के बिना अधूरा है, और कॉलेज का पाठ्यक्रम अध्यात्म के बिना अधूरा है।

दोनों चाहिए।

प्र: आचार्य जी, हर क़दम पर इतने लोग समझाने के लिए तैयार हो जाते हैं कि समझ ही नहीं आता किसकी सुनूँ। और अगर इनको नज़रअंदाज़ करें तो अपने अंदर बहुत सारी आवाज़ें आने लगती हैं कि क्यों इनको नज़रअंदाज़ कर रहे हैं। फिर ग्लानि उठती है, डर उठता है। और यूट्यूब खोलें तो वहाँ भी भरमार है वक्ताओं की जो हमें समझा ही रहे हैं कि हमें क्या करना चाहिए। आपमें मेरी श्रद्धा बन पाई है पिछले छः महीनों में।

मैं आपसे ये जानना चाहता हूँ कि – अपने दिल की सुनूँ जो कभी-कभार ही कुछ कहता है, या सब की सुनूँ?

आचार्य: देखो, अंततः मालिक तुम हो। सुनोगे किसी की भी, मालकियत फिर भी तुम्हारी ही रहेगी। सुनने का निर्णय भी तुम्हें ही करना है, पालन करने का निर्णय भी तुम्हें ही करना है। हाँ सुनने में किन बातों का ध्यान रखा जा सकता है, वो मैं तुम्हें बता सकता हूँ; सुनने में, चुनने में।

पहली बात – जो कोई बोल रहा है, उसका थोड़ा अतीत-इतिहास देख लो। उसने ख़ुद क्या पाया है, क्या गँवाया है, ये देख लो।

दूसरी बात – उसका तुम्हारे ऊपर प्रभाव क्या हो रहा है ये बात साफ़-साफ़ देख लो। वो तुम्हें ऐसे विकल्प सुझा रहा है जो तुम्हें आराम दे देंगे, सुख दे देंगे, निश्चिन्त कर देंगे, या कुछ ऐसा बता रहा है जो तुमको श्रम और मेहनत करने पर मजबूर कर देगा।

चित्त आमतौर पर किसी का भी हो, ऐसा विकल्प तलाशता है जिसमें श्रम और ऊर्जा का व्यय कम-से-कम हो। श्रम का, ऊर्जा का, धन का, समय का व्यय कम-से-कम हो। और ये बात सबको पता है – तुम्हें भी पता है, मुझे भी पता है, दुनिया के सभी वक्ताओं को पता है। तो ऐसा विकल्प बताना हमेशा सुविधाजनक रहता है जो आरामदायक और आसान लगे। ऐसों से बचना जो तुम्हें आसान रास्ते दिखाते हैं। क्योंकि ये तो हमारी कमज़ोरी है ही कि हम आसान रास्तों के ही लालच में रहते हैं।

और ये भी हम अच्छी तरह से जानते हैं कि कोई हमें कठिन रास्ता बताता है तो उससे हमें थोड़ी कोफ़्त होती है। और ये बात कठिन रास्ता बताने वाला भी जानता है कि अगर वो कठिन रास्ता बताएगा तो सुनने वाले को तकलीफ़ होगी। हो सकता है सुनने वाला सुनना बंद कर दे और उठ के चला जाए। तुम मुझसे पूछोगे तो मैं कहूँगा कि जहाँ आसानी दिख रही हो, उससे तो बचना ही।

धीरे-धीरे अगर तुम बोलने वाले के प्रभाव से ज़्यादा अपने अंदर होने वाले बदलाव को महत्त्व दोगे, तो तुम्हें साफ़ दिख जाएगा कि विवेक दिखाकर क्या चुनना है और क्या ठुकराना है।

प्रभावशाली को मत सुनो, चाहे वो कोई भी हो।

उसकी तरफ़ जाओ जो तुम्हारे जीवन में सार्थक, सुन्दर बदलाव वास्तव में ला रहा हो।

वादा ही भर न कर रहा हो, वास्तव में ला रहा हो।

काम बन जाएगा।

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2019)

कॉलेजी शिक्षा ज़्यादा ज़रूरी, कि आध्यात्मिक शिक्षा?

प्रश्नकर्ता: आचार्य जी, प्रणाम! मैंने स्कूल और कॉलेज जाकर शिक्षा प्राप्त नहीं की है, लेकिन कम उम्र से ही साहित्य और शास्त्रों के संपर्क में रहा हूँ। उपनिषद् इत्यादि पढ़ने का सौभाग्य रहा है। हमेशा से ही मन में बात रहती है कि औरों की तरह स्कूल-कॉलेज नहीं जा पाया, और इसी कारण थोड़ा परेशान भी रहता हूँ।

आपसे जानना चाहता हूँ कि औपचारिक शिक्षा का अभाव क्या मेरे जीवन में मुक्ति पाने में बाधा बन सकता है?

आचार्य प्रशांत: हाँ भी और नहीं भी। जिसको तुम औपचारिक शिक्षा कहते हो, वर्तमान समय में वो ज़्यादातर रोटी और रोज़गार सम्बन्धित ज्ञान है। उसकी पूरी दिशा ही यही है कि तुम किसी तरह से दुनिया में गुज़र-बसर करने लायक बन जाओ। उसका उद्देश्य वैसे भी तुमको मुक्ति दिलाना तो है ही नहीं।

ज़रा बताना मुझे कि – बी.ए. एल.एल.बी. में मुक्ति के कितने कोर्स होते हैं? बी.एस.सी. में, बी.टेक. में, बी.बी.ए में? सब यहाँ बैठे हैं, यहाँ ग्रेजुएट (स्नातक) भी हैं, पोस्ट-ग्रेजुएट (स्नातकोत्तर) भी हैं, उससे आगे के भी लोग बैठे हुए हैं। बताईएगा, औपचारिक शिक्षा जिन्होंने ली हुई है – मुक्ति वाले कितने कोर्स थे आपके पाठ्यक्रम में?

औपचारिक शिक्षा का उद्देश्य वैसे भी नहीं है तुमको अहम् से मुक्ति दिलाना, आधिदैविक दुखों से मुक्ति दिलाना। औपचारिक शिक्षा है क्या, ये तुम साफ़-साफ़ समझो। वो तुमको दुनियादारी बताती है। वो व्यर्थ नहीं है। उसका भी अपना एक प्रयोजन है।

वो तुमको दुनिया के बारे में बता देगी। वो बता देगी कि दुनिया के नियम-कानून क्या हैं, वो तुमको विज्ञान के नियम बता देगी। वो तुमको तकनीक सिखा देगी, तुम मैकेनिकल इंजीनियर बन जाओगे। वो तुमको समाज शास्त्र बता देगी, राजनीति शास्त्र समझा देगी, तुम जान जाओगे कि ऐसे-ऐसे होता है। वो तुमको इतिहास पढ़ा देगी। मानव-शरीर के बारे में बता देगी, तुम डॉक्टर बन जाओगे। इन सब में मुक्ति वैसे भी न निहित है, न नियत है। चाहा ही नहीं जा रहा कि ये सब करके छात्र को मुक्ति दी जाए। जो चाहा जा रहा है, वो ठीक है। मुझे उससे कोई आपत्ति नहीं।

दुनिया को चिकित्सक चाहिए, दुनिया को भूगोल-विद चाहिए। दुनिया को वैज्ञानिक चाहिए, दुनिया को गणितज्ञ चाहिए। दुनिया को दार्शनिक चाहिए। ये सब हमारे विद्यालयों, विश्वविद्यालयों से पैदा होते हैं। होते हैं न? तो ये ठीक है। पर मैंने आरम्भ में ही क्या कहा, जब तुमने पूछा, "औपचारिक शिक्षा नहीं है, तो क्या मुक्ति में बाधा पड़ेगी?" मैंने कहा, "हाँ भी, और नहीं भी।" नहीं क्यों कहा, वो मैंने समझा दिया।

औपचारिक शिक्षा जब मुक्ति की दिशा में रचित ही नहीं है, उद्देश्य ही नहीं रखती, तो उसके होने, न होने से मुक्ति पर क्या प्रभाव पड़ना? लेकिन फिर भी प्रभाव पड़ना है। प्रभाव ऐसे पड़ना है कि – अगर तुम को दुनियादारी का ही कुछ पता नहीं, तो तुम दुनियादारी से आज़ाद कैसे हो जाओगे?

मान लो कि तुम बिलकुल ही पढ़े-लिखे नहीं हो, तुम्हें ये ही नहीं पता कि पदार्थ क्या है, तुम्हें ये ही नहीं पता कि देह क्या है, तुम ये ही नहीं पता कि गाड़ी का इंजन कैसे काम करता है। तुम्हें ये ही नहीं पता कि तुम्हारे हाथ में जो फोन है, वो बला क्या है। तुम कुछ नहीं जानते, क्योंकि तुमने पढ़ाई बिलकुल ही नहीं की है। तो नतीजा ये निकलेगा कि

विश्व ही तुम्हारे लिए अज्ञात रहेगा। और जब विश्व अज्ञात रहता है तो एक बड़ी सामान्य भूल है जो हो जाती है।

जानते हो क्या?

सत्य अज्ञेय है। अज्ञेय भी अज्ञात तो होता ही है। अज्ञेय – जो जाना नहीं जा सकता। जो जाना नहीं जा सकता, वो जाना गया भी नहीं है। तो अज्ञात भी है। जब पढ़े-लिखे न होने के कारण विश्व ही तुम्हारे लिए अज्ञात हो जाता है, तो कई बार तुम सांसारिक चीज़ों को ही पराभौतिक समझ लेते हो। तुमको ऐसा लगता है कि संसार में ही ऐसा बहुत कुछ है जो सत्य की ओर इशारा कर रहा है।

साँप का उदाहरण ले लो।

अब अगर तुम पढ़े-लिखे नहीं हो, या तुम ऐसी संगत में पड़ गए हो जहाँ तुम्हारा गुरु पढ़ा-लिखा नहीं है, तो वो साँप को लेकर बड़ी पराभौतिक कहानियाँ सुना देगा। कहेगा, "बड़ा रहस्यमयी जीव है साँप। जाने कहाँ से आता है, जाने कहाँ को जाता है। कोई नहीं जानता इसका जन्म कैसे हुआ, कोई नहीं जानता इसकी मृत्यु कैसे होती है। कोई नहीं जानता बीन बजने पर ये नाचता कैसे है, कोई नहीं जानता ये नागपञ्चमी पर दूध कैसे पी जाता है। कोई नहीं जानता कि इसके कान कितने हैं? कोई नहीं जानता कि देखता ज़्यादा है या सूँघता ज़्यादा है?"

जब कोई कुछ नहीं जानता, तो बात ज़ाहिर-सी है कि तुम्हें रहस्यमयी लगेगी। सबसे बड़ा रहस्य क्या है? सत्य स्वयं। तो नतीजा ये होगा कि तुम साँप को भी किससे जोड़कर देखने लगोगे?

प्र: सत्य से।

आचार्य: जो तुमको पता नहीं है, अक्सर वही तुम्हारे लिए ज़रा सत्य से सम्बन्धित हो जाता है। अब यही तुम ज़रा पढ़े-लिखे होते तो तुम्हें पता होता कि साँप वैसा ही है जैसे घर की छिपकली। तुम घर की छिपकली को कहते हो क्या,"अरे, मिस्टिकल, मिस्टीरियस (रहस्मयी)।" फिर तुम जान जाते कि साँप वैसा ही है जैसे तुम्हारे बाग़ में

गिरगिट घूमता है।

पुराना आदमी दुनिया के ही बारे में कुछ नहीं जानता था। नतीजा क्या निकला था? नतीजा ये निकला था कि जो पहले देवता थे, जिनकी मनुष्य ने उपासना की, किसी भी संस्कृति में, भारत में, चाहे ईजिप्ट (मिस्र) में, चाहे ग्रीस (यूनान) में, वो सब प्राकृतिक शक्तियाँ थीं, या ग्रह-उपग्रह थे। अब चूँकि तुम पढ़े-लिखे नहीं हो, उस समय ज्ञान था ही नहीं, तो तुम पढ़ोगे-लिखोगे कैसे? अब पढ़े-लिखे नहीं हो, तो तुमको यही लग रहा है कि 'अग्नि' देवता है। क्यों? क्योंकि तुम जानते ही नहीं कि 'अग्नि 'चीज़ क्या है। न प्रयोगशाला है, न शोध है, न विज्ञान, न ज्ञान। तो तुम्हें लग रहा है कि 'अग्नि' ही कोई देवता है।

आज तुम्हारे पास रसायन शास्त्र में पीरिऑडिक टेबल है जो तुम्हें बताता है कि सौ से ज़्यादा तत्त्व हैं, एलिमेंट हैं। पर तब कोई तरीक़ा नहीं था कि तुम जान पाओ कि ये जो हवा है, ये कोई एक तत्त्व नहीं है, ये कोई एक एलिमेंट नहीं है, इसमें कम-से-कम पचास एलिमेंट बैठे हुए हैं। तब कोई तरीक़ा ही नहीं था जानने का। तो कह दिया,"पाँच ही भूत होते हैं, जिसमें एक भूत है 'वायु'।" अब आज के किसी वैज्ञानिक से पूछो, तो वो कहेगा, "वायु एक भूत नहीं है।" वायु में दस भूत हैं कम-से-कम – ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन, हाइड्रोजन। और अगर ट्रेस एलिमेंट्स की बात करो, थोड़ा-थोड़ा-थोड़ा, तो पचास और तत्त्व मौजूद हैं वायु में।

पर तब नहीं पता था। तब वायु को ही मान लिया कि वायु एक तत्त्व है। वायु एक तत्त्व थोड़े ही है। और वायु भी जगह-जगह की अलग-अलग होती है। तब थोड़े ही वायु भी अपना रूप-रंग-गुण बदल देता है जगह के अनुसार। शहर की वायु एक होती है, गाँव की दूसरी होती है। ध्रुवों के पास जो देश हैं, वहाँ चले जाओ, स्वीडन चले जाओ, रूस चले जाओ, वहाँ की वायु एक होगी। और अफ्रीका के जो गर्म देश हैं, वहाँ चले जाओ, वहाँ की वायु भी दूसरी है।

लेकिन जब आदमी को दुनिया का ज्ञान नहीं होता, तो एक दिक़्क़त तो ये आती है कि भौतिक रूप से कमाने-खाने में, निर्वाह करने में दिक़्क़त पड़ती है। क्योंकि आप जानते ही नहीं, तो आप प्राकृतिक शक्तियों के फिर रहम-ओ-करम पर आ जाते हो।

यूरोप में जब प्लेग फैला, जो ब्लैक प्लेग हुआ था यूरोप में, तो उसने यूरोप की क़रीब-क़रीब एक तिहाई आबादी

साफ़ कर दी थी। क्यों? क्योंकि किसी को पता ही नहीं था कि प्लेग फैलता कैसे है। उस समय के चिकित्सक कहते थे, “जो मरता है, उसकी आत्मा निकलती है, और आत्मा में प्लेग की जीवाणु होते हैं। और ये जो आत्मा निकलती है, वो जिस-जिस को छूती हुई जाती है, उसको प्लेग हो जाता है।” ये हाल चिकित्सकों का था।

तो दुनियादारी को तुम जब नहीं जानते, तो तुम ऐसे काम करते हो। फिर ज़ाहिर-सी बात है कि उस प्लेग को हटाने के लिए क्या किया गया? उस प्लेग को हटाने के लिए इस तरह की आत्माओं कि उपासना की जा रही है। कोई ताज्जुब नहीं कि यूरोप आधा साफ़ हो गया। एंटीबायोटिक्स का तो किसी को कुछ पता नहीं, पेनिसिलिन तब आई नहीं थी। कोई शोध की नहीं हुआ था।

जब तुमको दुनिया का पता नहीं होगा तो तुम दुनिया में ही मूर्ख बनते रह जाओगे। यही सोचते रह जाओगे कि भीतर से आत्मा निकलती है प्लेग के जीवाणु लेकर, और जिसको स्पर्श करती है, उसको प्लेग हो जाता है। कोई समझ ही नहीं पाया कि कहाँ से आया, कैसे हो जाता है। चलते-चलते लोग गिरते रहे, कुछ पता ही न चले।

तो दुनिया का इसीलिए पता होना चाहिए ताकि तुम दुनिया को दुनिया जानो, दुनिया में तुम कहीं सत्य या ब्रह्म को न खोजने लग जाओ।

ये ख़ूब चलता है – जिन्हें दुनिया का ही नहीं पता होता, वो दुनिया को ही लेकर ऐसे विस्मित और भौचक्के हो जाते हैं, कि दुनिया में जब वो कोई आश्चर्जनक चीज़ होती हुई देखते हैं, उन्हें लगता है कि भगवान आ गए, भगवान आ गए।

अरे भगवान् नहीं आ गए।

साँप को देखा तो कहने लग गए, “भगवान आ गए, कोई तिलिस्मी बात है। कोई रहस्यमयी बात है।” साँप है भाई, जीव है, जन्तु है, कीड़ा है। पर पढ़े-लिखे नहीं हैं, तो साँप-साँप, इधर-उधर की बात। चद्रग्रहण देखा तो कहने लगे, “अरे, वो राहु-केतु आ गए हैं। वो लिए जा रहे हैं, सूर्य को डालेंगे दाईं जेब में, चन्द्रमा को डालेंगे बाईं जेब में। ग्रहण लगा है, बाहर मत निकलना।” तुम जानते ही नहीं हो कि ग्रहण चीज़ क्या होती है, तो ग्रहण तुम्हारे लिए बहुत बड़ी बात हो गई। अब तुम कौन से सत्य की उपासना करोगे जब तुम्हारे लिए सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण ही इतनी बड़ी बात

हो गए? तुम तो कह दोगे, “हमें ईश्वर मिल गया। जो चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का कारक है, उसी का नाम ईश्वर है।”

दुनिया की समझ इसीलिए होनी चाहिए ताकि तुम दुनिया में ही फँसकर न रह जाओ। ज्ञान आज़ादी देता है। दुनिया का तुम्हें ज्ञान होगा, दुनिया से आज़ादी मिलेगी। नहीं तो तुम्हें दुनिया में ही ऐसे-ऐसे अजूबे नज़र आएँगे, कि सत्य की तुम्हारी साधना वहीं रुक जाएगी।

जो लोग दुनिया को नहीं समझते, जानते हो कि धर्म के तल पर भी वो कैसे-कैसे मात खाते हैं? किस्सा कहा जाता, मैं जानता नहीं, मैं तो उस समय था नहीं। किस्सा कहा जाता कि ईसाई मिशनरी जब हिन्दुस्तान आए, तो जो बेचारे अनपढ़-ग़रीब लोग थे, ख़ासतौर पर कबिलियाई, उनको प्रभावित करने के लिए वो उनको कई बातें बोलते। वो बातें उन लोगों की समझ में न आतीं, तो फिर वो तरह-तरह के चमत्कार दिखाते।

ईसाई मिशनरी गाँव में जीप लेकर जाते। फिर वो कबीले वालों से कहते, “अपने देवता का नाम लो,” वो लेते। फिर पूछते, “कुछ हुआ?” वहाँ कुछ नहीं होता। फिर वो कहते, “अब यीशु मसीह का नाम लो।” कबीले वाले जब यीशु मसीह का नाम लेते तो ईसाई मिशनरी पीछे से जीप का हॉर्न बजा देते। फिर वो कहते, “देखो तुम्हारे देवता का नाम लेने पर कोई आवाज़ नहीं आई। और यीशु मसीह का नाम लेने पर ऊपर से आवाज़ आई।” कबीले वाले ये सुनकर चकित हो जाते, और फिर मिशनरी उन सबको अपने पीछे-पीछे चर्च ले जाते।

तो जो दुनिया को नहीं समझता वो धर्म के तल पर भी मात खाता है, उसको धार्मिक आधार पर भी बेवक़ूफ़ बना दिया जाता है। अब मुक्ति कैसे मिलेगी? तो दुनिया को समझना इसलिए ज़रूरी है।

लेकिन मैं ये भी कह रहा हूँ कि ज़रूरी नहीं है कि औपचारिक शिक्षा से ही दुनिया को समझो। ये सब जो हमारे स्कूलों-कॉलेजों-विश्वविद्यालयों से उत्पादित होकर निकल रहे हैं छात्रजन, ये दुनिया को क्या ख़ाक समझते हैं? दुनिया को समझने का बराबर का, बल्कि श्रेष्ठतर तरीका है कि तुम स्वाध्याय करो। ख़ूब पढ़ो-ख़ूब पढ़ो। आज इंटरनेट पर सब उपलब्ध है। पहले इनसाइक्लोपीडिया के लिए तुम्हें जाना पड़ता था, किसी लाइब्रेरी में, आज विकिपीडिया है, और गूगल है।

ये मोबाइल फोन है तुम्हारे हाथ में, जिसके माध्यम से तुमने सवाल भेजा था, वही मोबाइल फोन तुम्हारी मुक्ति का भी साधन बन सकता है। इस्तेमाल करना सीखो। उस मोबाइल फोन पर चाहो तो अश्लील सामग्री देखते रहो, या ज्ञान बढ़ाओ, गूगल करो, तमाम तरह के ऑनलाइन कोर्स कर सकते हो। विकिपीडिया तो है ही। उसी मोबाइल फोन का इस्तेमाल तुम अपनी मुक्ति के लिए कर सकते हो। पर दुनिया को जानो ज़रूर। औपचारिक शिक्षा दुनिया के बारे में तुम्हें कुछ बताती है। जितना बताती है, उतना पर्याप्त भी नहीं है। तुम औपचारिक शिक्षा से ज़्यादा जानो।

बहुत सारे घूम रहे हैं एम.एस सी. करके, और उनका चित्त नितांत अवैज्ञानिक है। कहने को उन्होंने स्नातक ही नहीं, स्नातकोत्तर शिक्षा ले रखी है विज्ञान में, पर बातें उनकी पूरी तरह अवैज्ञानिक हैं। चित्त वैज्ञानिक होना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मतलब होता है कि – "सामने जो कुछ भी है मैं उसके बारे में धारणा नहीं रखूँगा। मैं जाँचूँगा, परखूँगा, प्रयोग करूँगा, पता करूँगा।" ये काम होता है वैज्ञानिक का। वैज्ञानिक कहता है, "मैं कुछ नहीं जानता, प्रयोग से जो सिद्ध होगा मैं वही जानता हूँ बस। अन्यथा मैं कुछ नहीं जानता।"

बस दिक़्क़त ये होती है कि वैज्ञानिक ऐसी बात दुनिया के बारे में बोलता है, पदार्थ के बारे में बोलता है, अपने बारे में नहीं बोलता। पर फिर भी आध्यात्मिक साधक के लिए भी, कम-से-कम संसार के परिपेक्ष में वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना बहुत ज़रूरी होता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ज़रूरी नहीं है कि एम.एस सी. करने से आए। एम.एस सी. करने से आता भी नहीं है। एक-से-एक अंधविश्वासी घूम रहे हैं, बी.टेक., एम.टेक., बी.एस.सी. करे हुए, इधर-उधर के टोने-टोटके भी कर लेते हैं, जादू-पाखण्ड भी कर लेते हैं। उनसे पूछो, "शिक्षा क्या ली है?" तो कहेंगे, "विज्ञान में ली है।" विज्ञान में शिक्षा ली है तो हरक़त क्या कर रहे हो। वो मुहुर्त निकलवाते फिरेंगे, वो ज्योतिष-पञ्चांग लेकर घूम रहे हैं।

तुम अपने भीतर सत्य को आधार बनाकर, सत्य को ही जानने की इच्छा प्रबल विकसित किए रहो। वो आग जलती रहे। और बिलकुल जानते रहो साफ़-साफ़ कि दुनिया में क्या चल रहा है।

हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जहाँ तुम्हें किसी बोर्ड का, किसी पाठ्यक्रम का, किसी विश्वविद्यालय का मोहताज होने की बिलकुल भी ज़रुरत नहीं है। अगर तुम वाकई जिज्ञासु हो, तो इंटरनेट पर ही बहुत कुछ मिल जाएगा। और विश्वविद्यालय हैं जो ऑनलाइन कोर्सेज भी देते हैं। कर लो रजिस्टर, पढ़ लो। ज्ञान कोई दो वर्ष-चार वर्ष का कोर्स थोड़े ही होता है। वो जीवन भर अनवरत चलने वाली साधना है।

बिलकुल पता होना चाहिए तुम्हें कि दुनिया में क्या चल रहा है, हर क्षेत्र में क्या चल रहा है। राजनीति में क्या चल रहा है, विज्ञान में क्या चल रहा है, खेलों में क्या चल रहा है, चिकित्सा-शास्त्र में क्या चल रहा है। सब पता हो तुम्हें। ये सब कुछ तुम्हारी मुक्ति में सहायक बनेगा। तुम अगर ये समझते हो कि श्लोक भर पढ़ने से मुक्त हो जाओगे, तो ये बेकार की बात है। श्लोक किस बारे में कहे गए हैं, किस सन्दर्भ में कहे गए हैं, तुम्हें ये ही नहीं पता चलेगा।

सारी मुक्ति बंधनों के प्रति है न, बंधनों के विरुद्ध है न। तुम्हें ये ही नहीं पता कि बंधन क्या है, तो तुम मुक्ति कहाँ से पा जाओगे? तो ज्ञान इसलिए होता है ताकि तुम्हें बंधन पता चल सकें। बंधनों का ही तो ज्ञान होता है। बंधनों का ज्ञान लिए चलो। और औपचारिक शिक्षा नहीं मिली, कोई बात नहीं। जितने अन्य तरीक़ों से तुम ज्ञान कमा सकते हो, कमाओ। बहुत तरीक़े हैं।

....

(अद्वैत बोधस्थल, 2019)

अभिभावकों की इच्छा और करियर का चुनाव

आचार्य प्रशांत: आओ बात करें। मैंने सुना है आप लोगों को बात करना पसंद है। तो आओ थोड़ा और बात करें। हम पहले मिल चुके हैं।

प्रश्नकर्ता: हाँ, सर।

आचार्य: आप में से ऐसे कितने हैं जो पिछले सेमेस्टर में मिल चुके हैं?

(वक्ता हाथ खड़ा करने का इशारा करते हैं)

(लगभग सभी हाथ उठाते हैं)

लगभग सभी, चलो ठीक है। अच्छा, तो हम पुराने मित्र हैं। हम बात कर सकते हैं।

प्र: सर, मेरा एक प्रश्न है। मेरा प्रश्न यह है कि जो करियर होता है, उसमें क्या किसी की उम्मीद को प्राथमिकता देनी चाहिये?अभिभावक की, या खुद की? जैसे अभिभावक चाहते हैं कि बच्चा आई.ए.एस. अफ़सर बने, और बच्चे का लक्ष्य है कि वो सीधे-सीधे एम.टेक. कर के प्रोफेसर बने, तो ऐसे में किसकी सोच को प्राथमिकता देनी चाहिये? अभिभावकों के पास अनुभव है इसलिए ऐसा कह रहे होंगे। या फिर बच्चा अपनी आज़ादी से, अपनी सुविधा देखते हुए चुनाव करे?

आचार्य: बढ़िया। क्या नाम है?

प्र: देवेश।

आचार्य: तो, शुरुआत ही करियर, व्यवसाय से हो गई। और उसमें तनाव भी दिखाई दे रहा है, कि चुनाव कैसे करें। तीन बातें, 'व्यवसाय', 'संघर्ष' और 'रुचि'।

कोई भी कहानी बीच से शुरू करके समझी नहीं जा सकती। किसी भी कहानी को समझना है, तो उसे पूरा देखना पड़ेगा ना। कहानी यहां से शुरू ही मत करो कि अभिभावक मुझे कोई व्यवसाय सुझा रहें हैं। कहानी उससे पहले से शुरू होती है। अभिभावक हमें कोई भी सलाह क्यों देते हैं? भले के लिये। ठीक है ना? नीयत तो यही है कि भलाई

हो? तो ज़्यादा बड़ी बात क्या है? मैं तुम्हें कोई सलाह दे रहा हूं, तो ज़्यादा बड़ी बात क्या है, ये कि तुम मेरी बात मानो या ये कि तुम्हारा भला हो? जो प्राथमिक उद्देश्य है, वो क्या है? मैं तुम्हें कोई सलाह देता हूं, और मुझे ये दिख जाए कि उससे तुम्हारा भला नहीं हो रहा, और तब भी मैं अड़ा रहूं कि तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी,तो मैं तुम्हारा दोस्त हूं या दुश्मन?

एक चिकित्सक तुम्हें दवाई दे रहा है और उसे दिख रहा है कि ये जो दवाई है, ये तुम्हें फायदा नहीं कर रही है, पर फिर भी वो अड़ा हुआ है कि तुम यही दवाई लो क्योंकि वह बहुत बड़ा चिकित्सक है, और उसके पास बीस बरस का अनुभव है। तो वो चिकित्सक तुम्हारे भले के लिये काम कर रहा है, या अपने अहंकार के लिये?

प्र (एक स्वर में): अहंकार के लिए।

आचार्य: अगर, मैं वास्तव में तुमसे प्यार करता हूं, तो मैं ये नहीं देखूंगा कि तुम मेरी सलाह पर चल रहे हो या नहीं। मैं क्या देखूंगा? कि तुम जो भी कुछ कर रहे हो, उसमें तुम्हारी भलाई है या नहीं। मैं अपनी कोई बात तुम पर लाद नहीं रहा हूं। मैं तुम्हारे सामने एक बात रख रहा हूं। ठीक है ना? उसके साथ-साथ रहना, और उसको समझने की कोशिश करना।

तुम सबकी ज़िंदगी में ऐसे लोग हैं जिनसे तुम प्यार करते हो। दोस्त यार तो हैं ही। अगर वाकई किसी से दोस्ती है, तो क्या चाहोगे? कि वो तुम्हारी ही इच्छा के अनुसार चलता रहे, या ये चाहोगे कि वो जैसा भी चले, खुश रहे? क्या चाहोगे?

प्र (एक स्वर में): वो खुश रहे।

आचार्य: तो मेरा उत्तर किधर को जा रहा है दिख ही रहा होगा? प्यार ये नहीं चाहता है कि तू मेरी इच्छा से चल। प्यार है वाकई, तो मैं कहूंगा कि तू इस काबिल हो जा कि तू अपनी ही इच्छा से चल सके।

एक छोटा-सा बच्चा है। जब वह छोटा होता है, तो एक हद तक तो उसकी देखभाल करनी पड़ती है। तुम भी अभी छोटे से बच्चे ही हो।अपने कुछ पुराने दिन तुम्हें भी याद होंगे। एक समय था जब तुम अपने कपड़े भी खुद नहीं पहन पाते थे। इंतज़ार करते थे कि माँ आएगी और पहना देगी। था या नहीं था? खाना भी नहीं खा पाते थे। था या नहीं था? जूते के फीते भी, तुम लोगों को याद होगा कि कभी माँ-बाप ने ही बांधे होंगे। हुआ है कि नहीं हुआ है? बच्चे बैठे रहते हैं कि माँ-बाप आएं, जूते के फीते बाँध दें। पर हर माँ-बाप, अगर वो अपने बच्चे से प्यार करता है, तो वो क्या चाहता है? क्या वो ये चाहता है कि ये कितना भी बड़ा हो जाए, जूते के फीते मुझसे ही बंधवाए?जल्दी बोलो।

प्र (एक स्वर में): नहीं, सर।

आचार्य: क्या वो ये चाहता है कि ये कितना भी बड़ा हो जाए, इसको खाना खाने की तमीज़ ही ना आए, ये मेरे ही हाथों खाता रहे?

ऐसा तो कोई माँ-बाप नहीं चाहता। तो माँ-बाप भी वाकई खुश किस दिन होते हैं? जिस दिन तुम...?

प्र: जिस दिन हम आत्मनिर्भर हो जाते हैं।

आचार्य: हाँ! बहुत बढ़िया बात। जिस दिन तुम इस काबिल हो जाते हो कि अपनी पांव से चल सको, अपनी आंखो से देख सको और अपने जीवन के निर्णय, अपनी समझ से ले सको, उस दिन क्या माँ-बाप को ख़ुशी नहीं मिलती?

माँ-बाप भी तो आखिर में यही चाहते हैं ना? और अगर कहीं ऐसा हो गया कि तुम जीवन-भर आश्रित ही बने रहे, तो माँ-बाप का भी दिल टूट जाना है। ये बात समझ लो। उनकी भी दिली ख्वाहिश, भले ही वो इसको प्रकट ना करते हों, भले ही वो इस बात को खुल कर कहते ना हों, यही है कि मेरा बच्चा जल्दी से ऐसा हो जाए कि उसे मेरे सहारे की ज़रुरत ही ना रहे।

पर तुमने सहारे को ही प्रेम समझ लिया है। तुम सोचते हो कि हम सहारा लिये जा रहे हैं, तभी तो प्यार है। चिड़िया का अंडा होता है,उसमें से बच्चा निकलता है। तुम लोगों के घरों में अगर कभी चिड़िया ने घोंसला बनाया होगा, तो तुमने देखा होगा। तो चिड़िया क्या करती है? चिड़िया ज़रा-ज़रा से घास के तिनके, बच्चे की चोंच के अंदर भी रख देती है। देखा है कभी? वैसे ना देखा हो, फिल्मों में तो देखा होगा। फोटो देखी होंगी। और फिर एक दिन आता है जब बच्चा उड़ने लगता है। अपने पंखों से उड़ने लगता है। बच्चा उड़े ही ना अपने पंखों से, तो चिड़िया को कैसा लगेगा? बच्चा उड़े ही ना अपने पंखों से, और कहता रहे, 'माँ, मुझे तुझसे इतना प्यार है कि मैं जीवन-भर तेरे ही घोंसले में बैठा रहूँगा', तो चिड़िया को कैसा लगेगा? जल्दी बताओ। जल्दी बताओ।

प्र (एक स्वर में): उसे दुःख होगा।

आचार्य: तो तुममें से कितने लोगों को वाकई अपने माँ-बाप से प्यार है? हाथ खड़े करो।

(सभी एक साथ हाथ उठा देते हैं)

जिन भी बच्चों को माँ-बाप से प्यार हो, उनका पहला कर्तव्य यह है कि वो आत्मनिर्भर हो जाएं, वो अपने पांव पर खड़ा होना सीखें, वो माँ-बाप पर आश्रित ना रहें। प्यार का मतलब ये मत समझ लेना कि मैं घर आऊं, तो मेरे कपड़े मम्मी धो रही है। यही होता है ना लेकिन? यही करते हो या नहीं? तुम्हारी उम्र में मैं भी यही करता था। तो कोई शर्माने की बात नहीं है। यही होता है या नहीं होता है?अब ये तो कोई ढंग की बात नहीं हुई? और ये तो फिर भी बाहरी बात है कि कपड़े कोई और धो रहा है। लेकिन अगर तुम्हारे निर्णयों में भी तुम्हें सहारा ही चाहिये, तो ये बड़ी खतरनाक स्थिति है।

माँ-बाप आपस में बात करते होंगे कि बेटा दिखने में तो इतना बड़ा हो गया है, पिता कहते होंगे कि कद तो उसका मेरे जितना ऊँचा हो गया, ऊँचाई तो उसने मेरे बराबर निकाल ली है, पर उसकी सूरत तो देखो, अभी भी छठी कक्षा के छात्र जैसा लगता है। तुम्हें क्या लगता है, उन्हें बड़ा अच्छ लगता है ये देख कर कि हमारा बच्चा अभी भी अपरिपक्व है? उन्हें भी बड़ा अच्छा लगे अगर तुम कभी कोई ढंग की बात करो। और जब तुम ढंग की बात करते होगे, तो तुमने देखा होगा कि वो कैसे खुश हो जाते होंगे। होते हैं या नहीं होते हैं? *(हंसते हुए)*' सर, हमने कभी कोई ढंग की बात की ही नहीं है, तो हमें पता ही नहीं है'।

कर के देखना। बड़ों वाली बातें, अभी कर के देखो। बड़ों वाली बात का मतलब ये नहीं है कि शराब पीना, रात भर सड़कों पर घूमना और कहना कि ये तो बड़ों वाला काम हमने कर के दिखाया। बड़े होने का मतलब है, दिमाग से बड़ा होना, समझदार होना, चीज़ों की असलियत को पहचानना। जो नकली है, उसको नकली कह पाना, और जो असली है उसको असली जान पाना – ये होता है बड़ा होना। ये सब कुछ बिना किसी सहारे के कर पाना, ये होता है बड़ा होना।

सबसे ज़्यादा ख़ुशी तुम्हारे घर वालों को तब होती है, जिस दिन तुम बड़े हो जाते हो। ये बिल्कुल मत समझना कि उन्हें बुरा लगेगा कि अब ये हमारी सलाह क्यों नहीं लेता, ये हमसे बार-बार पूछता क्यों नहीं, इसको हमारी बैसाखी की ज़रुरत अब क्यों नहीं है। ये बिल्कुल भी मत सोचना कि उन्हें बुरा लगने वाला है। माँ-बाप हैं , तुम भी किसी दिन शायद माँ-बाप बनो, तो तुम्हें पता चलेगा। बेटे का, बेटी का,भला ही चाहेंगे, पर हो सकता है व्यक्त ना कर पा रहे हों, इंसान हैं। जैसे तुम इंसान हो, वैसे वो भी इंसान हैं। हर इंसान में कमियां होती हैं। साफ़-साफ़ समझा ना पा रहे हों। खुद भी कहीं भूल कर देते हों। हर इंसान को हक़ होता है ना भूल करने का, या नहीं होता है? तुम्हें भूल करने का हक़ है, माँ-बाप को भूल करने का हक़ नहीं है? उन्हें भी हक़ है। तो हो सकता है, समझा ना पा रहे हों। पर चाहते वो यही हैं कि तुम अपने निर्णय खुद लो।

और अगर तुम ये पाओ कि वो तुमसे कहते हैं कि निर्णय हमसे पूछ कर लिया करो, तो उसकी एक ही वजह है। वजह जानना चाहते हो?अच्छा, पहले ये बताओ कि कितने लोगों ने ऐसा देखा है कि माँ-बाप स्वतंत्र निर्णय नहीं लेने देते? ऐसा कितने लोगों को लग रहा है?हाथ खड़े करो।

(मौन)

ईमानदारी से कर लो हाथ खड़े, आपस में दोस्तों की बात है। कितने लोगों को ऐसा लगता है कि निर्णय खुद लेना तो चाहता हूं, पर माँ-बाप अक्सर रोक देते हैं? हाथ खड़े करो।

(कुछ श्रोतागण हाथ उठाते हैं)

अगर वो तुम्हें रोक देते हैं, तो उसका कारण ये है कि तुमने अभी तक ये प्रदर्शित ही नहीं किया है, तुमने अभी तक इस बात का कोई प्रमाण ही नहीं दिया है कि तुम इस काबिल हो कि जब अकेले घर से निकलोगे, तो गिर नहीं पड़ोगे। देखो, उन्होंने तुम्हें बचपन से देखा है ना? और उन्होंने बचपन से यही देखा है कि इसे तो सदा हमारे सहारे की ही ज़रुरत पड़ी है।

ज़रा उनकी जगह पर जा कर बात को समझते हैं। थोड़ा उनकी नजर से देखते हैं। उन्होंने आज तक क्या देखा है? यही कि बेटे को, या बेटी को, लगातार हमारे सहारे की ही ज़रुरत पड़ी है। और उन्होंने ये भी देखा है कि जब भी कभी हमने सहारा छोड़ा है, तो इसने उल्टे-पुल्टे काम ही किये हैं। तो उनके मन में वही छवि बैठ गई है। वह छवि कारण है। क्योंकि तुमने ये प्रदर्शित भी तो नहीं किया कि अब तुम परिपक्व हो। तुमने कभी परिपक्वता का कोई काम करके दिखाया है? तुम कर के दिखाओ ना। तुम कर के दिखाओ, तो उनको भी समझ में आए। तो अगर अभी तुमको ऐसा लग रहा है कि एक तरफ मेरा मन है जो कुछ करना चाहता है, और दूसरी तरफ माँ-बाप हैं जो कुछ और मुझसे करवाना चाहते हैं, तो तुम ये पक्का समझो कि माँ-बाप तुम्हारा ही निर्णय मान लेंगे। अगर तुम ये दिखा सको कि तुममें अपने निर्णय के फलों को झेलने की काबिलियत है, तो वो तुम्हारी बात मान लेंगे।

मुक्ति बहुत अच्छी चीज है। पर जिसको भी मुक्ति चाहिए, उसके पास मुक्ति के परिणाम झेल पाने का सामर्थ्य भी तो होना चाहिये। या नहीं होनी चाहिये?

प्र (एक स्वर में): होनी चाहिए।

आचार्य: वो तुमको प्रदर्शित करना पड़ेगा कि मैं अकेले चल सकता हूं। और अकेले चलूँगा, तो संभव है की ठोकर खाऊँ,गिरूँ, पर अगर गिरूँ, तो संभाल लूँगा। और ये बात सिर्फ मुँह से कहने की नहीं है। ये तुम्हारी ज़िंदगी में दिखाई देनी चाहिये कि तुममें अब अकेले चल पाने की, चोट खा कर भी दोबारा उठ पाने की, काबिलियत आ गई है।

इतने बड़े हैं हम, कोई छोटे थोड़े ही हैं। पर वो काबिलियत दिखानी पड़ेगी। और जब दिखाओगे तो उन्हें बड़ी ख़ुशी

होगी। कहते हैं बाप उस दिन बाप बनता है, जिस दिन बेटा उसका दोस्त हो जाता है। तो बाप भी, अधूरा-सा ही अनुभव करता रहता है कि ये तो बच्चा ही है अभी। उम्र इतनी हो गई, लेकिन है अभी ये दुधमुंहा ही है । वो भी इंतजार कर रहे हैं कि कब मैं इससे दोस्ती कर सकूं। माँ भी इंतजार कर रही है कि बेटी को दोस्त कब कह सकूं। पर दोस्ती कैसे होगी? क्योंकि दोस्ती तो दो समान परिपक्वता वाले लोगों में ही होती है। एक समान स्तर की परिपक्वता।

अब वो तो हैं बहुत परिपक्व, और तुम अगर लगातार अपरिपक्व ही बने रहो, तो कभी दोस्ती हो सकती है क्या? हो पाएगी क्या? नहीं हो पाएगी। अब दोस्ती ही नहीं, तो फिर बात बनेगी नहीं ना? तो फिर क्या रहेगा? तनाव। फिर तुम उसको नाम दोगे, 'पीढ़ी का अंतर *(जैनरेशन गैप)*'। फिर तुम्हें कई बार अभिभावकों से झूठ बोलना पड़ेगा, माँ-बाप को बात-बात पर गुस्सा दिखाना पड़ेगा। ये सब होता है या नहीं होता है । फिर पाबंदियां रहेंगी। 'यहां नहीं जा सकते, इससे नहीं मिल सकते, इससे ज़्यादा पैसे तुम्हें नहीं दिये जाएंगे'।इस तरह की बातें होंगी। होती हैं या नहीं होती हैं? तुम छुट्टियों में कहीं जाना चाहते हो, उनको डर है कि तुम्हें अगर अकेला छोड़ दिया गया तो तुम पता नहीं किस नदी-नाले, पहाड़ में जा कर गिरोगे। अब ये डर उनको दिया किसने? तुम्हीं ने दिया ना? तो ये डर हटाएगा भी कौन? तुम्हीं हटाओगे ना? लेकिन उसके लिये, परिवक्वता दिखाने के लिये, परिपक्व होना पड़ेगा।

और परिपक्व आदमी का पहला लक्षण है- अकेले चल पाने से डर ना लगना। अकेले रह पाने से डरना नहीं, अकेले सोच पाने से डरना नहीं, अकेले जी पाने से डरना नहीं- यही परिपक्वता है।

इसका ये मतलब नहीं है कि वो ज़बर्दस्ती अकेला रहता है। सबके साथ रहता है, लेकिन अकेलेपन से डरता नहीं है। कोई अनिवार्यता नहीं है कि अकेले ही रहना है। सबके साथ रहना है, मज़े में रहना है, लेकिन अकेलेपन से डरना नहीं है। जो अकेलेपन से डरता नहीं है,वही सबके साथ दोस्ती का संबंध रख सकता है। जिसको अकेला होना नहीं आता, वो किसी का दोस्त नहीं हो सकता। बात आ रही है समझ में?

इस बात को लेकर तनाव में मत आया करो कि अभिभावकों को कैसे समझाएं। अभिभावक कोई दुश्मन थोड़े ही होते हैं। या दुश्मन हैं?कोई है यहाँ जिसे लगता हो कि नहीं वो तो दुश्मन ही हैं? दुश्मन तो नहीं हैं ना? कुछ और ही गड़बड़ चल रही होगी। उस गड़बड़ को ठीक कर दो, सब अनुकूल हो जाएगा।

....

(हरियाणा, 2014)

आदर्श व्यक्ति कैसा होता है?

आचार्य प्रशांत: सौरव का सवाल है कि एक अच्छे इंसान का मूल तत्व क्या होना चाहिए?

सौरव, मूल तत्व तो अदृश्य है। इस सार को, मूल तत्व को न देखा जा सकता है, न बताया जा सकता है। लेकिन जो सवाल तुम पूछ रहे हो, ये हमेशा ही लोगों ने पूछा है और हमेशा ही लोग पूछते भी रहेंगे कि "आदर्श व्यक्ति कौन है? जीवन जीने का आदर्श तरीका क्या है?"

नतीजा क्या होगा जब तुम ये सवाल पूछोगे? नतीजा ये होगा कि मूल तत्व तुम्हें नहीं बताया जा पायेगा, हाँ, तुम्हें आचरण बता दिया जायेगा और तुम उस आचरण को पकड़ कर रख लोगे। देखो तुमने ख़ुद भी कहा कि 'एक अच्छा इंसान' और उसमें तुमने पहले ही दो-तीन व्यवसाय जोड़ दिये, तुमने कहा, 'कलाकार', 'चित्रकार'।

अब होगा क्या कि तुमने पहले तो मन में एक धारणा बना ली कि एक चित्रकार है, कलाकार है, एक लेख़क है या एक वैज्ञानिक है, कुछ भी, तुमने कह दिया कि ये एक अच्छा आदमी होता होगा। तुमने मन में एक छवि बना ली कि इस प्रकार के लोग अच्छे होते हैं। वो छवि तुमने निश्चित रूप से कहीं-ना-कहीं से या किसी से सुन ली होगी पर तुमने बना ज़रूर ली है। अब तुम क्या करोगे?

जो उसका अंतस है, जिसको तुमने एसेंस कहा, अंतस, उसको तो तुम कभी जान नहीं सकते क्योंकि वो तुम्हारी आँखों से देखा नहीं जा सकता और तुम्हारे कानों से सुना नहीं जा सकता। तो तुम करोगे क्या? तुम ये करोगे कि तुम

उसके आचरण की नक़ल करने की कोशिश करोगे। और दुनिया ने हमेशा नक़ल ही तो की है कि जो आदर्श व्यक्ति है, उसके आचरण की नक़ल करनी शुरू कर दी। वो व्यक्ति ख़ुद भी नहीं जानता कि वो आदर्श व्यक्ति है, पर दुनिया ने उसकी नक़ल करनी शुरू कर दी। तो दुनिया में सब सिर्फ़ नकलची बने हुए हैं, जो किसकी नक़ल कर रहें हैं? आचरण की। क्योंकि अंतस को तो तुम जान नहीं सकते न, आचरण की नक़ल करना शुरू कर देते हो। तुम सोचते हो कि उसके जैसे कपड़े पहन लें, वैसी ही बातें करनी शुरू कर दें, उसके शब्दों को दोहरा दें, वैसे ही चलने लगें, वो जैसे खाता था वैसे खायें, वो दाड़ी रखता था, तो हम भी रखें, अब नक़ल हो जाएगी।

तो पहली बात सवाल ऐसे सवाल मत पूछो कि एक आदर्श आदमी का अंतस कैसा होता है, क्योंकि तुम आदर्श को अभी जानते नहीं। सच तो ये है कि आदर्श कह कर तुमने यही दिखाया है कि तुम किसी की नक़ल करना चाहते हो, क्योंकि आदर्श कुछ होता ही नहीं। सवाल ये मत पूछो कि वो कैसा है हम कैसे जानें। मैं सवाल बदल रहा हूँ। सवाल है– हम कैसे हैं, हम कैसे जानें? उसको जानने के चक्कर में पड़ोगे तो सिर्फ़ उसकी नक़ल करोगे। उसको जानने के फेर में पड़ोगे तो सिर्फ़ उसके आचरण को दोहराने की कोशिश करोगे, नक़ल करोगे और उससे तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।

सवाल है, ‘हम कैसे हैं, ख़ुद को जानें?’ और उसमें कोई दिक्कत नहीं है। सुबह से ले कर के शाम तक जो करते हो उसी को ध्यान से देखो, रोज़ की जो तुम्हारी ज़िन्दगी है, उसी को ध्यान से देखो। देखो कि अगर कहीं प्रतीक्षा करते हो तो क्या बाहर खड़े हो कर शोर मचाते हो ? और अगर मचाते हो तो इसका अर्थ क्या है? मन कैसा है? भुलाओ मत जल्दी से, ध्यान दो, निग़ाह रखो उस पर। होश कायम रहे कि ये जो मैंने किया, ये किया क्या?

पढ़ते किस वजह से हो कि किताब से प्यार है, पढ़ने में डूबना चाहते हो या इसलिए कि परीक्षा की तारीख लग गई है, अब डर लग रहा है, फेल न हो जायें। ध्यान दो अपनी रोज़ की ज़िन्दगी पर। तुम्हारे संबंधों का आधार क्या है? किस तरह से अपने दोस्त बनाते हो? इन सब बातों पे ध्यान दोगे तो अपने-आप को जान जाओगे और वो कहीं ज्यादा जरूरी है बजाए इसके कि तुम कोई आदर्श बैठा लो और उस आदर्श के पीछे-पीछे चलने की कोशिश करो। उसमें कुछ नहीं रखा है क्योंकि ऐसा मन जो ख़ुद को नहीं जानता वो किसी और को कैसे जानेगा? तुम कह रहे हो उसकी एसेंस कैसे जानें। मैं कह रहा हूँ उसकी एसेंस, उसका मूल तत्व अदृश्य है। अदृश्य इसलिए नहीं है कि देखा जा ही नहीं सकता, अदृश्य इसलिए है क्योंकि तुम्हारे पास आँखे नहीं हैं। जब व्यक्ति के पास आँखे होती हैं तो सबसे पहले वो ख़ुद को देख पाता है। दूसरों को भी देखोगे तो अपनी ही आँखों से देखोगे न? किसी और को भी साफ़-साफ़ देख पाओ, उसके लिए पहले अपनी आँखों का साफ़ होना आवश्यक है। इनको साफ़ करो, भीतर जाओ, अपनी ज़िन्दगी को देखो। नक़ल के चक्कर में मत पड़ना और तुम लोग अभी जिस अवस्था में हो, जैसे तुम्हारी उम्र है, तुम में नक़ल

करने की बड़ी चाह रहती है। मैं वो परीक्षा में नक़ल करने की बात नहीं कर रहा हूँ, वो तो तुम करते ही होगे। तुम रोज़ाना नक़ल करते हो, तुम्हारा कुछ भी ऐसा नहीं है जो निजी है, तुम्हारा है, सब कुछ नक़ल पर आधारित है। किसी और ने कर दिया इसलिए तुम भी किये जा रहे हो, किसी और ने बता दिया इसीलिए तुम भी किये जा रहे हो। इसी का नाम नक़ल है।

नक़ल मतलब झूठा। नक़ल का अर्थ सिर्फ़ कॉपी ही नहीं होता, नक़ल का मतलब होता है नकली, झूठा। जो भी तुमने समझा नहीं, सिर्फ़ पकड़ लिया है वो नक़ल है।

तुमने इस बात को बस पकड़ लिया है कि करियर के मायने क्या होते हैं। कैरियर शब्द के क्या मायने हैं, तुमने इस बात को पकड़ लिया है, इसी वजह से तुम यहाँ पर हो। मैं कह रहा हूँ नकली है, यही नक़ल है। तुमने नहीं जाना कि शिक्षा के क्या मायने हैं, बस बैठे हुए हो, यही नक़ल है। तुमने धर्म को कुछ समझा नहीं पर जबसे पैदा हुए हो तुम्हें बता दिया गया है कि हिंदू हो या मुसलमान हो और तुमने पकड़ लिया है, यही नक़ल है। और उसी नक़ल से तुम्हारे आदर्श भी निकल कर आते हैं और उम्र तुम्हारी ऐसी है कि प्रभावित हुए ही जाते हो, हुए ही जाते हो।

तुम देखो जा कर कि फेसबुक पर तुम्हारी जैसी फ़ोटो रहती हैं। वो क्या हैं? क्या तुम नक़ल नहीं कर रहे वाकई? अगर साफ़ आँख से देखोगे तो तुम्हें उसमें दिखाई देगा कि इसमें मैं कहीं नहीं हूँ, इसमें सिर्फ़ दूसरों की छाया है। ऐसे दूसरे जिनको मैंने बहुत ऊँचा, बहुत उन्नत आदर्श बना लिया है, बस उनकी नक़ल है यहाँ पर। सिर्फ़ हमारे आचरण में ही नक़ल नहीं है, हमारे मन में भी नक़ल घुसी हुई है, बाहर तो नक़ल है ही। ये हर युग में होता है कि तुम बाल कैसे कटा रहे हो और कपड़े कैसे पहन रहे हो, ये सब कुछ इस बात से निर्धारित होता है कि बाहर क्या चल रहा है। मैं कह रहा हूँ कि दुर्गति इतनी ही नहीं हो रही है। मन में क्या चल रहा है, इसमें भी दुर्गति चल रही है। सब इंजिनियर बनना चाहते हैं, तुमने भी नक़ल कर ली, हम भी बनेंगे। तुम में से बहुत लोग छोटे शहरों से होंगे, हो सकता है कई गाँव से भी हो। अब यहाँ पर आते हो और देखते हो कि सब लोग किस तरह से जी रहें हैं और तुम सोचते हो कि हम भी यही कर लें। उसमें तुम्हारी अपनी समझ कहाँ है? अब गाँव में मॉल नहीं होते, गाँव में और बहुत सारी चीज़ें नहीं होती, तुमने यहाँ पर आ कर देखी होंगी और तुम चल देते हो उनके पीछे।

ये जो नक़ल से भरा हुआ जीवन है, ये जो नकली, झूठी ज़िन्दगी है, ये तुम्हारे किसी काम की नहीं है। ये क़रीब-क़रीब एक मुर्दा ज़िन्दगी है। तो दूसरों के बारे में नहीं पूछेंगे, अपने-आप को देखेंगे और असली रहेंगे।

....

(उत्तर प्रदेश, 2013)

पंख हैं पर उड़ान नहीं

प्रश्नकर्ता: सर, हम मुक्त होते हुये भी मुक्त क्यों नहीं हैं?

आचार्य प्रशांत: कुछ सवाल महत्वपूर्ण होते हैं, लेकिन मैं कहता हूँ कि ये बहुत महत्वपूर्ण सवाल है। मुझे ये भी नहीं पता है कि ये जो सवाल पूछा गया है क्या उसे ये पता भी है कि उसने पूछा क्या है! लेकिन जो पूछा गया है वो बात बड़े काम की है। हो सकता है कि जानते-बुझते ये सवाल पूछा गया हो या हो सकता है कि अनजाने में पूछ लिया हो, लेकिन जैसे भी पूछा है, सवाल बड़े काम का पूछा है। मैं अगर ऑडियंस में होता तो तुम्हारे लिये तालियाँ ज़रूर बजाता।

(तालियों की गड़गड़ाहट)

कुछ तथ्यों पर गौर करेंगे। फिर मैं तुमसे पूछूँगा कि इन तथ्यों से क्या बात पता चलती है।

पहला तथ्य: दुनिया मैं कोई ऐसा नहीं है जिसकी ये बहुत बड़ी आकांक्षा हो कि सब उससे नफरत करें। दुनिया में ना ऐसा कोई हुआ है और ना ऐसा कोई है जो ये चाहता हो कि उससे नफरत की जाये। वो जहाँ जाए उसे जूते पड़ें, लोग उसके ऊपर थूकें, छोटे-छोटे बच्चे कहें कि ‘छी-छी, गन्दा’। हम सभी प्रेम पाना चाहते हैं।

इससे यह पता चलता है: प्रेम हमारा मूल स्वभाव है।

दूसरा तथ्य: दुनिया में कोई ऐसा नहीं है, ना हुआ, ना है, जो गुलाम रहना पसंद करता हो। कोई कहता हो कि मुझे क़ैद में रखो, मुझे बंधन में रखो! मजबूरी है तो बात अलग है पर पसंद किसी को नहीं है।

इससे यह पता चलता है: हम सभी मुक्ति पाना चाहते हैं। चाहने में तो ऐसा लगता है कि अभी चाह कर रहा हूँ, आगे हो सकता है ना भी करूँ। जैसे और कोई विकल्प हो! मैं तुमसे कह रहा हूँ, चूँकि, हम सभी गुलामी नापसंद करते हैं, इससे यह पता चलता है कि मुक्त रहना हमारा मूल स्वभाव है।मैं एक कदम और आगे जाऊँगा और कहूँगा, हम और कुछ हैं ही नहीं मुक्ति के अलावा। क्योंकि जो चीज़ हमसे अलग नहीं हो सकती वो हम ही हैं। मुक्ति की चाह हमसे कभी अलग नहीं हो सकती। जो चीज़ मुझसे अलग नहीं हो सकती वो मैं ही हूँ। हाथ तो फिर भी कट कर अलग हो सकता है, लेकिन मुक्ति की चाह हमसे कभी अलग नहीं हो सकती। तो अगर ये हाथ मैं हूँ तो इससे ज्यादा सच्चा वक्तव्य है कि ‘मैं मुक्ति हूँ’। मैं ये कहूँ कि मैं ये शरीर हूँ, उससे भी ज्यादा सच्ची बात ये है कि मैं मुक्त हूँ क्योंकि शरीर को कोई हिस्सा कट कर अलग हो सकता है लेकिन मुक्ति की आकांक्षा कभी अलग नहीं हो सकती।

इससे यह पता चलता है: मुक्ति हमारा मूल स्वभाव है।

तीसरा तथ्य: इसी तरीके से ये कहना भी उचित है कि ‘मैं सत्य हूँ’। हममें से कोई ऐसा नहीं है जो चाहता हो कि वो धोखे में रहे, झूठ में रहे। ना कभी ऐसा कोई हुआ था, ना है जो ये कहे कि मुझे जानना ही नहीं है या कोई सवाल पूछूँ तो झूठ बता दिया जाये, जो चाहता ही हो कि वो एक झूठी दुनिया में रहे या सब उसके साथ धोखा ही करें।

इससे यह पता चलता है: सत्य हमारा मूल स्वभाव है।

चौथा तथ्य: हममें से कोई ऐसा नहीं है जो चाहता हो कि वो उदास रहे। ना कभी ऐसा कोई हुआ था, ना आज है, जो ये चाहता ही हो कि वो उदास रहे। और जब उदास ना हो तो उसे अफ़सोस होता रहे, और वो इसी बात पर उदास हो

जाये।

(सभी हँसते हैं)

इससे यह पता चलता है: आनंद हमारा मूल स्वभाव है।

हम आनंद ही हैं। कोई ऐसा नहीं है जिसकी आकांक्षा ये हो कि 'मुझे दुःख का जीवन जीना है'. एक छोटा बच्चा भी पैदा होता है तो उसे भी आनंद चाहिए। उसे भी तकलीफ दो तो वो रोयेगा। वो भी खुश रहना चाहता है। छोटा बच्चा तो छोड़ दो, एक जानवर भी तकलीफ नहीं चाहता।

सत्य, प्रेम, मुक्ति, आनंद, जागृति, ये सब हमारा मूल स्वभाव है। ये हम ही हैं। ये हमें पानी नहीं होती हैं। जब तक हम हैं, तब तक सत्य है। 'जिस क्षण तक मैं जिंदा हूँ, उस क्षण तक आनंद है'। करके नहीं पाना है। हाँ इतना ज़रुर हो जाता है कि हम सीख इसका विपरीत लेते हैं। आनंद हमारा मूल स्वभाव होगा लेकिन हम दुःख सीख लेते हैं। बच्चा आनंदमय ही रहता है पर उसको सिखा दिया जाता है कि गंभीर हो जाओ। हँसना नहीं, गंभीर हो जाओ। माँ मंदिर लेकर गयी है, वहाँ पर वो किलकारियाँ मार रहा है, इधर-उधर फुदक रहा है, सामने मूर्ति है, उसने जाके माला झपट ली तो माँ डपट के बोलती है, 'यहाँ कोई खेल-कूद नहीं, यह गंभीर स्थान है'।

आनंद हमारा मूल स्वभाव है लेकिन हमें सिखा दिया जाता है कुछ और। प्रेम हमारा मूल स्वभाव है लेकिन हमें सिखा दी जाती है नफ़रत। ठीक इसी तरीके से मुक्ति हमारा मूल स्वभाव है लेकिन हमें गुलामी सिखा दी जाती है। और यही तुम्हारे सवाल का जवाब है। तुमने कहा हम मुक्त हैं और नहीं भी हैं; बात तुम्हारी सही है। मुक्ति तो मेरा मूल स्वभाव है लेकिन मैंने सीख ली है गुलामी। सीख कैसे ली है? हमने कह दिया है कि मानना शुरू कर दो। जिस मुक्ति को मैं हमारा मूल स्वभाव कह रहा हूँ, वो मुक्ति है 'मन की मुक्ति', 'फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड'। उसके अलावा मुक्ति और कुछ होती भी नहीं है। हमने ये सीख लिया है कि मन की मुक्ति पर समझौता किया जा सकता है इसलिए हम उसे छोड़ देते हैं। तो फिर मुक्त होते हुए भी हम मुक्त नहीं हो पाते। हैं मुक्त, पूर्ण रुप से लेकिन मुक्त रह नहीं जाते क्योंकि इस मुक्ति को हम खुद छोड़ देते हैं! 'फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड' क्या है? 'फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड' कहती है कि 'मैं खुद जानूंगा'। और जाना जाता है ध्यान में, अटेंशन में।

और ‘फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड’ हम छोड़ते कैसे हैं? कि ‘छोड़ ना, जानने की ज़रुरत क्या है? ये बात जो कह रहे हैं बड़े-बड़े लोग हैं, ये मेरे शुभ-चिन्तक हैं, परिवार जन हैं, शिक्षक हैं। ये सब बड़े-बड़े धर्म-ग्रंथों में लिखा हुआ है तो सच ही होगा! अब तुमने फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड पर ही समझौता कर दिया। जैसे ही तुमने ये कहा कि मुझे खुद जानने की ज़रुरत क्या है? न्यूटन ने कहा है तो ठीक ही होगा, केपलर ने कहा है तो ठीक ही होगा, गीता में लिखा है तो ठीक ही होगा, या सब कर रहे हैं तो ठीक ही होगा, अब तुमने फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड पर ही समझौता कर दिया। मुझे बहुत अफ़सोस होता है जब कॉलेज कैम्प्स में जाता हूँ और तुम्हारी उम्र के लोग मूर्खों जैसी बातें करते हैं। और बताता हूँ क्या होती हैं मूर्खों जैसी बातें। वो ये होती हैं- ‘सर, दुनिया ऐसे ही तो चलती है’, ‘सर, ऐसा ही तो होता है’, ‘सर, आपकी बातें बड़ी अव्यवहारिक हैं, ऐसा होता नहीं है’, ‘सर, दुनिया ऐसे नहीं चलती है’। मैं पूछता हूँ तुम अभी इतने से हो, १८-२० साल तुम्हारी उम्र है, तुमसे कह किसने दिया कि दुनिया ऐसे ही चलती है? क्या तुमने खुद देखा है अपनी नज़रों से?

(मौन)

तुममें से कितने लोग किसी कॉर्पोरेट ऑफिस के अन्दर भी गये हो? शायद ही कोई होगा! तो तुमसे कह किसने दिया कि दुनिया ऐसे चलती है? ‘नहीं सर ऐसे ही चलती है, पता है’। कैसे पता है? ‘सर, वो… वो… ‘. इसका कोई जवाब नहीं है तुम्हारे पास। और जवाब ये है कि किसी फिल्म में देख लिया या घर में किसी ने बोल दिया या दोस्तों ने बता दिया और फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड गयी, खुद जानना गया! एक छोटा बच्चा होता है, बड़ा उत्सुक होता है, बड़ा क्यूरियस होता है। वो छोड़ता नहीं है और उसके समझ में नहीं आई है तो तुम उसे लाख मनवा लेने की कोशिश कर लो, वो ये कभी भी नहीं कहेगा कि मान लिया। वो हद से हद ये करेगा कि समझ में नहीं आई तो चलो भूल जाते हैं, जाने दो। लेकिन मानेगा नहीं। और हम ऐसे हैं कि जिसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है पर माने बैठे हैं। मैं तुमसे पूछता हूँ; ‘शिक्षा’ शब्द का मतलब पता है? मुश्किल है। ‘धर्म’ का पता है? मुश्किल है। ‘करियर’ का मतलब पता है? मुश्किल है। ‘पैसे’ का मतलब पता है? मुश्किल है। ‘तनख्वाह’ का मतलब पता है? मुश्किल है। ‘भगवान?’ मुश्किल है। ‘मैं’ का मतलब पता है? बड़ा मुश्किल है। पता कुछ भी नहीं है पर इन्हीं शब्दों के आधार पर ज़िन्दगी हम जीये जा रहे हैं। गयी फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड!

पता नहीं है पर मान लिया है। तुमने अभी से तय कर लिया है कि इस-इस तरीके से जीवन को जीना है। इसी बात को मैं कह रहा हूँ कि जवान होते हुए भी जवान हो नहीं। अभी से मान ही लिया है कि ‘यही जीवन है’! पढ़ाई पूरी करनी

है, उसके बाद ३ -४ तरीके विकल्प हैं, सॉफ्टवेयर जॉब कर ली या कोर जॉब कर ली, एम.एस. कर ली या एम.बी.ए. कर ली और उसके ३-४ साल बाद शादी हो गयी, फिर बच्चे हो गये और फिर ठीक जैसी ज़िन्दगी हमने जी है वैसी ही वो बच्चे भी जियें। ये हम पूरी-पूरी कोशिश करेंगे और एक दिन मर जायेंगे। कहाँ है 'फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड' इसमें? कहानी पहले से ही लिखी जा चुकी है। मुक्ति कहाँ है इन सब में? तुमने सीख लिया है ये सब। एक छोटे बच्चे ने ये सब अभी नहीं सीख रखा।

'मुक्त होते हुए भी हम मुक्त नहीं हैं', ये बिलकुल ठीक बात है। याद रखना कोई कानून, कोई संविधान, कोई व्यवस्था मुक्ति नहीं दे सकती अगर तुम्हारे पास फ्रीडम ऑफ़ दी माइंड नहीं है। संविधान अधिक से अधिक यही तो बता देगा कि बोलने की स्वतंत्रता है। पर बोलोगे क्या तुम, जब बोलने के लिये कुछ है ही नहीं? जब मन ही मुक्त नहीं है तो बोलोगे क्या? संविधान इतना तो ही बोल देगा न कि तुम्हें पूरा हक है अपनी निजी ज़िन्दगी को अपने हिसाब से जीने का, जिससे चाहे दोस्ती करो, जिससे चाहो प्रेम करो और जिससे चाहो शादी करो। पर जब मन ही मुक्त नहीं है तो तुम उस स्वतंत्रता का क्या उपयोग कर पाओगे? कुछ भी नहीं। तुम जाओगे और मैच करोगे अपनी जाति, अपना गोत्र, अपना धर्म और वहीँ पर जाकर शादी कर लोगे। गयी फ्रीडम। मूल मुक्ति, मैन की मुक्ति है। तुम्हें पूरी आज़ादी है कोई भी करियर चुनने की करने की पर मैं नब्बे प्रतिशत आश्वस्त हूँ कि अगर मैं यहाँ पर दस करियर ऑप्शन्स लिख दूँ तो आज से तीन साल बाद हममें से ज्यादातर उन दस में कहीं न कहीं फिट कर देंगे अपने आप को।कहाँ है फ्रीडम? जब हमारे सारे करियर ऑप्शन्स पूर्वनिर्धारित हैं, तो फ्रीडम कहाँ है? फ्रीडम थी, पूरी उपलब्ध थी, कुछ भी कर सकते थे पर करोगे नहीं। कर कुछ भी सकते थे पर करोगे नहीं।

एक हाथी का बच्चा होता है। जब छोटा होता है तो उसके बहुत ताक़त तो होती है नहीं क्योंकि अभी पैदा हुआ है, पंद्रह-बीस दिन हुए हैं उसे, तो उसको एक खूंटे से बाँध दिया जाता है। और एक रस्सी है जो बहुत लम्बी नहीं है, छोटी-सी ही है। अब बच्चा अपनी पूरी कोशिश करता है मुक्त होने की क्योंकि मुक्ति हमारा मूल स्वभाव है। वो पूरी कोशिश करता है। वो गोल-गोल घूमता है, सब तरीके अपना कर देख लेता है। वो जितना घूम सकता है उस खूंटे के चारों ओर घूम लेता है। फिर महावत उसके चारों ओर एक बड़ा सर्किल बना देता है। वो ये पाता है कि कितनी भी कोशिश कर ले उस सर्किल के पार नहीं जा सकता। आगे चलकर बड़ी मजेदार घटना घटित होती है। वो घटना ये है कि वो हाथी पूरा बड़ा हो जाता है लेकिन उसके बाद भी उसको उतनी ही पतली सी रस्सी से खूंटे में बांध कर रखा जाता है और वो कभी भी उस सर्किल को पार नहीं करता। मुक्त होते हुए भी, मुक्ति उसे पूरी है, पार कभी भी कर सकता है, लेकिन पार नहीं करता। फ्रीडम उसे पूरी है, पार भी कर सकता है, लेकिन पार करता नहीं है। इसलिए मुक्त होकर भी मुक्त नहीं है। यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है।

समझ में आई बात?

प्र (एक स्वर में): जी सर।

....

(हरियाणा, 2013)

क्यों लगता है कि सब ख़त्म हो गया?

प्रश्नकर्ता: कभी-कभी जीवन में ऐसा लगता है कि सब ख़त्म हो गया है। इस स्थिति को क्या कहते हैं? इसे कैसे दूर करें?

आचार्य प्रशांत: सवाल है कि जीवन में कभी-कभी या अक्सर ऐसे क्षण आते हैं जब दिखाई पड़ता है कि सब ख़त्म हो गया, आशा चुक सी जाती है, तब क्या करें?

तुम्हारी किस्मत अच्छी है, सौभाग्य है कि तुमको ये क्षण आते हैं। इससे पता चलता है कि अभी पूरी तरह मुर्दा नहीं हो, पता चलता है कि अभी भी थोड़ी संवेदना बची हुई है। ज़्यादातर लोग इतने बेहोश हो जाते हैं, करीब-करीब मुर्दा, कि उनको ये भी प्रतीत नहीं होता कि सब ख़त्म हो रहा है, सब ख़त्म हो ही चुका है।

वो झूठे सपनों में जिए जाते हैं। तो तुम्हारे साथ तो अभी बड़ी अच्छी घटना घट रही है। धन्यवाद दो अस्तित्व को, कि अभी ये सब तुम्हारे साथ हो रहा है। लेकिन अगर ये होता है और तुम सचेत नहीं हुए , तो कुछ समय में ये होना बंद हो जायेगा। मुक्तिबोध की एक पंक्ति है:

“मुझे पुकारती हुई पुकार खो गयी कहीं”

बड़े फायरब्रांड कवि थे मुक्तिबोध। तो कह रहे हैं कि एक पुकार उठती है और पुकार बड़े कष्ट की ही होती है कि, ‘ये क्या हो रहा है?’, ‘ये ज़िन्दगी कहाँ जा रही है?’ जीवन लगातार एहसास कराता है – अपने खाली होने का, अपने सूनेपन का, अपने अर्थहीन होने का- पर ये तुम्हारे ऊपर है कि तुम उस पुकार को सुनो या न सुनो, और नहीं सुनोगे तो वो पुकार खो जायेगी। कुछ दिनों में वो पुकार आनी बंद हो जायेगी। तुमको ऐसा लगने लगेगा कि सब कुछ ठीक है, सब सामान्य है, सब सामान्य है। पर सब सामान्य नहीं हो गया है, सब ठीक नहीं हो गया है, इतना ही हो गया है कि तुम सुन्न पड़ गए हो। शरीर के किसी हिस्से पर जब बहुत ज़ोर से चोट लगती है, तो ऐसा भी होता है कि वो सुन्न पड़ जाये और दर्द का एहसास भी बंद हो जाये। दर्द का एहसास नहीं हो रहा है, इसका अर्थ ये नहीं है कि सब ठीक है। इसका अर्थ यही है कि बीमारी और गहरी हो गयी है।

तुम सड़क पर चलते लोगों को देखो, उनकी शक्लों को देखो, उनके जीवन को देखो, उनके हाव-भाव को देखो, अपने आस पास के समाज को देखो, और तुम्हें साफ़ – साफ़ दिखाई देगा कि सब बीमार हैं। सब बुरी तरह से बीमार हैं। घर को देखो, परिवार को देखो, जाकर दफ्तरों में देखो, और तुमको उनकी आँखों में बीमारी के अलावा कुछ और दिखाई देगा नहीं। डर दिखेगा, चिंता दिखेगी, संदेह दिखेगा, बोरियत दिखेगी। पर तुम उनसे पूछो कि ‘क्या हुआ, क्या तकलीफ है?’ तो वो कहेंगे ‘तकलीफ? सब कुछ अच्छा है। मैं तो एक बड़ा सामान्य आदमी हूँ, मैं तो एक ढर्रे की ज़िन्दगी बिता रहा हूँ’। और इनके आस-पास आने वालों से पूछोगे तो वो कहेंगे, ‘हाँ, हाँ बिल्कुल ठीक है एक सामान्य जीवन बिता रहा हैं ये। रोज़ सुबह घर से निकलता है, ऑफिस आता है, ठीक -ठाक कमा रहा है, घर जाता है जहाँ बीवी, एक-दो बच्चे हैं और बस ये ही इसका जीवन है। चल रहा है और सब लोग इसको मान्यता देते हैं। पर तुम जानोगे, अगर तुम गौर से देखोगे, तो समझोगे कि कहीं न कहीं कोई गड़बड़ है, कोई बड़ी गड़बड़ है। सबसे बड़ी गड़बड़ है कि उसे अब ये गड़बड़ का एहसास होना भी बंद हो गया है। वो वेल एडजस्टेड हो गया है।

कृष्णामूर्ति ने कहा था- “अगर तुम एक बीमार समाज से पूरी तरह एडजस्टेड हो गए हो तो इससे ये बिल्कुल सिद्ध नहीं होता कि तुम स्वस्थ हो”

अगर तुम एक बीमार समाज से पूरी तरह एडजस्टेड हो गए हो तो इससे ये बिल्कुल सिद्ध नहीं होता कि तुम स्वस्थ

हो। इससे यही सिद्ध होता है कि तुम भी उतने ही बीमार हो, बल्कि शायद और ज्यादा। तो इसीलिए मैंने कहा था कि सौभाग्य है तुम्हारा कि तुमको वो क्षण आते हैं, घबराहट के, जब अचानक सब काला दिखाई देने लगता है, और मैं प्रार्थना करता हूँ कि वो क्षण यहाँ बैठे सभी लोगों को आया करें, और बहुत ज्यादा आया करें। तुम्हारा दुश्मन नहीं हूँ। ये तुम्हारे स्वास्थ के लिए ही प्रार्थना कर रहा हूँ। आवश्यक है कि वो क्षण आये, आवश्यक है कि हम देख पाएं कि जिन ढर्रों पर हम चल रहे हैं, वो बड़े अंधेरे रास्ते हैं, कहीं को नहीं जाते, और उनमें हमें कष्ट के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा। आवश्यक है कि हम देख पाएं कि हम सुबह से लेकर शाम तक जो कुछ भी करते हैं, उसमें हमारी हालत क्या रहती है, हमारा मन कहाँ रहता है और हम कर क्या रहे होते हैं। बहुत ज़रूरी है कि हमें ये समझ में आये। जो आदमी सपने में है, वो अपने सपने की मौज लेता ही रहेगा। लेकिन जीवन तुम्हें हमेशा सपने में रहने देगा नहीं। वो बीच-बीच में तुम्हें सत्य के सामने खड़ा करेगा ही, और सत्य तुम्हें रगड़ देगा, ठोकरें देगा ।

वो क्षण होता है जब तुम्हें दिखाई देता है, कि तुम जिन कल्पनाओं में जी रहे थे, वो झूठी थीं। जीवन खुद ऐसे अवसर पैदा करता है, जब तुम्हें दिखाई दे जाये कि हम जिन कल्पनाओं में जी रहे हैं, वो झूठी हैं। हम जिन धारणाओं के आधार पर आगे बढ़े जा रहे हैं, उन धारणाओं में कुछ रखा नहीं है। जो विश्वास मैंने बचपन से पाल रखें हैं, संसार को जैसा मैं समझ रहा हूँ, वो वैसे हैं ही नहीं। जीवन ठोकर देता है, तुम्हें एहसास देता है और इसलिए एहसास कराता है कि जग जाओ!! पर हम जागते तब भी नहीं हैं।

किसी ने कहा है कि हर आदमी कभी न कभी सत्य से टकराता ज़रूर है, लेकिन अधिकतर लोग, सत्य से टकराने के बाद बस उठते हैं और ऐसा अभिनय करते हैं कि जैसा कुछ हुआ ही नहीं। कोई ठोकर लगी ही नहीं, और अपनी पुरानी ही दिशा में वापस चल देते हैं। बहुत कम लोग होते है जो सत्य से ठोकर खाने के बाद जाग जाएँ।

तुम्हें ये जो अनुभव होता है- ये सत्य की ठोकर है। ये अनुभव तुम्हें इसलिए होता है ताकि तुम जग सको। धन्यवाद दो अस्तित्व का कि तुम्हें ये अनुभव होता है। अस्तित्व को अभी तुमसे कुछ उम्मीद है, इसीलिए तुम्हें ये ठोकर दे रहा है। जिनको ठोकर मिलनी ही बंद हो गयी हैं, वो तो कहीं के नहीं बचे, और अब हम में से बहुत से लोग ऐसे हैं जिनको ये ठोकर अब मिलनी अब बंद हो रही होंगी। जिनको लग रहा होगा, ऐसे ही है, बस ये ही है। मुझे पता चल गया है कि जीवन क्या है। मैं सब समझ गया हूँ। इन लोगों को अब ठोकर नहीं लगती। ठोकर समझ लो तुम्हारे उस शुभचिंतक की तरह है जो तुम्हें जगाने आया है। जो तुमसे कह रहा है कि उठो, और जब भी कोई तुमको गहरी नींद से उठाये तो थोड़ी बेचैनी होती है, थोड़ी झुंझलाहट होती है। होती है कि नहीं होती है?

और जो कोई तुम्हें उठाये, वो तुम्हें कोई बहुत प्रिय नहीं लगता। तुम सो रहे हो, बढ़िया हो, और कोई आ रहा है, और तुम्हें उठा रहा है कि 'उठो!' तुम खिसिया जाओगे। ये उठने का संकेत है, 'उठ जाओ। सच्चाई को देखो। अपनी मान्यताओं के खोखलेपन को देखो'। जीवन तुमसे कह रहा है कि अपने से पूछो कि "क्या मैं इन सब शब्दो के अर्थ को समझती हूँ? शिक्षा, काम, पैसा, करियर, प्रेम, परिवार, जीवन, मृत्यु"। और इन्हीं पर तुमको चलना है। दिन-रात तुम सोच इन्हीं के बारे में रहे हो। इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच रहे हो। पर क्या इनको जानते हो? जीवन तुमसे ये सवाल पूछ रहा है। उत्तर दो। तुमने कभी जानना चाहा है कि पैसे का अर्थ क्या है? क्या काम पैसे के लिए किया जा सकता है? जीवन में पैसे का क्या महत्व है? जीवन क्या है? तुमने अपने आप से कभी पूछा कि धर्म क्या है? मनोरंजन क्या है?

अभी त्यौहार आ रहा है । घरों की तरफ भाग रहे हो। तुमने अपने आप से पूछा कि 'त्यौहार' शब्द का क्या अर्थ है? मनोरंजन का मतलब क्या है?इन्हीं पर जीवन बिता रहे हो, पर इनके बारे में जानते कुछ नहीं। और जीवन तुमको चेतावनी दे रहा है कि ये मत करो। अवसर खोते जा रहे हो, समय तुम्हारे हाथ से फिसला जा रहा है, जीवन तुम्हें बस चेतावनियाँ दे रहा है। उन चेतावनियों को सुनो। एक-एक क्षण जो तुम बिना सुने बिता रहे हो, तुम अपने ही और बड़े दुश्मन होते जा रहे हो। कोई और नहीं है तुम्हारा दुश्मन, तुम्हीं हो अपने दुश्मन।

....

(उत्तर प्रदेश, 2013)

आदर्शों को अस्वीकार करो

प्रश्नकर्ता: कुछ उपलब्धियाँ पाने के बाद एक महान व्यक्ति के लिए आसान होता है अपने रास्ते को बताना और सुनकर ऐसा लगता है कि कितना आसान रास्ता है। क्या हमें भी उसी रास्ते को अपनाना चाहिए, जो उस महान व्यक्ति ने अपने बारे में बताया है? क्या उस रास्ते पर चलकर हम भी वहीं पहूँच जाएँगे?

आचार्य प्रशांत: नहीं बिल्कुल भी नहीं, बल्कि ये कभी कर मत लेना। जो कह रहा है, हो सकता है उसकी भी यही इच्छा हो। और जब तुम सुनोगे तो यही इच्छा उठेगी कि जो रास्ता इस व्यक्ति का था, मैं भी उसी पर चल पड़ूँ। तुमने कहा न उसको सफलता मिल गयी है, सफलता इसी रास्ते पर चलकर मुझे भी मिल जायेगी। तो मन में यह लालच निश्चित रूप से उठेगा, यहाँ पर बहक मत जाना।

जो तुमको अपना रास्ता दे, वो तुम्हारे साथ कोई मित्रता नहीं निभा रहा। वो तुम्हें बेचारगी दे रहा है। वो तुम्हें निर्भरता ही दे रहा है। तुम किसी और के रास्ते पर चल कैसे सकते हो? क्या तुम वही व्यक्ति हो? क्या वही इतिहास है तुम्हारा? जब तुम अलग हो, जब तुम विशिष्ट हो, अद्वितीय हो, तो किसी और का रास्ता तुम्हारा कैसे हो सकता है? लेकिन मुश्किल कहाँ पर आती है मुझे वह भी पता है। हमें लगातार आदर्शों का पाठ पढ़ाया गया है। रोल-मॉडल्स! हमें बचपन से ही कहा गया है कि ये लोग ऐसे चले, तुम भी ऐसे ही चलो। और जिन लोगों को आदर्श बना कर प्रस्तुत किया जाता है, बड़ी मजेदार बात है कि वो किसी और के रास्ते पर नहीं चले थे। उन्होंने तो अपना रास्ता खुद बनाया। पर तुमसे कहा जाता है कि तुम उनके रास्ते पर चलो। बात तो बड़ी विपरीत हुई। दुनिया में जो भी व्यक्ति चमका है, ठीक-ठीक बताना, क्या दूसरों की नक़ल करके चमका है? या समझ से ज़िन्दगी बितायी है उसने ? दुनिया के किसी भी क्षेत्र में: विज्ञान, राजनीति, फिलॉस्फी धर्म, कला। तुम किसको महत्व देते हो, उसको जो बने बनाये रास्ते पर चलता गया या उसको जिसने अपने नए रास्ते का निर्माण किया? किनको याद रखते हो तुम?

प्र: जिसने कुछ नया किया।

आचार्य: जिसने कुछ नया किया, तुम उनके पीछे क्यों चलना चाहते हो? उनसे एक ही चीज़ सीखी जा सकती है, वो क्या?

प्र: कुछ नया करो।

आचार्य: वही एकमात्र चीज़ है जो किसी और से सीखी जा सकती है – कि जीवन अपनी दृष्टि से जीना सम्भव है। इसके अलावा तुम कुछ और नहीं सीख सकते। किसी से कुछ भी और सीखा तो अपने साथ अन्याय कर लिया। बुद्ध

खुद कभी बौद्ध नहीं थे, जीसस खुद कभी ईसाई नहीं थे। ठीक है न? उन्होंने तो कुछ नया ही किया था। बुद्ध क्या थे? हिन्दू थे। जीसस क्या थे? जीसस यहूदी थे। उन्होंने मूलतः क्या किया? कि जो उनको इतिहास ने दिया था, जो उनको घर परिवार ने दिया था, उसको छोड़ कर उन्होंने कुछ और नया, ताज़ा, अद्भुत दिया। और तुमसे कहा जाता है कि तुम वही करो जो उन्होंने कर दिया है। कृष्ण ने गीता किसी और से सुनी थी और इम्तिहान में जाकर लिख दी थी? तो तुम क्यों ऐसे नहीं हो सकते कि तुमसे भी गीता फूटे? तुम किसी और की दी हुई गीता क्यों दोहराते रहते हो? तुम्हारी गीता कब फूटेगी? 'नहीं सर,वो तो हमारे बूते की बात नहीं है। अब इतने बड़े- बड़े लोग है, जो इतनी बातें कर गए हैं, अरे कोई उनको मानने वाला भी तो होना चाहिए। हम उसके लिए हैं। वो आगे-आगे चल रहे हैं, तो कोई पीछे चलना वाला भी तो होना चाहिए न, हम उसके लिए हैं। हम भीड़ हैं, जो पीछे-पीछे चलती है। हम कहाँ गीता के गीतकार हो पाएंगे, हमसे थोड़े ही बहेगी गीता? हमें तो बस मिल गयी है। रास्ते दिखा दिए गए हैं, हमारा काम है बस उन पर चलना। समाज में इतने ऊँचे -ऊँचे आदर्श हैं, हमारा काम है, उनको मानना'।

अब तुम, तुम हो। तुम अपनी पूरी कोशिशों के बाद भी उन आदर्शों को मान पाओगे नहीं। नतीजा क्या होगा? एक बंटा हुआ जीवन। तुम इतनी कोशिश कर लेते हो, ईमानदारी से बताओ, आज तक चल पाये हो उन आदर्शों पर? तुम्हारे सामने बड़े-बड़े रोल मॉडल रख दिए जाते हैं। जैसा जीवन उन्होंने जिया, तुम जी सकते हो क्या? क्योंकि तुम, तुम हो, तुम्हें अपना जीवन जीना है। उन्होंने जो किया, वो उनकी समझ,उनके समय, उनकी अपनी पूरी व्यवस्था से निकला । वो तुम्हारे लिए अनुकूल कैसे हो सकता है? पर तुम लगातार कोशिश यही करते हो कि वैसा बन जाएँ और तुम हर तरीके से नक़ल करने की कोशिश भी कर लेते हो। हमारा सब कुछ नक़ल का ही तो है।

नक़ल मतलब वो जो एक अतीत से आ रहा है, पहले ही हो चुका है अतीत में, और अब हम उसको दोहरा रहे है। जो कुछ भी अतीत में हो चुका है और तुम उसको दोहरा रहे हो, वो नक़ल ही तो है। तुम्हारे विचार तुम्हारे अतीत में पहले किसी और ने दिये, फिर तुमने पकड़ लिए। तुम्हारा धर्म किसी और का दिया हुआ है, फिर तुमने पकड़ लिया। तुम्हारी जितनी उम्मीदें हैं, जितने सपने हैं, वो कोई नए और ताज़े तो नहीं हैं। वो सब इतिहास से ही आ रहे हैं। तुम्हारा जो पूरा जीवन है, वो आदर्शों पर ही चल रहा है। बड़ा आदर्श जीवन है हमारा, बस दोहराना, बस दोहराना और इसी दोहराने के कारण हम हमेशा एक बोरियत के शिकार रहते हैं, क्योंकि जो कुछ भी पहले से तय है, जो नया नहीं है, वो मन को सुला देगा, बेहोश कर देगा। उसमें कुछ ऐसा है ही नहीं जो आकर्षित कर सके, जिसमें ज़रा गर्मी हो। तुम्हें पहले ही पता है कि यहीसब होना है।

तुम आज भी जो कुछ भी करने के लिए तैयार बैठे हो, ईमानदारी से देखो, क्या वो वही सब नहीं है जो हर कोई अतीत में करता आ रहा है। और तुम उसको दोहराओगे ही तो। और क्या करोगे? कोई नयी कहानी लिखने वाले हो

क्या? आदर्शों पर ही तो चल रहे हो।

अतीत में अगर किसी ने शादी न की होती और तुम्हें 'शादी' शब्द का पता ही न होता, कि विवाह नाम की संस्था जैसा कुछ होता है, ये तुम जानते ही नहीं होते, तो क्या तुम अपनी समझ से विवाह करते? कि मैं पहला हूँ जो करूँगा। तुम ऐसा नहीं करते। तो आदर्शों के कारण तुम विवाह करोगे, आदर्शों के कारण तुम्हारे बच्चे पैदा होंगे। आदर्श ना होते तो बच्चे भी न होते। पुरुष और स्त्री की शादी थोड़े ही न हो रही होती है। एक आदर्श घटना घट रही होती है। 'अरे सबने करी है, हम भी कर रहे हैं। तुम समझते भी हो तुम क्या कर रहे हो? नहीं। सब करते हैं। उन्होंने समझा था? उन्होंने समझा होता तो हम कैसे पैदा होते। नासमझी-नासमझी में हम आ गए, तो नासमझी-नासमझी में इस घटना को भी हो जाने दो। जीवन समझने के लिए थोड़े ही है। जीवन तो भूत है। भूत क्या? जो डरावना हो। तो उसी भूत पर हम चले जा रहे हैं। ये सब आदर्श हैं।

ये मत समझना की व्यक्ति ही आदर्श होता है। तुमने कहा सफल व्यक्ति। सफल व्यक्ति आदर्श नहीं होता। सबसे बड़ा आदर्श तो अतीत है। और वो तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा बोझ है, कि मुझे उसको दोहराना है। अतीत ने तुम्हारे मन में भर दिया गया है कि किस तरह का करियर होना चाहिए। अब वो तुम्हें चाहिए ही चाहिए। बहुत मन को तोड़ने वाली बात है। पर जितना मन को तोड़ेगी, उतना ही तुमको मुक्तिदेगी कि हमारा पाना कुछ नहीं है। हमारा प्रशिक्षण सिर्फ दोहराने का है। उसको खोजो जो अपना है और वो बहुत दूर नहीं है। बहुत कठिन नहीं है। मैं तुमसे कोई असम्भव बात नहीं कर रहा हूँ।

उसको खोजो जो अपना है। और वो बहुत दूर नहीं है, बहुत कठिन नहीं है , मैं तुमसे कोई असंभव बात नहीं कर रहा हूं। उसको खोजो जो अपना है। आसानी से मिलेगा वह, कोई आदर्श काम नहीं आएगा। इसलिए थोड़ा सा डर लग सकता है। तुम्हें कोई प्रमाण नहीं मिलेगा। तुम ये नहीं कह पाओगे कि ये बात ठीक है क्योंकि ये तीन और लोगों ने की हुई है। लेकिन हाँ, उसमें मज़ा बहुत आएगा। और यही प्रमाण है और वो आखिरी प्रमाण है, कि तुम ठीक हो। तुम पहली बार जानोगे कि ज़िन्दगी को प्यार करना किसे कहते हैं, वही प्रमाण है। परन्तु तुम तब प्रमाण मांगोगे नहीं, क्योंकि असली प्रमाण तब मिल चुका होगा। फिर तुम्हारे सामने मंच पर कोई बैठा हो, ऊँची से ऊँची हस्ती, तुम कहोगे, 'दुनिया के बारे में तुम ज्यादा जानते होगे, अपनी ज़िन्दगी के बारे में मैं ही जनता हूँ, मैं ही जान सकता हूँ'। ठीक है दुनिया की जानकारी मैं तुमसे ले लूंगा, तुम मुझे बता दो अर्थव्यवस्था कैसी है, तुम मुझे बता दो राजनीति कैसी है, तुम मुझे विज्ञान के बारे में कुछ बता दो, टेक्नोलॉजी समझा दो- ये सब मैं तुम से ले लूंगा। पर जहाँ तक ज़िन्दगी की बात है, मेरी ज़िन्दगी की बात है, उसका मालिक तो मैं ही हूँ और उसके बारे में तुम कुछ बोल मत देना'।

अगर कोई तुम्हें आचरणबद्ध बातें समझाए, कभी भी स्वीकार मत करना। कभी भी स्वीकार न कर लेना अगर कोई तुमसे कहे, 'इस रास्ते पर चला हूँ, बढ़िया है, आ जाओ, चलो पीछे -पीछे'। बिल्कुल मना कर देना। जैसा मैंने कहा कि एक ही मदद है जो ली जा सकती है। क्या? कि अब मैं अपनी दृष्टि से देख पाऊँ। तुम अंधे हो, डॉक्टर के पास गए। जितनी बार तुम उसके पास जाते हो, वो तुमको बता देता है कि देखो इस इस तरीके के रास्ते हैं। शहर में ५० मीटर चलोगे, तो ये चौराहा आ जायेगा। आसमान जैसा कुछ होता है और उसका रंग नीला होता है। तो ये शब्द याद कर लो- नीला। और वो तुमको सुविधापूर्वक जीने के लिए नक्शे रटा दे। कैसा लगेगा तुम्हें वो डॉक्टर? यह तो कोई डॉक्टर नहीं हुआ, यह तो कोई इलाज नहीं हुआ। असली चिकित्सक तो वो है जो आँखों की रोशनी वापस ला दे। उसमें वक्त लग सकता है। पर ध्येय हमेशा यही होना चाहिए। कि आँखें है तो देखें। हाँ आँखें अगर जन्मों से बंद पड़ी हैं, तो देखने में शायद थोड़ा वक़्त लग जाए। पर आँखें हैं तो देखें, मन है तो समझे, और ये श्रद्धा कभी भी अपने भीतर से मत खोना कि मेरी आँखें देखने के काबिल हैं।

हम टूट जाते हैं। हमारे भीतर ये भाव बड़ी गहराई से बैठ जाता है कि मैं नाकाबिल हूँ। इसको मत आने देना। हमारे भीतर ये धारणा सच की तरह बैठ जाती है कि मुझे लगातार मदद पर आश्रित रहना ही होगा। जब भी ये भावना सर उठाये इसको ठुकरा देना । तुम कहना, 'हो सकता है अभी मुझे बात समझ न आ रही हो, पर इसका ये अर्थ नहीं है कि मैं समझ ही नहीं सकता हूँ। बीमारी पुरानी है, इस कारण हो सकता है कि मैं अभी कमज़ोर हूँ, पर इसका ये अर्थ नहीं है कि मुझे सदा कमज़ोर रहना ही है। चिकित्सा शुरू इसीलिए की जाती है ताकि एक दिन चिकित्सा बंद की जा सके। वो चिकित्सा किस काम की वो अनवरत चलती रहे। अपने भीतर से ये श्रद्धा कभी मत जाने देना कि मूलतः मैं स्वस्थ हूँ, चिकित्सा कुछ दिनों की है। हम स्वस्थ हैं। मेरे पास सब कुछ है, बस छुप गया है। आयेगा सामने, बिल्कुल आयेगा। वह स्वास्थ्य जो किसी और को उपलब्ध हो सकता है, वही मुझे भी उपलब्ध है। तुम्हारे ऊंचे से ऊंचे आदर्श को जो स्वास्थय उपलब्ध हुआ है- कृष्ण को, बुद्ध को- ठीक वही स्वास्थ्य, ज़रा भी कम नहीं और उससे ज़रा भी अलग नहीं, ठीक वही स्वास्थ्य तुम्हें भी उपलब्ध है। हाँ वो थोड़ा जागे हुए थे। वो जान गए कि स्वास्थ्य क्या है। तुम अभी थोड़ा नींद में हो, आँखों में नींद भरी है, पर नींद ही भरी है और कुछ नहीं हो गया। कोई बहुत बड़ा अपराध नहीं हो गया है, तुम पूरे हो, तुम काबिल हो। पकड़ लो इस बात को, और कभी इसको डगमगाने मत देना। कितनी भी हालत ख़राब हो, कितनी भी चोटें लग रहीं हों, समय कितना भी विपरीत पता चल रहा हो, पर फिर भी ये श्रद्धा न हिले। हीनता का भाव मत आने देना अपने कि मुझ में मूलभूत रूप से कोई कमी है। तुममे कोई कमी नही है, मूलभूत रूप से कोई कमी नहीं है। सोचने का ढंग बेशक उल्टा- पुल्टा है, मैं उसको मान्यता नहीं दे रहा हूँ। तुमने अभी अपनी जो हालत कर ली है, वो ज़रूर बीमार की हालत है। पर मूलतः तुम स्वस्थ हो और बीमारी की हालत बस कुछ दिनों की है- ये बात पक्की समझो। कोई तुमसे ऊँचा नहीं है। कोई आदर्श नहीं है, तुम अपने आदर्श खुद हो।

तुममें से आधों के चेहरे पर तो यह लिखा है, 'सर हम और आदर्श हमारी शक्लें देखिये'। तुम्हें यकीन ही नहीं आता है न? मैं तुमसे कहूँ कि तुममें ये कमी है, तुममें ये खोट है, तो तुम बड़ी आसानी से स्वीकार कर लोगे। पर मैं तुमसे कह रहा हूँ कि मूलभूत रूप से पूरे हो और पक्के हो! ये बात स्वीकार नहीं होती, ये बात अजीब लगती है। क्यों? खतरनाक लगती है। सर क्या मैं वाकई बुद्ध हूँ? हाँ!

....

(कानपुर, 2013)

बचपन से देखा-सुना, उससे अचानक कैसे हटें?

प्रश्नकर्ता: सर, जो हम बचपन से करते आ रहे हैं, उससे कैसे हटें?

आचार्य प्रशांत: इस कमरे में तुम्हारे, बचपन से अंधेरा है। यहाँ पर एक बल्ब जला दूँ, तो रौशनी होने में क्या दो चार साल लगेंगे? कितना समय लगेगा?

अगर तुम अपने आप को वहाँ पर ले आओ, जहाँ पर इंसान कहता है कि एक ही ज़िन्दगी है मेरे पास, और मैं जवान हूँ । मेरे पास बहुत कुछ है अभी देखने के लिए, जानने के लिए, पूरा जीवन ही शेष है, मुझे इसे जीना है। पूरे तरीके से जीना है, सच्चाई के साथ, एक्सीलेंस के साथ जीना है। तो तुमको एक क्षण नहीं लगेगा।

फिर ये सब बहाने नहीं चलेंगे, कि हमें थोड़ा वक़्त दीजिये ना।

प्र: सर, बल्ब जलाने में तो टाइम नहीं लगेगा, पर एक्सेप्ट करने में तो लगेगा?

आचार्य: एक्सेप्ट करने को कौन कह रहा है बेटा? क्यों एक्सेप्ट करना चाहते हो? मैं तुमसे समझने को कह रहा हूँ, और तुम एक्सेप्ट करने में लगे हुए हो।

प्र: सर, अगर हम अँधेरे में जा रहे हैं, और सामने एक गाड़ी आ गयी, तो हम कहेंगे अरे लाइट बंद करो, बहुत तेज़ है।

आचार्य: मैं उतनी तेज़ नहीं जला रहा। सर्च लाईट नहीं मार रहा तुम्हारी आँखों में।

अपने प्रति ईमानदार रहो । ये वक़्त लगना और बाकी सबकुछ, मन के बड़े प्यारे बहाने हैं कि बात तो ठीक लग रही है, पर धीरे धीरे करेंगे । ये सब धीरे धीरे की चीज़ें नहीं होती हैं। जो समझ में आया है, वो अभी आ जाता है।

ध्यान में रहना है, स्वयं देखना है, ये आदमी लगातार खुद करता है।

प्र: सर आपने कहा कि लाइट जला दो तो कमरे में रौशनी हो जाएगी। लेकिन अगर पौधा सूखा हुआ हो, तो चाहे कितना भी पानी डालो, क्या फरक पड़ेगा?

आचार्य: तुम ज़िंदा हो जब तक, तब तक तुम्हारा पौधा तब तक सूख नहीं सकता। जिस दिन तक ज़िंदा हो। तुम ज़िंदा हो, सांस ले रहे हो, ये इस बात का सबूत है कि पौधा अभी सूखा नहीं है, इंटेलिजेंस है। तुम्हारे रहते वो जाएगी नहीं । अगर मुझे ये दिख ही जायेगा कि पौधे सूखे हैं, तो मैं अपना समय बर्बाद करने यहाँ आऊंगा नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम सूखे पौधे नहीं हो। बहुत कुछ है जो शेष है। जो असली चीज़ है वो तुमसे कभी छिन सकती नहीं, बस उस पर धूल पड़ गई है, गंदगी जमा हो गई है। तुम सब पूरे तरीके से ठीक हो, तुममें कोई कमी नहीं है। बिलकुल साफ़ हो लेकिन बहुत सारा अपने ऊपर...

एक बात बताओ कि सोने पर अगर मिट्टी भी चढ़ जाये, तो क़ीमत कम हो जाएगी क्या? शीशा है, उस पर बहुत सारी धूल जम जाए, तो शीशा व्यर्थ हो गया? हटाई जा सकती है धूल। कुछ करा जा सकता है| धूल बाहर से आयी थी और बाहर की ही कृतियों से हट भी सकती है।

प्र: सर कभी कभी परिस्थितियां ऐसी होती हैं कि समस्या बन जाती है, तो ऐसे समय में क्या किया जा सकता है? समस्याओं को हल करें या परिस्थितियों को हल करें?

आचार्य: "परि" माने बाहर, "स्थिति" माने सिचुएशन। जो बाहर है, तुम उसको बदल कैसे लोगे बेटा? अब मैं आया हूँ, बदल के दिखाओ मुझे।

(अट्टाहस)

नहीं कर पाओगे ना। जो भी तुमसे बाहर है, वही परिस्थिति कहलाता है। और मज़े की बात ये है, कि जो शब्द है 'परिस्थिति', ये शब्द ही बड़ा गड़बड़ है। क्यों? क्योंकि हर स्थिति बाहरी स्थिति ही है। हर स्थिति परिस्थिति ही है। चाहे वो मनोस्थिति हो या कोई और स्थिति हो। हर स्थिति बाहरी ही है। प्रत्येक स्थिति परिस्थिति ही है। और अपने आप को उससे प्रभावित ना होने देना, इसी का नाम है, 'मुक्त होना', इंडिपेंडेंट होना।

परिस्थितियां तो अपना काम करती रहेंगी, उनको तुम नहीं रोक सकते। तुम्हारे पेट में खाना पच रहा है, वो परिस्थिति है, पचने दो। थोड़ी देर में पेट सिग्नल देगा, भूख, भूख, भूख। उन्हें सिग्नल देने दो। निर्धारित तुम करो, अपनी चेतना से। पेट तुम्हारा मालिक न बन जाए। हर स्थिति परिस्थिति है, अंतःस्थिति कुछ नहीं होती। मनोस्थिति कुछ नहीं होती, ये सब परिस्थितियाँ ही हैं; पर तब, जब तुम मन को अपने से अलग जानो। जब मन को अपने से अलग जानते हो, तब मनोस्थिति भी परिस्थिति बन जाती है। तब अंतःस्थिति जिसको तुम बोलते हो, वो भी परिस्थिति हो जाती है।

अभी तो बस कोई लहर आती है, और तुम्हें बहा के ले जाती है । अभी बाहर से कोई अंदर आ जाए, तो बिलकुल

तुम्हारा ध्यान ख़तम हो जाना है। बिलकुल भूल जाओगे, क्या था, क्या नहीं था; जिस स्थिति में हो, उसे बिलकुल लूज़ कर दोगे । ऐसे मत बनो, कि बस हवाए आयें और तुम बस बह रहे हो इधर से उधर। जैसे, गर्मी के दिनों में होता है ना, हवा चल रही होती है और एक छोटा सा कागज़ का, किसी बड़े मैदान में एक टुकड़ा छोड़ दो, तो देखा है उसके साथ कैसा होता है?

ये हवा बही तो, उधर को बह लिये| कौन सी हवा है? ये इंजीनियरिंग की हवा है, तो साथ चल दिये| फिर उधर को हवा चली, कौन सी हवा है? ये आई.टी इंडस्ट्री की हवा, अब बीस बाईस साल हो गए, तो उधर को चल दिए| अब उधर क्या है? उधर गर्ल्स हॉस्टल है, तो अब शादी की हवा है।

(अट्टाहस)

और बहे जा रहे हैं, सब बाहरी परिस्थितियां आ रही हैं, और बहाये जा रही हैं । अपना कुछ नहीं है । एक उम्र हुई, बता दिया गया कि पढ़ाई करो, एक उम्र हुई, बता दिया गया नौकरी कर लो, एक उम्र हुई तो बता दिया गया, शादी कर लो, एक उम्र हुई तो बता दिया गया कि बच्चे कर लो । एक उम्र हुई तो बता दिया गया कि कुछ प्रॉपर्टी बना लो, घर वर होना चाहिए । उसके बाद एक उम्र हुई तो अब मर जाओ ।

(अट्टाहस)

तो अब मर भी गए ।

ऐसे मत बनो। हवाएँ तो बहती ही रहेंगी, तुम मत बदलो उनके साथ। अभी तुम बाहर निकलोगे, तो दिखेगा कैसे बहते हो हवाओं के साथ। ये फ़ालतू मेरी रिकॉर्डिंग हो रही है, रिकॉर्डिंग तो होनी चाहिए तुम्हारी, कि कैसे बदलते हो बाहर निकल के।

(छात्र हँसते हैं)

और फिर वही तुमको प्ले कर के दिखाना चाहिए, कि देखो, कैसे बहते हो। अभी ऐसे जो मुझे आँख फाड़ कर देख रहे हो, बाहर निकलते ही फिर कैसे हो जाओगे?

जैसे कि नाव हो कोई समुन्द्र में, खुले हुए हैं उसके पाल, और चलाने वाला उसको कोई नहीं, नाविक कोई नहीं। तो कभी इधर को बह जाती है, कभी उधर को। है, अंदर बैठा हुआ है , पर अपने साथ शराब का बड़ा सा क्रेट ले कर के| सोया हुआ है और बोतल पिए जा रहा है| एक पे लिखा है धन, एक पे लिखा हुआ है समाज, एक बोतल पे लिखा है मातापिता, एक पे लिखा हुआ है करियर, एक पे लिखा हुआ है एजुकेशन, और दनादन चढ़ाये जा रहा है और सोया पड़ा है । अब हवाएँ आ रही हैं, और उसको इधर उधर ले कर के जा रही हैं ।

जब तुम उठे हुए ही नहीं हो, तो तुम्हारी नाव को तो, जो परिस्थिति आएगी, उधर को ही ले कर के जायेगी। तुम मालिक बनो, इसके लिए तुम्हें उठना तो पड़ेगा ना, सजग तो होना ही पड़ेगा ना। “स जग”, जगना। उसी जगने का नाम होश है, उसी जगने से मदद होती है, उसी होश का नाम धर्म है, उसी होश का नाम है, अपना मालिक होना। ये सारी चीज़ें एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं। दिख रहा है? बस उसी होश का ही सारा खेल है। जगो। क्या क्या नशे करते हो, ध्यान से देखो। सब नशे में हो।

प्र: कैसे?

(सब हँसते हैं)

आचार्य: जैसे पूछ रहे हो, ऐसे।

(अट्टाहस)

कोई सूखा पौधा नहीं है, बस नशे में ऐसा लग रहा है। बहुत जान है पौधे में, इतनी जल्दी नहीं जाएगा। कितनी कंडीशनिंग कर लो, कुछ भी कर लो, उसका जो 'सत्व' है, वो उसमें शेष रहेगा ही रहेगा। तुम छीन नहीं पाओगे। कुछ भी कर लो।

प्र: सर, जग कर भी क्या कर सकते हैं?

आचार्य: जो जग जाता है, वो किसी और से पूछता है कि क्या कर सकते हैं?

(छात्र हँसते हैं)

ये देखो, ये हंसने का नशा हैं; ये सब नशे ही हैं| किसी को रोने का नशा होता है। देखा होगा ऐसे लोगों को|स्त्रियाँ बहुत करती हैं ये, उन्हें रोने का नशा होता है कि हम बहुत बड़े विक्टिम हैं|और ये बहुत बड़ा अहंकार होता हैं – 'आई ऍम अ विक्टिम'। अगले जन्म मोहे बिटिया ना कीजो।

(हँसते हैं)

और ये जो हँसने का नशा होता है, "आई ऍम अ फुल स्पिरिटेड मैन", ये सब सच को ढकने वाले वक्तव्य हैं। जिनके पीछे, आदमी, सच को छुपा देता है।

जग गए हो, ये कहना बड़ी भ्रान्ति है। कोई जग जाता नहीं है। जगने की प्रक्रिया, सतत चेतना की है; कंटीन्यूअस अवेकनिंग। 'जग गए हो' जैसे स्टेटमेंट का कोई अर्थ नहीं होता। लगातार जगते रहना होता है। क्योंकि सुलाने वाली ताकतें बहुत हैं।

सुलाने वाली ताकतें बहुत हैं, और लगातार काम कर रही हैं। तो जगना भी लगातार होता है; लगातार। ‘जग गए हो’ जैसा कुछ नहीं है । फिर सो जाओगे।

....

(दिल्ली, 2012)

जवान हो, वाक़ई?

प्रश्नकर्ता: कई बार मुझे ऐसा लगता है कि ‘ज़िन्दगी का उद्देश्य क्या है? वही स्कूल जाना, कॉलेज आना, अच्छे मार्क्स लाना, फिर अच्छी नौकरी पाना, एक विलासी ज़िन्दगी बिताना। बस? क्या यही ज़िन्दगी का उद्देश्य है? और जब ये सोचता हूँ तो काफी खालीपन सा आ जाता है। उसके बाद कुछ करने का मन ही नहीं करता।’

आचार्य प्रशांत: तुम बड़े किस्मत वाले हो कि तुम्हें वह खालीपन महसूस होता है। ज़्यादातर लोगों को यह अहसास भी नहीं होता कि ज़िन्दगी कितनी खाली है। तुम्हें अधूरेपन का, खालीपन का अहसास होता है यही बड़ा सौभाग्य है। क्योंकि इस से शायद आगे का रास्ता निकल सकता है, कुछ बात बन सकती है। जिनको पता ही नहीं चल रहा हो उनका क्या होगा?

जिस बीमार को यह पता ही ना हो कि मैं बीमार हूँ, उसका मरना पक्का है, इलाज की कोई सम्भावना नहीं है। हम जैसे जीते हैं उन तरीकों में यह होना ही है कि सच हमें छू जाए और अहसास करा जाए कि मामला गड़बड़ है। यह ऐसी सी बात है कि जैसे एक अँधा आदमी हो जिसने अपने आप को यह यकीन दिला रखा हो कि मैं अँधा नहीं हूँ। मुझे सब दिखाई पड़ता है। और उसने पूछ-पूछ के रट भी लिया है सब कुछ। उसने रट लिया है कि कौन सी सड़क कहाँ जाती है और कितने कदम चल लें तो कहाँ पहूँच जायेंगे। उसने रट लिया है कि आसमान का रंग नीला होता है और नीला जैसा कोई शब्द होता है। उसने सारे रास्ते, सारे मकान, सारी दुकान – सब रट लिए हैं। तो उस से तुम

पूछो कि यहाँ से यह चौराहा कितनी दूर है, वह बता देगा जैसे उसे सब दिख रहा हो। लेकिन चलते-चलते अचानक रास्ते में एक पत्थर आ जाता है और इस पत्थर का उसे पहले से नहीं पता। उसने रट नहीं रखा कि रास्ते में एक छोटा सा पत्थर भी पड़ा है। पत्थर से चोट लगती है और वह लड़खड़ा के गिरता है। यह चोट उसे बताने के लिए काफी है कि तुम अंधे हो। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। जितनी रटने वाली चीज़ें थी वह तो सब रट ली पर सच रटा नहीं जा सकता। तुम्हें रास्ते का पत्थर ही नहीं दिखाई पड़ता। तुम अंधे हो। यह वास्तविकता की ठोकर है जो उसे लगती है। पर अँधा खड़ा होता है, कपड़े झाड़ता है और आगे बढ़ जाता है। वो अपने आप को बताना ही नहीं चाहता कि मैं अँधा हूँ। ये ठोकरें हम सबको लगती हैं।

ज़िन्दगी हम सबको यह अहसास कराती ही रहती है कि देखो तुम क्या कर रहे हो! यह बेवकूफी है! पर हम अंधे की तरह ही उठते हैं,कपड़े झाड़ते हैं और आगे बढ़ जाते हैं जैसे कुछ हुआ ही ना हो। और ज़िन्दगी हमें रोज़ देती है ठोकरें। हम उन ठोकरों से भी सीखने को तैयार नहीं हैं। क्योंकि सीखने के लिए सबसे पहले यह स्वीकार करना पड़ेगा कि, हाँ हमारी आँखें बंद हैं। थोड़ा कष्ट होता है उसमें,अहंकार को चोट लगती है। रिश्ते नातों में खिचाव आता है। तो हम यह स्वीकार नहीं करना चाहते कि आँखें बंद हैं हमारी। हम कहते हैं नहीं-नहीं, ठोकर थोड़े ही लगी है। मैं तो यूँ ही खुद ही फिसल गया था। यह कोई बड़ी बात नहीं। मुझे सब दिख रहा है। मुझे सब समझ में आता है, सब दिखता है। कोई शंकाएं नहीं हैं।

तो सबसे पहले तो शुक्रिया अदा करो कि तुम्हें बेचैनी अभी अनुभव होती है। एक समय ऐसा आ सकता है जब तुम्हें इसका अनुभव होना बंद हो जाए। यह एक तरह की पुकार है। इस पर ध्यान दोगे तो ज़िन्दगी बदल जाएगी और ध्यान नहीं दोगे तो यह पुकार धीरे-धीरे कम हो जाएगी और आखिर में गायब हो जाएगी।

मुक्ति-बोध नाम से एक कवि हुआ है उसकी एक पंक्ति है कि, 'मुझे पुकारती हुई पुकार खो गयी कहीं'। तो तुम भी क्योंकि जवान हो और पक नहीं गए हो ज़िन्दगी से इसलिए वह पुकार आती है और अहसास कराती है कि कुछ गलत हो रहा है। कुछ बहुत गलत हो रहा है। यहीं तीस-चालीस साल के हो जाओगे तो पुकार आनी भी बंद हो जाएगी। वो पुकार भी कहेगी कि अब तो इसने ज़िन्दगी ख़राब कर ही ली अब क्या करूँ। अभी कुछ उम्मीद बाकी है इसलिए वह पुकार आती है। उसके बाद एक सहूलियत वाली नौकरी लेकर बैठ जाना,एक गोरी-चिट्टी बीवी लेकर बैठ जाना, एक-दो बच्चे पैदा कर लेना और कोई पुकार-वुकार नहीं आएगी। सुबह ऑफिस जाना और शाम को लौट आना, खाना-पीना, टीवी देखना, बिस्तर पर पड़ जाना और अगले दिन फिर यही और कोई पुकार नहीं। देखते नहीं हो घरों में कैसे चलता है? उन्हें कोई पुकार आती है? उन्हें कोई खालीपन लगता है। वो भरे-पूरे हैं, सब ठीक! मौज! ज़िन्दगी ऐसी ही होती है!

अभी तुमको लग रहा है कि ये मैं कर क्या रहा हूँ, एक कहानी लिख दी गयी है और मैं उसी पर चल रहा हूँ और वह कहानी सबके लिए लिख दी गयी है, जैसे मैं किसी कथा का चरित्र हूँ जिसके संवाद पहले से ही तैयार हैं। जैसे मैं कोई कठपुतली हूँ जिसको करना क्या है वह पहले से ही तय कर दिया गया है। पैदा हो, एक धर्म बनाओ, कुछ मानयताएं रखो, कुछ दिमाग में आदर्श भर लो, इस-इस तरह की पढ़ाई करो, फिर ऐसा-वैसा कोर्स कर लो, उसके बाद एम.बी.ए कर लो, या कोई नौकरी कर लो, या सॉफ्टवेयर कंपनी में काम कर लो,फिर शादी कर लो, घर बसा लो, सामान खरीद लो, फर्नीचर खरीद लो, कार खरीद लो, फिर बच्चों का स्कूल में एडमिशन कराओ और फिर उनको भी वही सब कराओ और यह सब करके एक दिन.... मर जाओ!

तो पहले से ही तो सब कुछ पता है। तुम काहे के लिए इतनी महनत मेहनत कर रहे हो? यह तो होना ही होना है। जितने बैठे हैं उन सबके साथ होना है। तो जब यही होना है तो तुम परेशान किस लिए हो? यह पक्का है यही होगा। सबके साथ यही हो रहा है। सबके साथ यही होगा। जब तुम सब कुछ वही करते आये जो तुम्हारी स्क्रिप्ट में लिखा है तो तुम अब कैसे अलग हो जाओगे? तुम किन ख्वाबों में जी रहे हो? नहीं-नहीं, मेरी ज़िन्दगी बिल्कुल अलग होगी। नहीं-नहीं, मैं कुछ ख़ास करके दिखाऊंगा। कैसे ख़ास करके दिखा लोगे?आज तक तो तुम वही करते रहे जैसा समाज ने बताया, जैसा परिवार ने बताया, अब कैसे कुछ ख़ास हो जाएगा? पुराने रास्तों पर चलते हुए नयी मंज़िल पर कैसे पहुँच जाओगे?

पर एक ही है जो कह रहा है कि मुझे इसकी व्यर्थता दिखाई देती है, बाकियों को कुछ नहीं दिखाई देता? "इग्नोरेंस इज़ ब्लिस।"

आँख बंद करे रहो- कबूतर का तर्क़ यही होता है। बिल्ली कहाँ है? दिखाई नहीं दे रही। दिखाई नहीं दे रही तो है ही नहीं। हमारा भी वही तर्क़ है। और जिसको ज़रा भी दिखाई देगा, वह परेशान ही नहीं होगा, वह पागल हो जाएगा। वह रो उठेगा, कहेगा, "मैं कर क्या रहा हूँ? एक ज़िन्दगी है मेरी, उसके साथ मैं क्या होने दे रहा हूँ? मैं अनुमति कैसे दे सकता हूँ कि मेरे साथ वही सब कुछ होता रहे जो एक किसी मशीन के साथ होता है; उसका डिज़ाइन भी कोई और बना दे, प्रोग्राम भी कोई, उसके बटन भी कोई और, दबाए भी कोई और, और यह भी कोई और तय करे कि इसको डिस्पोस कब करना है।"

अगर तुम ज़रा भी जागोगे और अपने प्रति ज़रा भी ईमानदारी है, तो जो बेचैनी उसने कही, वह तुम सबको अनुभव होगी। और अगर नहीं अनुभव हो रही तो तुम सब मुर्दा हो। और तुम्हें पूछना होगा अपने आप से कि ऐसी कौन सी मजबूरी है जो मैं अपने साथ यह सब होने दे रहा हूँ। या होने दे रही हूँ! अगर तुम लड़की हो तो जो तुम्हारे लिए पटकथा लिखी गयी है वह और भी पक्की है, उससे तो ज़रा भी दायें-बाएं नहीं जा पाओगी। पर कहाँ तुम ये सवाल करते कि मैं यह क्यों...? और अगर जीना यही है तो जीना क्यों? फिर मर ही जाते हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जो अस्तित्ववादी विचारक हुए वो घूम फिर कर के एक ही सवाल पर आते थे – जीना क्यों? अगर यही जीवन है तो जिए क्यों? या तो जीवन कुछ और होना चाहिए वरना हमें जीने में कोई रुचि नहीं।

या तो कोई और जीवन हो। अल्बर्ट कामु का नाम सुना होगा। 'मिथ ऑफ़ सिसीफस' में उसने एक कहानी कही। वह कहता है कि एक पहाड़ है, ऊंचा। और मेरा काम यही है कि रोज़ाना एक पत्थर नीचे से ले जाओ उस पहाड़ की चोटी तक और जैसे ही वह पत्थर उस पहाड़ की चोटी पर पहुँचता है, पत्थर वापस आ जाता है नीचे। और मेरा फिर काम है कि अगले दिन मैं सुबह पत्थर चढ़ाऊँ और वह नीचे आये। और यही मेरी ज़िन्दगी है और रोज़ मुझे यही करना है। मैं जीऊँ क्यों? रोज़ मुझे कुछ ऐसा करना है जिसका कोई अर्थ नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। रोज़ एक सी ज़िन्दगी है जो अपने आप को दोहराती जा रही है, दोहराती जा रही है। और यह करते हुए मुझे अंततः मर ही जाना है। और अगर ऐसे मर ही जाना है तो आज ही क्यों नहीं?

या तो कुछ नया हो जीवन में। ऐसा जो इस दोहराव से आगे का है, जिसमें बोरियत नहीं है। ज़िन्दगी या तो मौज हो, आनंद हो,मस्ती हो, मुक्ति हो; नहीं तो कुछ नहीं होनी चाहिए। एक घिसा-पिटा जीवन। यह कोई जीवन है? और इसमें तुम्हें चंद, दो-चार खुशियां मिल जाती हैं जैसे किसी पालतू जानवर के सामने रोटी फ़ेंक दी जाए। कि जी, इसी बहाने तू जी लेगा। वैसे ही तुम्हें होली-दीवाली थोड़ी खुशियां फ़ेंक दी जाती हैं। जी ले ! तीन सौ पैसठ दिनों में दो-चार दिन तू भी जी ले। और मैं समझता हूँ कि एक जवान आदमी को सबसे पहले सवाल यही उठाना चाहिए। जवान इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि बच्चे को यह सवाल उठेगा नहीं। अभी वह नासमझ है, तुम नहीं हो नासमझ। और अभी तुम इतने बूढ़े भी नहीं हो गए कि कहो कि उम्र बीत गयी। न तुम बच्चे हो और न अभी बहुत बड़े हो गए। तुम जवान हो। और व्यर्थ है वह जवानी जिसे अपनी विवशता नहीं दिखाई देती।

ऑस्कर वाइल्ड का कथन था, "युथ इज़ लॉस्ट ओवर द यंग"।

जवानी घटती ही नहीं, होती ही नहीं। हम या तो बच्चे ही रह जाते हैं, कि मैं तो अभी मम्मी की बच्ची ही हूँ। या हम बहुत बूढ़े हो जाते हैं कि देखो अब हम बहुत समझदार हो गए हैं ये क्रांति वैगरह की बातें तो करो मत। चुप-चाप साधारण जीवन जी लो नहीं तो पीट दिए जाओगे। तो या तो हम बच्चे ही हैं, कि घर बाहर निकलना है तो 'चला जाऊं?' चार कदम भी बाहर जाना है तो 'कैसे?' तो या तो हम बच्चे ही हैं या हम बूढ़े हो गए हैं। जवानी बीच में आयी ही नहीं। बाईपास हो गयी। यह बड़ी विचित्र घटना घटी है हमारे साथ। बच्चा बूढ़ा हो गया। बिना जवान हुए और मैं खोजता हूँ, दुनिया भर में जाता हूँ, कॉलेज में जाता हूँ, यूनिवर्सिटी में जाता हूँ और खोजता हूँ कि मुझे जवान आदमी दिखाई दे, मुझे दिखता नहीं। मुझे अर्धविकसित लोग दिखाई देते हैं या मुर्दा। ऐसे दिखाई देते हैं जिनका अभी विकास ही नहीं हुआ। वो अभी ज़रा से ही हैं। हाँ, दाढ़ी मूंछ आ गयी है, कद बढ़ गया है पर हैं ज़रा से ही। या मुझे बूढ़े दिखाई देते हैं जिनमें अब कोई ऊर्जा शेष नहीं बची। जो अब कुछ कर ही नहीं सकते। जिनको अब बस मौत का इंतज़ार है। जवान आदमी दिखाई ही नहीं देता।

थोड़ी देर पहले एक चुनौती दी थी, अब एक और दे रहा हूँ। सिर्फ शरीर से ही जवान रहोगे या वास्तव में होना है? शरीर की जवानी किसी काम की नहीं होती। एक युवा मन चाहिए। वो आएगा या ऐसे ही रहना है? मैं तो नन्हा-सा, छोटा-सा बच्चा हूँ।

जिस दिन जवान होगे उस दिन बड़ी बेचैनी उठेगी। उस दिन कहोगे, मैं समर्थ, काबिल, जवान; मुझे इतनी ज़ंजीरें पहना रखी हैं? मैं बर्दाश्त करूँगा कभी इन्हे इन्हें? बिल्कुल आग उठेगी। और वह उस बेचैनी को जला देगी। गहराई से जला देगी। वो उस सबको जला देगी जो नकली है।

ये नकली तुम्हें मिल गया है, मिलना पक्का है। यह परवरिश है। असहाय होते हो न। एक छोटा बच्चा कर भी क्या सकता है? उस पर सौ मान्यताएं डाल दी जाती हैं। समाज जहाँ चाहता है उसे उस जगह भेज देता है। जो चाहता है वैसा धर्म थमा देता है। उसके मन में जिस तरीके की चाहता है बातें भर देता है। और यह सब चलता रहता है। चौदह की उम्र तक चलता रहता है। क्योंकि तुम असहाय होते हो। कर ही क्या सकते हो? पर उसके बाद ये सब जो कूड़ा-कचरा तुम्हें दे दिया होता है इसको जलाने का वक़्त आता है। और अगर उसे जला नहीं रहे हो तो जवान हो नहीं। यह बात मैं बारह साल के बच्चे से नहीं कहूंगा। क्योंकि उसका निर्भर होना पक्का है दूसरों पर। जब दूसरों पर निर्भर हो तो दूसरों के कहे अनुसार चलना भी पड़ेगा। तो इसलिए मैं उस से यह बात करूँगा ही नहीं।

यही है बेचैनी। जो सब भरा हुआ है न मन में। जो सब दे दिया है न दूसरों ने, वही खालीपन है। दूसरों का बहुत कुछ है, अपने का आभाव है।

यही वह रिक्तता है। और यह रिक्तता कुछ लाने से नहीं भरेगी। यह जलाने से भरेगी। जो गन्दगी है उसे जला दो। किसी चीज़ की ज़रुरत नहीं है। जो पहले ही तुम्हारे मन में बैठा दिया गया है उसे जला दो। सारी बेचैनी हट जाएगी। सब तोड़ दो क्योंकि जो कुछ है वह ज़ंजीरें ही हैं। जो भी टूटेगा वही ज़ंजीर है। तोड़ दो उसे। बिल्कुल बेख़ौफ़ हो कर। मत सोचना कि यह चुनूँ या वह। कुछ बचाने के लिए नहीं है। जाने दो,सब जाने दो।

जवान होना बच्चों का खेल नहीं है।

....

(उत्तर प्रदेश, 2013)

जवानी अकेले दहाड़ती है शेर की तरह

आचार्य प्रशांत: मुझे बड़ी ख़ुशी होती इस सवाल का कोई सकरात्मक जवाब देकर। सवाल तुमने इस तरीके से पूछा है कि लगता है, “लक्ष्य ‘मेरे’ हैं और दुनिया उनमें बाधा डाल रही है। तो मैं क्या करूँ?” लेकिन बात थोड़ी-सी इससे अलग है। बात असल में यह है कि वो लक्ष्य भी तुम्हारे नहीं हैं, वो लक्ष्य भी दुनिया ने ही दिए हैं, इसी कारण दुनिया उनमें बाधा डाल पा रही है।

जो लक्ष्य पूर्णतया तुम्हारा होता है, दुनिया उसमें कभी बाधा डाल ही नहीं सकती।

दुनिया तुम्हारे लक्ष्यों में बाधा डाल देती है ना? तुम लक्ष्य बनाते हो तो लक्ष्य बदल भी जाते हैं। उसका कारण यह है कि वो जो लक्ष्य हैं, वो तुम्हारे हैं ही नहीं, वो भी तुम्हें दुनिया ने ही दिए हैं। तुम उन्हें बस अपना मान कर बैठ गए हो कि 'मेरे' लक्ष्य हैं। पर वो मूलतः तुम्हारे लक्ष्य हैं हीं नहीं, वो दुनिया ने ही तुम्हें दे दिए हैं और तुमने धोख़े से उन्हें अपना मान लिया है।

इस पर गौर करना ईमानदारी से– जब दुनिया के दिए हुए लक्ष्यों को हटा दोगे तब शायद कुछ ऐसा मिलेगा, ऐसा रचेगा जो पूर्णतया तुम्हारा है। फिर उसमें दुनिया कोई दखल नहीं डाल सकती।

अभी तो तुम देखो ना तुम किन बातों को अपना लक्ष्य मान कर बैठे रहते हो। तुम कहते हो कि मुझे अंक ज़्यादा लेकर आने हैं। यही कहते हो ना कि अंक ज़्यादा लाने हैं, यह मेरा लक्ष्य है? अभी परिणाम निकले थे, तो सब घूम रहे थे। कुछ लोग निरुत्तीर्ण हुए तो उदास घूम रहे थे, महीने भर पहले की बात है। तो मैंने पूछा कि उदासी का कारण क्या है? जवाब मिला कि परिणाम खराब आ गया है, अंक अच्छे नहीं आए हैं।

मैंने पूछा कि यह जो मार्कशीट है, अगर इसको कहीं पर ले जा कर बस रख दिया जाए, छिपा कर और यह पूरा आश्वासन हो कि ज़िन्दगी भर कोई इसे मांगेगा नहीं, किसी को दिखानी नहीं पड़ेगी, न माँ–बाप को, न दोस्तों को, न किसी एम्प्लॉयर को, नियोक्ता को, किसी को यह दिखानी नहीं पड़ेगी, तो क्या तब भी इतने ही उदास रहोगे? तो वो बोले, "नहीं, तब काहे की उदासी है, तब तो कोई दिक्कत ही नहीं है। अभी दिक्कत ही यही है कि यह मार्कशीट घर पर दिखानी पड़ेगी"।

तो पढ़ने का भी जो उद्देश्य बनाया कि अंक लेकर आने हैं, वो उद्देश्य क्या तुम्हारे अपने लिए था? किसके लिए था? दूसरों को दिखाने के लिए था। वो भी तुम्हारा अपना कहाँ है? तुम कहते हो कि तुम्हें नौकरी करनी है। ईमानदारी से देखो, अगर तुमने नौकरी पाने का लक्ष्य बनाया हुआ है, तो क्या वाकई अपने लिए ही बनाया हुआ है? तुम कहते हो पैसे कमाने हैं। तुम्हारा काम अभी ठीक चल रहा होगा, किसी का पाँच हज़ार में, किसी का चार हज़ार में, किसी का सात हज़ार में। इससे ज़्यादा तुम्हारे खर्चे होंगे क्या? पर तुम कहते हो कि इतने पैसे की नौकरी करनी है, उतने पैसे की नौकरी करनी है। वो जो पैसा तुम कमान चाहते हो, क्या वाकई अपने लिए कमाना चाहते हो? नहीं, वो इसीलिए कमाना चाहते हो ताकि तुम सबको बता सको, अन्यथा उस पैसे का तुम्हारे लिए कोई उपयोग है नहीं है।

तुम जितने लक्ष्ये बना रहे हो वो सारे के सारे लक्ष्ये तुम्हें दुनिया ने दिए हैं और दुनिया को ही दिखाने के लिए तुम उन लक्ष्यों को पाना चाहते हो। यही कारण है कि दुनिया उनमें भांजी भी मार जाती है। समझ रहे हो बात को?

अपने लिए तुम कुछ भी करते कहाँ हो। तुम तो जो करते हो दूसरों के लिए ही करते हो। अपने लिए तुम कुछ भी करते ही कहाँ हो, करते हो? कभी अपने लिए कुछ करके तो देखो, जो पूरे-पूरे तरीके से तुम्हारी अपनी समझ से निकला हो, फिर दुनिया परेशान नहीं कर पायेगी। बिलकुल परेशान नहीं कर पाएगी, यकीन मानो।

दुनिया अपनी राह चलती रहेगी, तुम्हें दुनिया से कोई शिकायत भी नहीं होगी तुम अपना काम करते रहोगे। बिल्कुल बेपरवाह रहोगे। तुम्हें लड़ने कि भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी कि मैं दुनिया से लड़ रहा हूँ।

पर पहले अपने लक्ष्यों कि हकीकत को देखो कि मेरे लक्ष्य क्या वाकई मेरे लक्ष्य हैं, या मैं किसी और के दिए हुए लक्ष्यों का पीछा कर रहा हूँ? और अगर किसी और के दिए हुए लक्ष्यों का पीछा कर रहे हो तो तुम कभी खुश नहीं रह पाओगे। लक्ष्य किसी और के तो ख़ुशी तुम्हें कैसे हो सकती है? बात समझ रहे हो?

मेरा एक नौकर है, मैं उसको बाज़ार भेजूँ और कहूँ, "जा ये लेकर आ"। उसने सामान लाकर अपना लक्ष्य पूरा भी कर लिया, तो इसमें उसे क्या मिला? जो मिला, किसे मिला? मुझे मिला। जब लक्ष्य ही उसका नहीं तो उसे कुछ भी मिल कैसे सकता है? समझ में आ रही है बात? अपने लक्ष्य ढूंढो। पहला लक्ष्य तो यही बनाओ कि हल्का होना है, मन को हल्का बनाना है।

प्रश्नकर्ता: सर जो हम लक्ष्य बनाते हैं वाकई में वे हमारे नहीं हैं, पर उससे भी तो हमारा फ़ायदा हो रहा है।

आचार्य: तुम्हें कैसे पता कि तुम्हारा फ़ायदा हो रहा है? एक छोटा-सा बच्चा होता है, उसे आवश्यकता होती है कि कोई दूसरा उसका फ़ायदा नुक़सान सोचे। एक छोटा-सा बच्चा होता है, पाँच साल का, उसे बिल्कुल ज़रूरत होती

है कि कोई उसकी उंगली थामे। पर तुम में से कोई यहाँ छोटा-सा बच्चा नहीं है। तुम में से कोई नहीं है यहाँ पाँच साल का, आठ साल का। कोई अठारह का है यहाँ पर, कोई बीस का है। बीस से ऊपर वाले भी होंगे।

तुम्हारा फ़ायदा कहाँ है कहाँ नहीं, ये खुद जानो ना या अभी भी किसी उंगली पकड़ कर चलने का इरादा है? शारीरिक रूप से तो पूरी तरह युवा हो गए हो, पूरे तरीके से, पर मानसिक रूप से डरते हो कि हम बड़े कैसे हो जाएँ। तो मानसिक रूप से अभी पाँच साल का बच्चा बने रहना चाहते हो कि कोई और आ कर बता दे कि मैं क्या करूँ और क्या ना करूँ। शरीर पूरी तरह से गवाही दे रहा है, चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है कि आप पूर्ण रूप से बड़े हो गए है, आप पुरुष हैं, आप स्त्री हैं, लेकिन मन धोखे में रहना चाहता है। मन कहता है, "नहीं, नहीं कोई और हमारे हाथ थाम कर चले, तभी ठीक है"।

तुम्हारी उम्र में भगत सिंह फाँसी पर चढ़ चुके थे। वो किसी से पूछने गए थे कि मैं बम फेंकूँ तो इसमें मेरा फ़ायदा है या नुकसान है? और तुम्हारे तर्क पर चले होते तो हो गया था काम। तुम्हारे तर्क पर चले होते तो फिर फ़ोन मिला रहे होते कि पापा बम फेकें या ना फेकें। अपने पाँव पर खड़े हो, अपनी आँखों से देखो, अपने दिमाग से समझो। समझ रहे हो बात को? अपने पाँव पर खड़े हो, अपनी आँखों से देखो, अपने दिमाग से समझो। कोई बहानेबाज़ी नहीं चलेगी। पर क्या करें आदतें बिगड़ गईं हैं। ज़िन्दगी भर बैसाखी पर चले हैं, अब अपने पाँव पर खड़ा होने को बोलो तो बड़ा कष्ट होता है। हम तो बच्चे ही बने रहना चाहते हैं। बच्चे बने रहने में बड़ा सुख है। बच्चे बने रहने में बड़ा सुख है।

बहुत पहले एक फ़िल्म आयी थी, 'राजा-बाबू'। उसमें शक्ति कपूर क्या बोलता है? "मैं तो नन्हा-सा, मुन्ना-सा, छोटा-सा बच्चा हूँ", और यही तुम्हारा नारा है। यह तुम्हारे जीवन का नारा है। उसका जो चरित्र था वो यही कहता रहता है, "मैं तो नन्हा-सा, मुन्ना-सा, छोटा-सा बच्चा हूँ"। तो रोज़ सुबह उठा करो और यही नारा लगाया करो- "हम तो शिशु हैं अभी, शिशु छोटे-छोटे"। मानसिक रूप से तुम बच्चे ही बने रहना चाहते हो। मानसिक रूप से बड़े नहीं होना चाहते। और कोई बड़े होने की बात करे तो भाग और लोगे।

जवानी यह सब बातें नहीं करती कि दूसरे हमारा फ़ायदा देखें। जवानी अपना रास्ता खुद बनाती है। वो आलसी नहीं होती, पहाड़ काट डालती है। झुंड में नहीं चलती जवानी, शेर की तरह चलती है। अकेले होने के डर से दोस्त-यार नहीं इकट्ठा नहीं करती।

शेर देखा है कभी? शान से अकेले चल रहा होता है। और भेड़ें क्या करती हैं?(व्यंग्य करते हुए) "आओ, आओ, आओ, सब मिल कर मास बंक करते हैं"। शेर बनना है? बनना है शेरनी, जवान शेरनी? इंसान शेरों का शेर होता है। शेर तो फिर भी अपनी आदतों का गुलाम होता है। इंसान में तो यह ताकत है कि वो आदतों का भी गुलाम ना हो। शेरों का शेर है इंसान।

....

(उत्तर प्रदेश, 2013)

अपने बंधन तुम ख़ुद हो

प्रश्नकर्ता: सर, कहते हैं कि अस्वतन्त्रता को जानना, स्वतन्त्रता की तरफ पहला कदम होता है। लेकिन स्वतन्त्र तो हम हो ही नहीं पा रहे। तो उस अस्वतन्त्रता को जानने का फायदा क्या हुआ? बल्कि उससे तो पहले ही हम बढ़िया जी रहे थे। जानने के बाद हमारे मन में और हमारे जीवन में हलचल हुई, हमें गुस्सा आया कि हम ये कैसी जिंदगी जी रहे हैं। हमने दस बार हाथ पैर मारे कि हम अपनी जिंदगी से कुछ सीखेंगे, लेकिन हम कर ही नहीं पाये। उससे बढ़िया तो अस्वतन्त्रता में ही जीना हुआ क्योंकि उसमें हम शांत थे, सामान्य जी रहे थे। हम थोड़ा असामान्य भी हो जाएँगे तो इसमें कुछ जानने का फ़ायदा क्या हुआ? उस वक़्त इस कदम का फ़ायदा क्या हुआ?

आचार्य प्रशांत: तुम इसमें एक चीज़ मानकर चल रहे हो कि तुम जो हो, वो बदल नहीं रहा है। तुम कह रहे हो कि हम पहले नहीं जानते थे कि हम बंधन में हैं, फिर हम जान गए कि हम बंधन में हैं। और तुम कह रहे हो कि जान कर भी अगर परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हैं कि बंधन से मुक्त नहीं हो सकते तो जानने का फायदा क्या? उससे तो सिर्फ तनाव आता है, गुस्सा आता है, पता और चल जाता है कि मैं बंधन में हूँ। इसमें तुमने एक बड़ी कल्पना कर ली है। एक बात मान रहे हो- वो ये है कि तुम कुछ हो। अपने शब्दों पर ध्यान दो कि 'हम बंधन में हैं'। 'हमने कुछ जान लिया, पर मुक्त नहीं हुए तो क्या हो गया?' ये जो 'हम' हैं, ये क्या है? जब तुम कहते हो कि 'मैं बंधन में हूँ', ये जो 'मैं' है, ये क्या है? जब तुम कहते हो कि 'मैं बंधन में हूँ', तो ये कौन है जो बंधन में है?

प्र: सर, इस बात को मैं अपनी ज़िन्दगी से जोड़ना चाहूँगा।

आचार्य: आगे मत भागो। रूको! जो बात कही जा रही है उसको समझो, कहानियों का कोई अंत नहीं है। जो उसका मूल मुद्दा है उसको समझो। ये कौन है जिसको तुम कहते हो कि बंधन में हैं? जिसको स्वतन्त्रता नहीं है, ये कौन है?

प्र: सर, हम हैं।

आचार्य: 'हम' माने क्या ?

प्र: सर, अब अपने नाम को तो अपने नाम से ही तो सम्बोधित करेंगे।

आचार्य: कौन है वो? क्या तुम्हारा शरीर बंधन में है? क्या किसी ने बेड़ियाँ डाल रखी हैं?

प्र: सर, शरीर तो बंधन में है ही नहीं।

आचार्य: तो क्या सोच है जो बंधन में है? और तुम क्या हो, ये भी तुम्हारी अपनी एक सोच ही है, उसके अलावा और तो कुछ नहीं है। तुम क्या हो, ये भी तुम्हारी अपनी एक सोच ही है। ये कोई एक चीज़ नहीं है, जो स्थाई है, जो बदल नहीं रही है। जब तुम जान जाते हो कि 'मेरी ये हालत है', तुमने कहा कि तुम खुद भी अपनी एक सोच ही हो'। तुम क्या हो इस बारे में तुम सोचते ही हो,वो भी एक विचार ही है । जब तुम जान जाते हो कि अभी मेरी हालत खराब है, तो क्या तुम्हारी सोच वही रह गयी जो पहले थी, या बदल गयी? एक बार तुम जान गए कि स्थिति ऐसी-ऐसी है और ये सब चल रहा है, तो तुम अब वही हो जो जानने से पहले थे या अब बदल गए?

प्र: बदल गए।

आचार्य: बदल गए ना क्योंकि तुम ख्याल ही तो हो न! बदलाव आ गया। ठीक है। बंधन में हो, ये तुम सोच रहे थे और बदलाव आ गया। सोच बदल गयी, तो क्या अब बंधन बचा है? तुम सोचते थे कि मैं ये हूँ और जो तुम अपने बारे में सोचते थे, बंधन वही था। तुमने एक बार जान लिया कि यही बंधन है, सोच बदल गयी, तो बंधन अब बचा कहाँ। तुमने सवाल पूछा कि मैंने जान भी लिया कि मैं बंधन में हूँ, तो उससे फर्क क्या पड़ता है? बंधन तो अपनी जगह कायम है और मैंने कहा कि तुम एक कल्पना कर रहे हो कि तुम हो और बंधन तुमसे अलग है। और ये बड़ी जबरदस्त कल्पना है। तुम जो कहते हो कि 'मैं हूँ' जो बंधन में है। तुम नहीं बंधन में हो, तुम ही बंधन हो। तुम्हारी अपने बारे में जो सोच है, वही बंधी हुई है और उसी का नाम बंधन है। अगर वो सोच बदल गयी,तो अब बंधन बचा कहाँ? अब बंधन नहीं बचा। तो जानना ही अपने आप में काफी है और पूरा बदलाव है। पर तुम्हारा ही नहीं, हम सबका दावा यही रहता है कि जान तो लिया पर कुछ हो नहीं रहा। हमने जाना ही नहीं है। तुमने जाना ही नहीं है और तुम जान इसी कारण नहीं पाये हो क्योंकि तुम्हारा पूरा ध्यान 'होने' पर है। तुम्हारा पूरा ध्यान इस बात पर है कि 'कुछ हो'। और क्या हो? ध्यान देना कि तुम क्या चाहते हो, कि क्या हो? तुम कहते हो कि वो हो जो मुझे अच्छा लगे, जो मुझे मुक्त कर दे। तुम क्या हो? तुम खुद बंधे हुए हो अपनी सोच से और तुम कह रहे हो कि मुझे कुछ ऐसा मिल जाए जो मुक्ति है। बंधन मुक्ति चाह रहा है। बंधन कभी मुक्ति चाह सकता है? बंधन को अगर मुक्ति मिल जाए, तो बंधन को मरना पड़ेगा। तुम जो हो, वो रहते हुए तुम्हें कभी मुक्ति नहीं मिल सकती क्योंकि तुम खुद ही बंधन हो। तुम अपने बारे में जो कुछ सोचते हो, तुम खुद ही तो बंधन हो। बंधन तुम पर कोई बाहरी चीज़ नहीं है जो डाल दिया गया है। तुम्हारी खुद के बारे में धारणा 'सेल्फ-कॉँन्सेप्ट' ही तुम्हारा बंधन है। पर तुम कहते हो कि ये ऐसी ही बनी रहे। मैं वही रहूँ जो मैं हूँ और मुक्ति भी मिल जाए। ये वैसी ही बात है कि अंधेरा कायम रहे और रोशनी भी हो जाये। ये वैसी ही बात है कि एक कमरे में अंधेरा हो और वो इच्छा कर रहा है कि मैं तो बचा रहूँ और साथ में रोशनी भी हो जाए। वैसे ही तुम्हारी भी इच्छा रहती है कि सर मुझे मुक्ति क्यों नहीं मिल रही है। तुम खुद बंधन हो। तुम्हें मुक्ति कैसे मिल सकती है? तुम क्या हो? तुम अपने बारे में अपना विचार हो। वो बदल गया, मुक्ति मिल गयी और कुछ नहीं बदलना है। पर वो तुम्हें मिलेगी नहीं क्योंकि तुमने ठान रखा है कि मैं सत्रों (अद्वैत बोध सत्र) में न आऊँ, मैं कहीं भी जाऊँ, मैं कुछ भी करूँ, कैसा भी हो जाए, मैं पा तो लूँ, पर मैं बदलूँ नहीं। मुझे कुछ मिल जाये, संग्रह हो जाये, पर मैं बदलूँ नहीं। ये वैसी सी ही बात है कि कैंसर का एक मरीज डॉक्टर के पास जाए और कहे कि आपको मुझे जो देना है दे दो, बस मुझसे कैंसर मत छीनना। आप मुझे सारी दवाइयाँ दे दो पर मुझसे कैंसर मत छीनना। ऐसी तुम्हारी हालत है। तुम कहते हो कि मैं नहीं बदलूँगा बाकी मुझे बहुत सारा ज्ञान दे दो, बहुत सारी बातें समझा दो पर मैं बदलूँगा नहीं।

तुम कहते हो कि मुझे मुक्ति दे दो, पर मैं बदलूँगा नहीं। तुम क्या हो? तुम बंधन हो। तो तुम्हें मुक्ति मिल सकती है,

पर तुम्हारी इच्छा ऐसी ही है कि कोई मुझे मुक्ति दे दो, पर मैं बदलूँ नहीं। ये तो तुमने बड़ी असम्भव मांग रखी हुई है। ये तुम्हारे काम नहीं आएगी। जब तुम्हारे काम नहीं आएगी, तो तब तुम ये नहीं कहोगे कि मैं ये सब अपनी नासमझी के कारण भुगत रहा हूँ, तब तुम कहोगे मैंने इतने दिनों तक ये सब बातें सुनी, इन सब सत्रों में बैठा पर मुझे कुछ नहीं मिला। तुम कहोगे कि तीन साल हो गए पर मुझे कुछ मिला नहीं। तुम्हें कुछ कैसे मिल सकता है जब तक तुम कायम हो। तो तुम्हें फ़ायदा कैसे हो सकता है? बात समझ आ रही है? क्योंकि ये जो 'मैं' है, यही तुम्हारी बीमारी है। जिसको तुम 'मैं' कहते हो, यही तो तुम्हारी बीमारी है। तुमने चाह भी कैसे लिया कि मुझे मुक्ति मिल जाये। इस 'मुझे' को तो कभी मुक्ति मिल ही नहीं सकती। क्योंकि ये जो 'मैं' है, ये जो 'मुझे' है, ये खुद ही बंधनों की पूरी गाँठ है। तुम इसको तो बदलना ही नहीं चाहते क्योंकि इसको बदलने से तुम्हें डर लगता है। इसी के साथ तुमने अपनी पूरी पहचान कर रखी है। ये बदले तो तुम्हें बड़ा गहरा डर लगता है। तुम्हें ऐसा डर लगता है जैसे तुम मर ही जायोगे, गायब ही हो जायोगे। और ये लाजमी है क्योंकि इस 'मैं' से ही तो तुमने अपना सब कुछ जोड़ रखा है। तुम कहते हो यही तो 'मैं हूं', ये बदल गया तो 'मैं' बचा कहाँ। तुम इस बात को ठीक से नहीं देख पा रहे कि ये जो 'मैं' है, ये जो तुमने अपने बारे में पूरा ख्याल बना रखा है, इसी का नाम तो बंधन है, इसी का नाम तो बीमारी है, यही तो तुम्हारे ऊपर बोझ की तरह है।

एक आदमी ने बहुत सारा बोझ उठा रखा है और वो आए और कहे कि मुझे कुछ ऐसा दे दो कि ये बोझ कम हो जाये। वो क्या करेगा? वो अपना बोझ कम कर रहा है, या और बढ़ा रहा है? वही तुम्हारी हालत है। तुम मेरे पास आते हो, कहते हो कि मुझे कुछ और दे दो कि ये बोझ कम हो जाये। अभी भी मुझसे से बात कर रहे हो, तुममें से ज़्यादातर लोग कुछ ले कर जायेंगे। यही तुमने सीखा है कि सबसे कुछ लेना होता है। पर जो भी तुम लोगे उससे तुम्हारा बोझ बढ़ेगा ही। तुमसे अगर दो साल से मिल रहा हूँ तो लगातार यही कह रहा हूँ कि कुछ लो मत, पहले जो उठा रखा है उसको छोड़ दो। सारी प्रक्रिया कुछ और पाने की नहीं है। जो बोझ पहले ही बैठा है उससे मुक्त हो जाने की है। पर तुम्हारी कोशिश ये है कि ये बोझ तो ऐसे ही बना रहे जैसा ये है, तुम कुछ और दे दो। नतीजा यह है दिन पर दिन तुम हल्के होने की जगह और भारी होते जा रहे हो। और फिर तुम्हें चिढ़ उठती है। तुम कहते हो कि फ़ायदा क्या हुआ? हम हल्के होने की जगह और भारी होते जा रहे हैं। पर तुम अपनी करतूत तो देखो कि तुम कर क्या रहे हो। तुम कहते हो कि इस बोझ के साथ तो मैं गहराई से जुड़ा हुआ हूँ, इसको मैं हल्का कैसे करूँगा। तुम पक्का करके आते हो कि 'मैं' जो हूँ, 'मैं' बदलूंगा नहीं, कुछ और मुझे दे दो। जो भी तुम्हें मिलता जा रहा है, तुम उसे अपने बोझ में जोड़ते जा रहे हो और बोझ लगातार बढ़ता ही चला जा रहा है। तुम जा कर कोई और सत्र अटेंड करो, इलेक्ट्रिकल का,फिजिक्स का, वहाँ पर तुम कुछ इकट्ठा कर सकते हो। पता चलेगा कि जब तुम कमरे में घुसे थे और जब बाहर निकले,इस दौरान तुमने कुछ इकट्ठा कर लिया। वो बात वहाँ चलेगी। यहाँ पर तुम इकट्ठा करोगे तो बड़ी नासमझी कर रहे हो। यहाँ तुम्हें इकट्ठा नहीं करना है, यहाँ तुमने जो कुछ इकट्ठा कर रखा है, उसको छोड़ना है। तुम बड़ी नाजायज़ मांग करते रहते हो। तुम कहते हो कि बोझ छोड़ना नहीं है, हल्का नहीं करना है। बेड़ियाँ तोड़नी नहीं है फिर भी मुक्त होना है। और जब मांग पूरी नहीं होती,तब भी इतनी ईमानदारी नहीं कि अपनी ओर देखो और कहो

कि ‘कुछ भी होगा कैसे? बोझ को तो मैंने खुद दोनों हाथों से जकड़ रखा है, मैं हल्का हो कैसे जाऊँगा’।

मैं किस बोझ की बात कर रहा हूँ? ये क्या बोझ है जो तुमने पकड़ रखा है, जिसको तुम बंधन कहते हो? ये कौन सा बोझ है? ये क्या है? क्या है तुम्हारा बंधन? जो तुमने अपने आप को बोल रखा है कि – ये सब ‘मैं’ हूँ। तुमने अपने आप को बोल रखा है कि मुझे ये जिम्मेदारी निभानी ही निभानी है। और तुमने पक्का कर रखा है कि इस चीज़ को तो नहीं छोडूंगा। बोझ है वो सब कुछ जो तुमने दुनिया के बारे में मान ही रखा है। अभी मैं तुमसे कहूँ कि क्या ‘करियर’ शब्द को जानते हो? तुम कहोगे कि हाँ! बिल्कुल पता है। मैं कहूँ कि ‘पैसे’ शब्द का अर्थ जानते हो? तुम कहोगे बिल्कुल पता है। ‘पैसे कमाने’ का अर्थ जानते हो? पता है। प्रेम? बिल्कुल पता है। शादी? बिल्कुल पता है। ईश्वर? बिल्कुल पता है। परिवार? बिल्कुल पता है।

यही बोझ है – जो तुम्हें कुछ पता नहीं है पर तुमने अपने आप को सौ बातें बोल रखी हैं कि मुझे पता है। उनसे तुम भरे हुए हो,उनसे तुम पूरे तरीके से भरे हुए हो – वही बंधन है। उसको तुम छोड़ना नहीं चाहते। ये ऐसी ही बात है कि तुमने पहले से ही तय कर रखा है कि मुझे करना क्या है। घर परिवार ने तुमको बता रखा ह ; टी.वी., मीडिया, अखबार ने तुमको बता रखा है ; इन सब ने तुम्हें बता रखा है कि नाक की सीध में चलते चले जाओ। अब तुम तय करके आये हो कि ये तो मानना ही मानना है, इस चीज से पीछे नहीं हटूँगा। अब कोई आता है और ये कहता है कि नाक की सीध में कुछ नहीं है,बस तुम्हारी बर्बादी है। तुम कहते हो कि नाक की सीध में तो जाना है पर कुछ ऐसा बताइये कि बर्बादी भी ना हो। तुमसे कहा जा रहा है कि सिर्फ एक तरीका है कि नाक की सीध में जाना बंद करो, थोड़ा सर घुमाओ, पूरी दुनिया को देखो; तुम कहते हो कि ये तो नहीं कर सकते। तुम कहते हो ये तो पक्का है कि चलना हमें सीधा ही है। क्योंकि ये हमें हमारे इतिहास ने बता रखा है कि यही करो,तो वो तो हम करेंगे ही करेंगे। आप कुछ और भी बता दो जिससे हमारा फ़ायदा हो जाए।

तुम्हारा फ़ायदा कैसे हो जाये? तुमने जब पहले से ही एक मान्यता बाँध ही रखी है और तुम उस पर अडिग हो कि सीधे तो मुझे चलते ही जाना है, वो नहीं बदलेगा, वही ‘मैं’ हूँ, वही तुम्हारा ‘मैं’ है। तुम्हारा बंधन यही है कि सीधे तो मुझे चलते ही जाना है, उसके अलावा कुछ और दे दो। अरे जब तुम्हें सीधे चलते ही जाना है तो फिर तुम्हें और दे कर तुम्हारा कुछ और भी फ़ायदा हो सकता है क्या? तुम चाहते क्या हो? तुम चाह रहे हो कि सीधे हम जा रहे हैं एक गति से, तो हमें कुछ ऐसा दे दो कि हमारी गति भी दुगनी हो जाये। और तुम बहुत खुश होते हो जब हम तुम्हें कुछ ऐसी चीज दे दें। तुम जा रहे हो आत्महत्या के रास्ते पर, और तुम कह रहे हो कि हमें कुछ ऐसा दे दो कि रास्ता साफ़ हो जाये। जूते अच्छे मिल जायें ताकि गति बढ़ जाए। हम तुम्हारे दुश्मन हैं क्या कि हम तुम्हें कुछ ऐसा दे दें। पर मांग

तुम्हारी पूरी यही है। हमें कुछ ऐसा दे दो कि हम जो चाहते हैं वो जल्दी से हो सके। तुम चाहते हो आत्महत्या, वही तुम्हारा बंधन है। उसको छोड़ने को तैयार तो हो। जिस बात से तुम भरे हुए हो, उस बात से पहले खाली तो हो। तुमसे कहा जाए कि तुम क्यों सीधे लगातार जाना चाहते हो? तुम जानते हो कि तुम क्या उत्तर देते हो । तुम कहते हो 'मैं' वो हूँ जो सीधे चलता है। ये तुम्हारी अपनी परिभाषा है। तुम कहते हो कि अगर मैंने सीधे चलना छोड़ दिया, तो 'मैं' 'मैं' ही नहीं रहूँगा। क्योंकि 'मैं' हूँ कौन? वो जो सीधे चलता है। तो ये तो मैं नहीं बदलने दूँगा । कुछ और बता दो। कैंसर मैं ठीक नहीं होने दूँगा, कुछ और बता दो। तुम्हें बहुत अच्छा लगे वैसे-वैसे ही बात है कि तुम आओ कि कैंसर का इलाज कराना है, और मैं तुमसे कहूँ कि तुम एक काम करो, सारे बाल साफ़ कर लो। तुम कहोगे बहुत बढ़िया, ये अच्छी चीज पता चली। मैं कहूँ कि जाओ और दो किलोमीटर दौड़ लगाकर कर आ जाओ। अरे बहुत अच्छा मिला। सब कुछ कर लो; हमसे नचवा लो, गवा लो, दौड़ लगवालो, गंजा कर दो, बस एक काम मत करना कि कैंसर छोड़ो। वो हम नहीं छोड़ सकते क्योंकि 'मैं कौन हूँ' कि मेरी अपनी परिभाषा क्या है? मैं कौन? जिसे कैंसर है। वो मैं नहीं छोड़ सकता। इस 'मैं' को मैं नहीं त्याग सकता बाकी मुझसे जो कराना है करा लो। हर नाच नाचने को तैयार पर कैंसर नहीं छोडूंगा। बात कुछ समझ में आ रही है?

तुम यहाँ कुछ पाने नहीं आ सकते। तुम ये नहीं कह सकते कि मैं तो वही रहूँगा जो मैं हूँ पर यहाँ से जब निकलूंगा तो कुछ पा कर निकलूंगा। तुम यहाँ सिर्फ छोड़ने आ सकते हो, पाने नहीं। इसी छोड़ने का नाम मुक्ति है, इसी छोड़ने का नाम स्वतन्त्रता है। जो छोड़ने को तैयार नहीं है, उसको यहाँ क्या लाभ हो जाना है ?

छोड़ने में डर लगेगा क्योंकि छोड़ने में असुरक्षा है। छोड़ने में आदत टूटती है, तो डर लगता है। छोड़ने का अर्थ है कि अभी तक जैसा मैं रहा हूँ, जिस तरीके से जीता रहा हूँ उस ढर्रे को छोड़ दूँ। वो करने में तो डर लगता ही है। पर अगर उस डर का सामना नहीं कर रहे, उस डर को अगर समझ नहीं रहे, तो वैसे भी तुम्हें क्या लाभ हो जाना है?

प्र: लेकिन छोड़ने में नुकसान कितना है?

आचार्य: कैंसर को कैंसर छोड़ने में क्या दिखेगा? उसे तो नुकसान ही दिखेगा क्योंकि कैंसर का अगर कैंसर छूट गया, तो कैंसर मर गया। चोर का जो मन है जो पूरी तरह से संस्कारित है चोरी के लिए, उसे चोरी छोड़ने में क्या दिखेगा, फ़ायदा या नुकसान? तो तुम्हें तो नुकसान ही दिखेगा। पर वो नुकसान भी तो देख लो जो लगातार तुम्हें हो ही रहा है। तुम्हें ये तो कल्पना आती है कि छोड़ दिया तो नुकसान होगा , जो काल्पनिक बात है । होगा कि नहीं होगा, पता नहीं और अगर होगा, तो उसे नुकसान कहा जा सकता है या सच में फ़ायदा है, ये भी पता नहीं है। पर अभी जो

तुम्हें हो रहा है, वो तुम्हें अभी नहीं दिखता ।

अभी तुम्हारी जिंदगी कैसी है, ये तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। तुमसे सीधा बैठा नहीं जाता, तुमसे दो मिनट को बात सुनी नहीं जाती, ध्यान तुम्हारा लगातार इधर-उधर होता रहता है, इतनी उम्र में आकर भी परिपक्वता तुम्हें छू तक नहीं गयी है, जवान हो पर मन विकसित नहीं हो पाया है। बच्चे जैसा ही रह गए सिकुड़ के, सहम के। ये नुकसान तुमको नहीं दिख रहा है कि इस रास्ते पर चल कर मैंने कितना नुकसान अपना कर लिया है। जो नुकसान सामने है, प्रत्यक्ष है, वो नहीं दिख रहा। ? तुम किसी और नुकसान की कल्पना करोगे कि कोई और नुकसान हो जायेगा। इतना भयानक नुकसान हो रहा है, जीवन ही खराब हो रहा है, वो नहीं दिखता? आँख खोलो और देखो कि जिस तरीके से चल रहे हो उसमें लगातार नुकसान कितना कर रहे हो अपना । दिन पर दिन कितना नुकसान करते जा रहे हो। किसी काल्पनिक नुकसान की सोच में मत पड़े रहो। थोड़ा सा आँख खोल कर के ध्यान से देख लिया करो कि सुबह-शाम क्या कर रहे हो। इसे देख लिया करो और पूछा करो अपने आप से कि क्या जिंदगी ऐसी ही होनी चाहिए? ऐसी ही हो सकती है? कुछ और नहीं हो सकती थी? क्या मैं वास्तव में वही हूँ जिसने अपनी पूरी संभावना को पा लिया है? पूरी भी छोड़ो, जिसने थोड़ा भी अपने आप को खेलने दिया है? फिर आग लगेगी, फिर पता चलेगा कि कितने नुकसान में जी रहे हो। अभी तो तुम देखते भी नहीं हो कि इन रास्तों में कितनी बर्बादी है। तुम कहते हो कि सब चल रहे हैं इसी पर, मुझे भी चलने दो। सब बर्बाद हो रहे हैं, तो बर्बाद होना सामान्य है। जब सामान्य काम ही यही है कि सब बर्बाद हो रहे हैं, तो मुझे भी हो जाने दो। क्या फर्क पड़ गया? घर-द्वार, दोस्त-यार, सब ऐसे ही तो रह रहे हैं। तो मैं भी अगर वैसा हो जाता हूँ तो क्या बुराई हो गयी? वो एक पीड़ा तुमको उठती ही नहीं कि मेरा एक जीवन है और इसके साथ मैं ये क्या कर रहा हूँ? मैं इसको त्याग कर क्या पा सकता हूँ? जब जीवन एक ही है, तो उसकी आहुति चढ़ा कर मुझे बदले में क्या मिल सकता है? और अगर मैं ये सौदा करता हूँ कि अपने को दे दिया, अपनी स्वतन्त्रता को दे दिया तो बदले में मुझे जो भी मिलेगा वो नुकसान का ही सौदा होना है। जैसे आप एक हीरा दे कर दो-चार रुपया ले लो किसी से, वही तुम कर रहे हो। अपने आप को बेच कर कुछ छोटी मोटी सुख सुविधायें ले लेते हो, कि कोई हमें थोड़े बहुत पैसे दे दे, कि कोई हमें रहने को घर दे दे,हमें थोड़ी सहूलियत मिल जाए, हमारी थोड़ी बहुत इज्जत बची रहे।

इन बातों के लिए तुमने उस चीज़ को बेच रखा है जो असली है। ये नुकसान तुम्हें नहीं दिख रहा, ये अरबों का नुकसान है, कोई कीमत ही नहीं रखी, इतना बड़ा नुकसान है ये। और तुम कल्पना करते हो कि आगे नुकसान हो जायेगा। जैसे कोई भिखारी कल्पना करे कि मेरा कुछ लुट न जाये। कोई भिखारी तुम्हें मिले और बड़ा परेशान है, इधर-उधर भाग रहा है। पूछो कि क्या हुआ? बोल रहा है कि मुझे डर है कि मेरा सब कुछ लुट जायेगा। अरे तेरे पास है क्या? तेरे पास बचा क्या है लुटने के लिए? कल्पनायें है बस भिखारी के पास कि मेरे पास सब कुछ है। तेरे पास क्या

है? आंखे खोल और देख कि जो कुछ था वो तो तूने पहले ही छोड़ दिया,वो तो तू पहले ही बेच चुका है। अब तेरे पास बचा क्या है जो लुटेगा? पर इस डर में रह कर भिखारी को बड़ा आनंद आता है। भिखारी खूब डरेगा कि कहीं मैं लुट ना जाऊँ, कि मेरा कोई नुकसान ना हो जाए। इससे उसको ये लगने लगता है कि शायद मेरे पास कुछ है ही। डर-डर कर वो अपने को एहसास दिलाता है कि मेरे पास कुछ होगा जरूर वरना मुझे डर क्यों लगता ।

एक बाप था। उसने अपने बेटे को बोल रखा था कि वहाँ तिजोरी में तीन सोने की ईंटे रखी हैं। बड़ी ठोस ईंटें हैं और बड़ी कीमती हैं। तिजोरी को ताला मार कर रखा हुआ था। बच्चा जबसे छोटा था तब से उसे यही घुट्टी पिलायी जा रही है कि वहाँ बड़ी कीमती चीजें रखी हैं। बच्चा कहे, 'बढ़िया पिताजी' और रात भर दोनों बाप-बेटे जगें और तिजोरी की हिफाजत करें कि इसमें सोने की ईंटें रखी हुई हैं। इस जागने के कारण दोनों में आपस में बड़ा आकर्षण रहे क्योंकि दोनों को एक साझा दुश्मन मिल गया था, कि कोई चोर आकर चोरी ना कर पाये। जब दो लोगों को एक समान दुश्मन मिल जाता है, तो बड़ी दोस्ती हो जाती है। वो तेरा भी दुश्मन है और मेरा भी दुश्मन है, तो हम दोनों दोस्त । बाप-बेटे का बंधन इसी बात पर आधारित था कि तू भी डरा हुआ है और मैं भी डरा हुआ हूँ। दोनों डरे हुए हैं कि कहीं इस सोने की चोरी ना हो जाये और दोनों बहुत खुश हैं। बेटा भी बड़ा खुश है कि मैं तो बड़ा अमीर हूँ। तीस साल तक यही चलता रहा और एक दिन बाप मर गया। जब बाप मरा, तो तिजोरी खोली गयी। उसमें से निकली तीन पत्थर वाली ईंटें। बेटा बड़ा परेशान हुआ, माँ के पास गया। बोला कि बाप ने जिंदगी भर धोखा दिया। बोला कि हमारे पास कोई कीमती चीज़ है। हमारे पास कोई कीमती चीज़ है ही नहीं, और माँ मुझे और तुम्हें दोनों को धोखा दिया। माँ बोली कि मुझे कोई धोखा नहीं दिया, मैं जानती थी। बोला कि माँ बताया क्यों नहीं? माँ बोली कि तीस साल अमीरी में कटे या नहीं कटे? तीस साल तू ये सोचता रहा कि मैं कितना अमीर हूँ। तो और क्या चाहिए? ख्याल काफी है। कल्पना ही तो करनी है कि बहुत कुछ है। कल्पना होती रही और फिर इसी बहाने तू अपने बाप की कितनी इज्जत करता था कि मेरा बाप बड़ा अमीर है। बाप बता देता कि कुछ नहीं है, तो तू इज्जत करता क्या? बल्कि बाप बेटे का रिश्ता ही टूट जाता कि ये नकली है, खाली है। माँ ने कहा कि तुझे आगे के लिए एक सीख देती हूँ, तेरा भी बेटा हो गया है। ये तिजोरी बंद कर दे, कभी खोलना मत। और उसको बता दे कि तीन सोने की ईंटे रखी हुई हैं। माँ बोली कि ये सोने की ईंटें आज की नहीं हैं, ये परम्परा से चली आ रही हैं। और भूल कर भी कभी ये राज़ खोल मत देना कि ये ईंटें नकली हैं, नहीं तो सारे रिश्ते टूट जायेंगे।

ऐसे ही हमारे रिश्ते। इन्हीं बातों पर आधारित हैं। जिस तिजोरी को मान कर बैठे हो कि इसमें बहुत कुछ है, कभी उसको खोलकर भी तो देखो। जिन बातों की तुम कल्पना करके बैठे हो, जिन बातों की तरफ तुम्हें लगातार धकेला जा रहा है, कभी जाकर जाँच परख कर भी तो देखो कि सच क्या है। तुम्हें लगातार बोला जा रहा है कि ऐसा-ऐसा भविष्य बना लो। इस तरह की नौकरी कर लो, फिर ऐसे शादी कर लो। अरे,जरा इन बातों के करीब जाओ और फिर देखो कि उनमें कितना सच है और कितना झूठ है। अपने आसपास जिन लोगों को देखते हो, जिन रिश्तों को देखते

हो, उन रिश्तों को भी ध्यान से देखो कि इनमें कितना सच है और कितना झूठ है। और अगर ये झूठे हैं, तो मुझे क्यों दिन रात प्रेरित किया जा रहा है कि तुम भी ऐसे रिश्ते बनाओ? पर झूठी ईंटों की परम्परा बड़ी जबरदस्त है। बाप-बेटे को लगातार बोलता रहा कि बेटा सो मत जाना, वरना वर्ना बड़ा नुकसान हो जायेगा, जैसे तुम पूछ रहे हो कि अगर नुकसान हो गया तो! अरे, है क्या तुम्हारे पास खोने के लिए? बंधन ही है। खो दो उनको, अच्छा है तुम्हारे लिए।

....

(उत्तर प्रदेश, 2013)

समाप्त